१०६८

॥श्रीगणेशाय नमः॥

ब्रह्मवैवर्तपुराण की विषय-सूची

ब्रह्मखण्ड

अध्याय	विषय	पृष्ठाङ्क

१ गणेशब्रह्मेशसुरेशशेषाः सुराश्च सर्वे मनवो मुनीन्द्राः।
सरस्वतीश्रीगिरिजादिकाश्च नमन्ति देवाः प्रणमामि तं विभुम्॥

अनुक्रमणिकाऽध्यायवर्णनम्

नारायण, नर, नरोत्तम तथा देवी सरस्वती को प्रणाम कर जय (पुराण) का उच्चारण करे। नैमिषारण्यक्षेत्र में शौनकादि ऋषियों ने सूतजी से पूछा कि भगवन् आप कहाँ से आये हैं आपके दर्शन से ही हमारा पुण्य दिन हुआ है आप पुराण वक्ताओं में सर्वश्रेष्ठ हैं तथा सब पुराणों को जानते हैं इसलिये कृष्ण भगवान् में हमारी निश्चल भक्ति हो ऐसे पुराण का वर्णन कीजिये। सृष्टि की उत्पत्ति, साकार एवं निराकार का वर्णन, वैष्णव भक्त क्या ध्यान करते हैं तथा योगिराज क्या ध्यान करते हैं, प्रकृति का आकार, गुणों का लक्षण, महदादि का निर्णय, गोलोक का तथा वैकुण्ठ लोक का वर्णन, समुद्र, नदी, पहाड़ों की उत्पत्ति, प्रकृति की कलाओं का चरित्र तथा स्तोत्र, दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी, सावित्री और राधिका के आख्यान का वर्णन, जीवों के कर्मों का विपाक, नरकों का वर्णन, कर्मों का खण्डन तथा उनसे मोक्ष तथा मनसा, तुलसी, काली, गङ्गा, पृथिवी और

शालग्रामशिला की कथा, धर्माधर्म का वर्णन, गणेश का चरित्र तथा स्तोत्र-कवच एवं मन्त्र तथा श्रीकृष्ण भगवान् के जन्म चरित्रों का वर्णन कीजिये।

सूतजी ने कहा—शौनकजी! आपके प्रश्न को मैं भली भाँति समझ चुका। आपका प्रश्न ब्रह्मवैवर्त पुराण विषयक है। इसमें (१) ब्रह्मखण्ड में परब्रह्म का वर्णन जिसका ध्यान वैष्णव, योगिराज तथा सन्त करते हैं इन तीनों में कोई भेद नहीं है।

सन्तो भवन्ति सत्सङ्गाद् योगिसङ्गेन योगिनः।
वैष्णवा भक्तसङ्गेन क्रमात् सद्योगिनः पराः॥

इसी खण्ड में देवी, देव तथा सर्व जीवों की उत्पत्ति का वर्णन है।

(२) प्रकृति खण्ड में—देवियों का चरित्र, जीवों का कर्मविपाक, शालग्राम का वर्णन, कवच, स्तोत्र, मन्त्र और पूजा का वर्णन, प्रकृति का लक्षण सुकर्मी तथा दुष्कर्मी मनुष्यों के स्थानों का वर्णन, शुभाशुभ का वर्णन और नरकों का वर्णन किया है।

(३) गणेश खण्ड में—गणेश का जन्म तथा गणेश के अपूर्व चरित्रों का वर्णन, गणेश और भृगु का संवाद और गुप्त स्तोत्र मन्त्रतन्त्र कवचादिकों का वर्णन किया है।

(४) श्रीकृष्ण जन्म खण्ड में—भारत में श्रीकृष्ण का जन्म तथा कर्म, और पृथ्वी का भारहरण एवं सज्जनों की मर्यादा का विधान वर्णित है।

हे शौनकजी! इस प्रकार चारखण्डों से युक्त सर्व धर्मों का सारभूत, पुराणों में श्रेष्ठ, सब आशाओं की पूर्त्ति करनेवाला यह ब्रह्मवैवर्त पुराण है। इसको सर्व प्रथम श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा को दिया। ब्रह्माजी ने महातीर्थ पुष्कर में धर्म को, धर्म ने अपने पुत्र नारायण को, नारायण ने नारदजी को और नारदजी ने व्यासजी को दिया। व्यासजी ने इस पुराण सूत्र को मुझे दिया और मैंने आपको कहा। इसमें अठारह हजार पाठ है सम्पूर्ण पुराण के श्रवण से जो फल मिलता है वह इस अध्याय के श्रवण से मिल जाता है।

२ परब्रह्मनिरूपणम् ५

शौनकजी के प्रश्न करने पर कि ब्रह्म का निरूपण कीजिये तब सौति नें सृष्टि के उपादान कारण रूप में उसका प्रतिपादन किया और नाना लोकों की स्थिति बतलाई।

३ सृष्टिनिरूपणम् ७

सृष्टि के रचना के सम्बन्ध में कई प्रचलित मत हैं कोई पहले जलजन्तु और पशुपक्षियों की उत्पत्ति बताते हैं और बन्दर मानुष आदि के बाद मनुष्य तक पहुंचते हैं। कोई कहते हैं कि अनादि परम्परा प्राप्त इस क्रम का पूरा पता अभी मिलना कठिन है अनुसन्धान चल रहा है। यहाँ ब्रह्मवैवर्त के मतानुसार सृष्टि प्रक्रिया का सामयिक निरूपण पठनीय है :—

सृष्टि के आरम्भ में सम्पूर्ण विश्व शून्यमय निर्जन्तु होकर अन्धकारपूर्ण था; न कहीं वृक्ष थे न पर्वत और न नदी नदादि का कहीं नाम था। जब महान् हिरण्यगभ ने अपने आपको अकेला देखा तो स्वेच्छा से "एकोऽहं बहु स्याम्" की भावना का प्रस्फुरण हुआ। उसके साथ ही सृष्टि के कारणस्वरूप मूर्तिमान् तीनों गुण आविर्भूत हुए; फिर महान् अहंकार, पञ्चतन्मात्रा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द के साथ उत्पन्न हुए। फिर भगवान् नारायण स्वयं आविर्भूत हुए। वे भगवान् श्रीकृष्ण के सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे। साथ२ वाम पार्श्व से पाँच मुख एवं तीन नेत्रवाले शङ्करजी का आविर्भाव हुआ उन्होंने शङ्करजी की वहीं स्तुति की।

सौतिजी ने कहा फिर भगवान् श्रीकृष्ण के नाभि कमल से महातपस्वी ब्रह्माजी का तथा वक्षस्थल से धर्म का आविर्भाव हुआ। वाम पार्श्व से कन्या आविर्भूत हुई, जो साक्षात् सरस्वती ही थी उनके मन से महालक्ष्मीजीव परमात्मा की बुद्धि से सर्वाधिष्ठातृ देवी मूल प्रकृति का आविर्भाव हुआ उनसे

निद्रा, तृष्णा, क्षुत्पिपासा, दया, श्रद्धा, क्षमा आदि हुए। वह आदिशक्ति समस्त पार्षद और आयुधों के साथ भगवती साक्षात् ही श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगी और आदि शक्ति वहीं विराजमान हो गई।

४ सृष्टि निरूपणम् १२

प्रभु के रसना के आगे के भाग से देवी सावित्री का आविर्भाव हुआ और फिर मानस से एक पुरुष मन्मथ कामदेव हुए उनके वाम पार्श्व से सबको मोहने वाली रति हुई, उसके पास मारण, स्तम्भन, जृम्भण, शोषण, और उन्मादन नामक पाँच बाण थे, उसने उन बाणों की परीक्षा लेने के लिये उन्हें छोड़ दिया जिससे सभी काम के वशीभूत हो गये। इसी समय अग्नि का आविर्भाव हुआ इस लपेटे में ब्रह्माजी आ गये उसको शान्त करने के लिये भगवान् ने जल को रचा एवं उसका अधिष्ठाता वरुण को बनाया। अग्नि के वाम भाग से एक कन्या का आविर्भाव हुआ जिसे अग्नि की पत्नी स्वाहा नाम दिया गया। वरुण के वामपार्श्व में वरुणानी और विभु के निःश्वास वायु से पवन का आविर्भाव हुआ उसकी पत्नी भी। कृष्ण के काम बाण से वीर्यपात हुआ एक हजार वर्ष तक वह डिम्ब रूप में रहा तब महान् विराट् हुए जो सम्पूर्ण विश्वों का आधार है जिसके एक लोमविवर में सारा विश्व व्यवस्थित है। बड़े भारी समुद्र में शयन करते हुए भगवान् विष्णु के कान से दो दैत्य पैदा हुए और ब्रह्मा को ज्यों ही मारना चाहा कि विष्णु ने उन्हें मार डाला।

५ सृष्टिप्रकारवर्णनम् १४

शौनकजी का प्रश्न "क्या गौ, गोप, गोपी और सभी उनके सहचर गोलोक में नित्य हैं कि कल्पित हैं"? इस पर सौति ने काल मान बतलाते हुए सृष्टि की स्थिति बतलाई। इसके अनन्तर गोलोक का वर्णन, गोलोक के रासमण्डल में रास का सुन्दर निरूपण। प्रधान अधिष्ठात्री रासेश्वरी राधा का वर्णन, वहीं प

गोप, गोपी, गाय, वत्स और उनके उपकरणों का सुन्दर वर्णन। फिर सारे दिक्पाल डाकिनी, योगिनी आदि की उत्पत्ति का वर्णन।

६ सृष्टिप्रकरणम् १८

श्रीकृष्ण भगवान् ने नारायण के लिये सादर महालक्ष्मी और महासरस्वतीजी, सावित्री को ब्रह्माजी के लिये, मूर्ति को धर्म के लिये, रति को कामदेव के लिये, मनोरमा को कुबेर के लिये और अन्यान्य पुरुष देवताओं को उन-उन स्त्री देवी गण को आदरपूर्वक दे दिया। शङ्कर जी को भगवती सिंहवाहिनी (अमितपराक्रम-शीला) देदी। इस पर भगवान् शङ्कर ने प्रार्थना कर इस अनुपम भेंट को भगवान् की भक्ति में बाधक बताकर टालने को कहा।

तपस्याच्छिन्नरूपाञ्च महामोहकरण्डिकाम्। भवकारागृहे घोरे दृढां निगडरूपिणीम्॥
शश्वद्विबुद्धिजननीं सद्बुद्धिच्छेदकारिणीम्।
शश्वद्विभागसाराञ्च विषयेच्छाविवर्द्धिनीम्॥
नेच्छामि गृहिणीं नाथ! वरं देहि मदीप्सितम्॥

यह गृहिणी का समागम संसाररूपी घोर कारावास में हथकड़ी बेड़ी का काम करती है। सद्बुद्धि को छेदन करती है विषयों के प्रति इच्छा को बढ़ाने वाली है अतः हे नाथ गृहिणी को मैं नहीं चाहता। कृपया मेरा इच्छित वर मुझे दीजिये। आपके चरणों के सेवन, पूजन, वन्दन, और नाम कीर्तन से बढ़कर संसार में दूसरी कोई वस्तु मैं नहीं चाहता। सारी कल्पावस्था तक आपके ध्यान में लगा रहकर नवधा भक्ति ही मेरे जीवन का लक्ष्य हो। यह मेरी कामना है।

"त्वत्सेवने पूजने च वन्दने नामकीर्त्तने। सदोल्लसितमेषश्च विरतौ विरतिं लभेत्॥१४॥
स्मरणं कीर्तनं नामगुणयोः श्रवणं जपः। त्वच्चारुरूपध्यानं त्वत्पादसेवाभिवन्दनम्॥१५॥
समर्पणञ्चात्मनश्च नित्यं नैवेद्यभोजनम्। वरं वरेश! देहीदं नवधां भक्तिलक्षणम्॥"

सार्ष्टि, सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य, साम्य और लीनता ये छै प्रकार की मुक्तियां एवं १८ सिद्धियाँ हैं, सम्पूर्ण वैभव, ब्रह्मपद, विष्णुपद और शिवपद भगवान् की भक्ति की १६ वीं कला की भी बरावरी नही कर सकते।

"शङ्करजी को भगवान् कृष्ण का वरदान कि इस महाशक्ति शिवा के साथ तुम्हारा त्रिकालाबाधित सम्बन्ध सदा ही वना रहे। जो कुस्त्री (खराव स्त्री) होती है वह स्वामी के लिये कलहकारिणी वन जाती है बाकी तो कुल की उत्पत्ति से अपने स्नेह से पुत्र पौत्र की उन्नति कर पति का सर्वथा कल्याण करती है। शिव नाम की महिमा और शिवभक्त भगवान् कृष्ण को अत्यन्त ही प्रिय है। सिंहवाहिनी को कृष्ण भगवान् ने अपने यहां रखकर कहा कि कल्प के वाद में सत्ययुग के आरम्भ में दक्ष की कन्या वन तुम शङ्कर की स्त्री बनोगी उसी जन्म में सती के रूप में शरीर को त्यागकर हिमालय की पत्नी के पार्वती रूप में आविर्भूत होकर शम्भु के साथ विहार करोगी। सम्पूर्ण विश्व में शरत्काल में प्रति वर्ष सर्वत्र तुम्हारी पूजा हुआ करेगी, उसमें भगवती के पूजन करनेवाले को यश, कीर्ति, धर्म और ऐश्वर्य सब कुछ मिलेगा श्रीमाया काम बीज भगवती को दिया। ऐसे ही कामदेव, वरुण, कुबेर आदि को नानामन्त्र और सिद्धियां दी तथा बिदा किया स्वयं वृन्दावन में गोपी एवं गोपों के साथ निवास करने चले आये।

७ सृष्टिप्रकरणम् २२

ब्रह्माजी ने मधु-कैटभ के मेद से तपस्या कर पृथ्वी को रच आठ पर्वत समुद्र, नदी, नद, वृक्ष, वनस्पति, ग्राम, नगर सभी वनाये।

"लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलार्णवान्"

सात ऊर्द्ध्वलोक, सात पाताल, सप्तद्वीप बनाये इनकी गणना सम्भव नहीं। ये सब अनादि परम्परावच्छेदेन कृत्रिम और स्वप्न के समान अनित्य नश्वर हैं केवल वैकुण्ठ और शिवलोक से ऊपर गोलोक ही नित्य है।

८ सृष्टिप्रकरणम् २३

सृष्टि रचने के बाद सावित्री के गर्भ से ब्रह्माजी ने मनोहर चारों वेदों, शास्त्रों, व्याकरण, एवं न्यायादि को ३६ राग एवं रागिणी चारों युग—सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलहप्रधान कलि बनाये। वर्ष, मास, ऋतु, तिथि, दण्ड, क्षण, रात, दिन, वार, सन्ध्या, प्रातःकाल, मातृका, चारों प्रलयकाल, मृत्युकन्यका और व्याधिगण को उत्पन्न कर उन्हें पोषित किया। ब्रह्माजी के पीठ से अलक्ष्मी हुई। नाभि से विश्वकर्मा जो शिल्पी जाति के गुरु हुए। आठ वसु चारों कुमार आदि नाना अङ्गों से हुए। स्वायम्भुव मनु और शतरूपा मनुष्यों के उत्पादन करने में प्रवृत्त हुए। ऋषियों की उत्पत्ति। पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि, अङ्गिरा, रुचि, भृगु, दक्ष, कर्दम, पञ्चशिख, वोढु, नारद, मरीचि, वशिष्ठ, हंस और यति हुए इन्हें सन्तान की वृद्धि का ब्रह्मा ने आदेश दिया। फिर नारदजी ने विषयरूपी विष एवं भक्ति रूपी अमृत की तुलना कर इन महर्षियों को बचाकर रखने के लिये अनुरोधपूर्वक निवेदन किया। इसपर ब्रह्माजी ने श्राप दिया कि तूँ नाना जन्मों में भिन्न-भिन्न योनि ग्रहण कर अन्त में लोगों को ज्ञान बाँटता फिरेगा इस पर नारदजी ने क्षमा-प्रार्थना की। भगवान् कृष्ण की भक्ति का माहात्म्य।

९. ब्रह्मपुत्रकृतसृष्टिप्रकरणम् २६

ब्रह्माजी ने अपने सब पुत्रों को सृष्टि सञ्चालन का आदेश दिया। मरीचि महर्षि के मानस पुत्र कश्यप प्रजापति हुए। अत्रि के नेत्रों के मल से समुद्र में चन्द्रमा उत्पन्न हुए। पुलस्त्यजी के मानसपुत्र मैत्रावरुण हुए मनु के शतरूपा में तीन कन्यायें हुईं आकूति, देवहूति और प्रसूति जो परम प्रसिद्ध पतिव्रता हुईं तथा प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र हुए। उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव हुआ जो परम धार्मिक

प्रवर प्रसिद्ध हुआ। मनुजी ने आकूति को रुचि नामक ऋषिको व प्रसूति को प्रजापति दक्षको एवं देवहूति को कर्दम ऋषि को दिया जिसके गर्भ से भगवान् सांख्याचार्य कपिल हुये। प्रसूति में दक्ष के सकाश से ६० कन्यायें पैदा हुईं जिनमें से ८ धर्म को, ११ रुद्र को, १ सती शिवजी को, १३ कश्यपजी को और बाकी २७ चन्द्रमा को प्रदान कीं। दक्ष कन्याओं के नाम एवं वंश का वर्णन। इस प्रकार सूतजी ने सृष्टि क्रम का सुन्दर वर्णन किया।

भृगुजी के पुत्र च्यवन और शुक्र हुए, क्रतु की क्रिया नाम की स्त्री से वालखिल्य हुए। अङ्गिरा के तीन पुत्र हुए बृहस्पति, उतथ्य और शंम्बर। वसिष्ठ के पुत्र शक्ति हुए उनके पराशर हुए उनके सुपुत्र महाभागवत कृष्ण-द्वैपायन साक्षात् भगवान् व्यासजी हुए। व्यासजी के शिवजी के अंशरूप ज्ञानी प्रवर शुकदेवजी हुए। पुलस्त्य के विश्वश्रवा और उसके धनेश्वर नामक पुत्र हुआ। विश्वश्रवा के पुत्र कुबेर, रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण हुए। पुलह के पुत्र वात्स्य और रुचि के शाण्डिल्य हुए, इनके पांच गोत्रवाले नाना जन हुए, ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण जातियाँ बाहुदेश से क्षत्रिय जातियाँ जङ्घा से वैश्य और पैर से शूद्र जातियां हुईं। (विशाल ब्रह्माण्ड में सभी वर्णों का विशिष्ट स्थान है इनमें छोटे बड़े का कोई अन्तर नहीं सभी मानव अपने-अपने कर्मों से सुगति और दुर्गति को प्राप्त होते हैं।) इनकी संकरता से नाना वर्णसंकर जातियाँ हुईं। वणिक् जातियों और सच्छूद्र आदि की उत्पत्ति का इतिहास। सङ्कर जातियों की उत्पत्ति का विवरण एवं जातियों के सम्बन्ध में निर्णय।

११ विष्णुवैष्णवब्राह्मणप्रशंसा ४०

सुतपा नामक ब्राह्मण ने भगवान् श्रीकृष्ण की तपस्या एक लाख वर्ष तक की। कृष्ण की अलौकिक ज्योति का उसे अकस्मात् दर्शन हुआ और आकाशवाणी हुई कि हे ब्राह्मण तुम मोक्ष मत मांगना केवल लोकव्यवहार की परम्परा के लिये विवाह करो बाद में अपनी भक्ति और दास्य मैं तुम्हें दूँगा। स्वयं ब्रह्मा ने पितरों की मानसी कन्या को उसे दिया उसमें ब्राह्मण के द्वारा कल्याणमित्र का जन्म हुआ। इस महापुरुष के स्मरण करने से वज्र से भी भय नहीं रहता। वैष्णव ब्राह्मण के सन्तुष्ट होने से भगवान् नारायण स्वयं प्रसन्न हो जाते हैं। ब्राह्मण प्रशंसा के पद। विष्णुमन्त्र की दीक्षा गुरु से लेने से ही सब तरह की सिद्धि होती है।

१२ गन्धर्वराजस्य प्रशंसा ४२

उपबर्हण गन्धर्व के रूप में नारदजी का जन्म। पूर्व जन्म में नारदजी ने पिता के साथ विरोधकर क्या किया और उसका परिणाम सुनाने के लिये शौनकजी की प्रार्थना पर सौति ने बताया कि ब्रह्माजी की पूजा पुत्रों के शाप देने से नहीं होती है। इसीलिये ब्रह्माजी की आराधना भी विद्वान् लोग नहीं करते। नारदजी जिस प्रकार गुरुजनों के शाप से गन्धर्व हुए उसकी कथा का प्रसङ्ग। गन्धर्व होकर भी वैभव हुआ परन्तु पुत्र न हुआ इसपर गुरुजी की आज्ञा से उन्होंने पुष्कर तीर्थ में भगवान् शङ्करजी की तपस्या की। भगवान् शङ्करजी का मन्त्र उसे गुरुदेव वशिष्ठ ने दिया था। दिव्य सौ वर्ष तक उसका जप करता हुआ गन्धर्वराज अन्त में शिवजी को प्रसन्न करने में सफल हुआ। भगवान् चन्द्रशेखर ने उसे वर मांगने को कहा तो गन्धर्व ने हरि भक्ति औरपरम भागवत पुत्र की याचना की। भगवान् शङ्कर ने कहा कि श्रीकृष्ण की आराधना करनेवाले को कभी कोई पाप ताप नहीं सता सकता अतः तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो

परन्तु तुम दूसरा वर मांगो। गन्धर्वराज ने अपने पहले वरों की पूर्ति न होने पर शिर काट कर चढ़ाने की धमकी दी। तब भक्तों के ऊपर दया करनेवाले भगवान् शङ्कर ने पुत्र रत्न की प्राप्ति का सुन्दर वरदान दिया और अन्तर्धान कर गये।

गन्धर्वराज के पुत्र उपबर्हण को भी गुरु दीक्षा पर भगवान् विष्णु का मन्त्र मिला। एक बार गन्धर्वों की ५० पत्नियों ने उस युवक को इस प्रकार सुन्दर वेष में देख कर मूर्च्छित होकर योग से प्राण छोड़ नया जन्म धारण कर चित्ररथ की कन्याओं के रूप में जन्म लिया। बड़ी होनेपर उन्होंने उपबर्हण गन्धर्व को अपना पति वर लिया जब वह सानन्द तीन लाख वर्ष तक जीवन बिताकर भगवान् में मन लगाने की तैयारी कर रहा था तो रम्भा के नव यौवन को देखकर उसका वीर्य स्खलन हो गया। इसपर ब्रह्माजी ने उसे शूद्र योनि की गति पाने का शाप दिया। उस गन्धर्व ने योग के द्वारा अपना शरीर छोड़ा और उसकी पचास रानियों में प्रधान महिषी ने पति विरह में मार्मिक विलाप किया।

ब्राह्मण बालक के वेश में भगवान् विष्णु का मालावती के पास आना और उस ब्राह्मण बालक का मालावती के साथ सम्वाद होने के प्रसङ्ग में कर्मफल का कथन।

ब्राह्मण ने रोग और व्याधि का बीज शास्त्रानुसार बताकर उसके दूर करने के उपाय बताये। मालावती के सामने कालपुरुष को प्रगट किया गया। व्याधि समूह और यमराज सभी उपस्थित हुए। मालावती ने खुले शब्दों में उससे पूछा

हे धर्मराज आप मेरे पतिदेव के हरने का कारण बताइये। यमराज ने इसपर ईश्वराज्ञा द्वारा मृत्यु कन्याओं को व्याधिरूप में मनुष्य एवं प्राणियों की मृत्यु का कारण बताया।

१६ विष्णुमालावतीसंवादे व्याधिप्रणयनम् ५६

वैद्यकीसंहितावर्णनम्

मालावती के यह पूछने पर कि रोग की उत्पत्ति, शमन और उसे दूर करने का उपाय बताइये तो ब्राह्मण ने परम्परानुसार जैसे आयुर्वेद का प्रादुर्भाव हुआ उसे बताया और वेदाङ्ग के रूप में ही चिकित्सा को एक अङ्ग कहकर इसकी विशेष प्रशंसा की। इसके १६ तन्त्रों में एक से एक बढ़कर रोगों की चिकित्सा बतलाई गई है। व्याधि का ज्ञान और कष्ट का निग्रह करना यही वैद्य का वैद्यत्व है वह आयु का मालिक नहीं है, फिर ज्वर, मन्दाग्नि, पाण्डु, कामल, कुष्ठ, शोथ, प्लीहा, शूल, ज्वरातिसार, ग्रहणी, खांसी, श्वास, मूत्रकृच्छ्र, गुल्म (गोला) रक्तदोष के विकार वाले रोग, विषमेह, कुबड़ापन, गोद, गलेगण्ड, भ्रमरी, सन्निपात, विसूची आदि ६४ भेद रोगों के बतलाये। पापों से रोगों की वृद्धि और मृत्यु का आगमन बतलाया और ईश्वरभक्ति से शमन।

चक्षुर्जलञ्च व्यायामः पादाधस्तैलमर्दनम्। कर्णयोर्मूर्ध्नि तैलञ्च जराव्याधिविनाशनम्
वसन्ते भ्रमणं वह्निसेवां स्वप्नं करोति यः। बालाञ्च सेवते काले जरा तं नोपगच्छति॥
खातशीतोदकस्नायी सेवते चन्दनद्रवम्। नोपयाति जरा तञ्च निदाघेऽनिल सेवनम्
प्रावृष्युष्णोदकस्नायी घनतोयं च सेवते। समये च समाहारी जरा तं नोपगच्छति
शरद्रौद्रं न गृह्णाति भ्रमणं तत्र वर्जयेत्। खातेस्नायी समाहारी जरा तं नोपगच्छति

खातस्नायी च हेमन्ते काले वह्निञ्च सेवते।
भुङ्क्ते नवान्नमुष्णञ्च जरा तं नोपगच्छति॥

भुङ्क्ते सदन्नं क्षुत्काले तृष्णायां पीयते जलम्।
नित्यं भुङ्क्ते च ताम्बूलं जरा तं नोपगच्छति ॥

दधि हैयङ्गवीनञ्च नवनीतं तथा गुडम्। नित्यं भुङ्क्ते संयमी यो जरा तं नोपगच्छति

अर्थात् नेत्रों को ठण्ढे पानी से धोना, व्यायाम करना, तैल का पैरों के तलवे में मर्दन, कान में तेल डालना, और शिर में अच्छे तैल की मालिस करना बुढ़ापा और रोग को दूर करता है। वसन्तऋतु में प्रातः सायं टहलने, चित्रक के सेवन और गहरी नींद लेने और समय पर बाला युवती के साथ सम्भोग करने से वृद्धावस्था नहीं सताती। कूपजल, नदीजल अथवा तालाब या वावड़ी के जल में स्नान, चन्दन का लेपन और गर्मी में ठण्ढी वायु का सेवन ये वृद्धावस्था से दूर रहने के साधन हैं। वर्षा में गर्म जल से स्नान और वर्षा के जल का सेवन तथा समय पर हित, मित और पथ्य आहार के सेवन का स्वास्थ्य पर बहुत सुन्दर प्रभाव होता है। शरदृऋतु में सुन्दर औषध का सेवन, भ्रमणादि का वर्जन, नदी, कूआ, वावड़ी या तालाब में ठण्ढे जल से सदा स्नान करने से वृद्धावस्था नहीं सताती। हेमन्त ऋतु में नदी कुआ, वावड़ी या तालाब में स्नान और अग्नि का सेवन, नवीन और गर्म सुपाच्य भोजन करनेवाले को वृद्धावस्था नहीं आती। खातस्नान के साथ-साथ सुपाच्य रुचिकर और अच्छे अन्न का भूख लगने पर खानेवाला, प्यास लगने पर जल पीनेवाला और नित्य ताम्बूल (पान) का सेवन करनेवाला वृद्धावस्था को नहीं प्राप्त करता। दही, विना घी निकाला हुआ मट्ठा, नवनीत (मक्खन) और गुड़ का जो संययी व्यक्ति सेवन करता है उसे वृद्धावस्था नहीं सताती।

इस प्रकार सारी रोगविनाशक और शरीरवर्द्धक प्रक्रियाओं को सुनकर मालावती ने उपबर्हण की मृत्यु का कारण ब्रह्माजी द्वारा शाप और संसार में महत्पद की प्राप्ति विपत्ति के विना नहीं हो सकती इस प्रकार जन्मान्तर से उन्नति होना बतलाया है।

सौतिजी ने शङ्कर कवच बताया और वाणेश्वर के द्वारा कहे गये शंकरजी का समस्त पाप ताप को दूर करनेवाला स्तोत्र सुनाया।

उपवर्हण का जन्म किस प्रकार हुआ उसका निरूपण। कान्यकुब्ज देश में द्रुमिल नामक राजा की कलावती नाम की पतिव्रता स्त्री थी जो बाँझ थी। स्वामी के दोष से उस बन्ध्या कलावती ने अपने पति की आज्ञा से नारदजी की तपस्या की। वह यद्यपि उनके सामने आने में असमर्थ थी फिर भी मुनि की समाधि टूटने पर नारदजी ने उसे देखकर सारी बातें पूछीं। उसने वीर्याधान का प्रस्ताव किया और काश्यप नारद ने इस पर कईएक बातें बुरी-भली सुनाई। भोग करने योग्य जो अपनी गृहलक्ष्मी को दूसरे को देने की इच्छा करता है, वह अवश्य उसे छोड़ देती है ऐसी वेदों की घोषणा है। कभी भी वर्णसङ्कर सृष्टि नहीं होने देनी चाहिये ऐसा होने से देवता और पितर उस पतित का जल और श्राद्ध तथा पूजा ग्रहण नहीं करते। इसके बाद वह वृषली मुनि के सामने चुपचाप खड़ी रही और मेनका को देखकर स्खलित वीर्य होने पर उस कलावती ने उसे पी लिया और द्रुमिल को सारे गर्भहेतु के कारण बतलाये। द्रुमिल ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उस गर्भाधान की प्रशंसा की तथा सभीको प्रसन्न होकर अतुल धन दान किया। फिर वद्रिकाश्रम में जाकर योग साधना से अपने शरीर को छोड़ा। वहाँ से विष्णुदूतों ने उसे वैकुण्ठ लेजाकर भगवान् का दास बना दिया। इधर भौतिक शरीर को निर्जीव देखकर कलावती विलाप करने लगी और उसने पति के साथ ही चिता में प्राण छोड़ने की पूरी तैयारी की परन्तु ब्राह्मण ने उसे मातः कहकर बचा लिया क्योंकि उसके गर्भ से बालक का आविर्भाव होगा।

जब बालक होकर पाँच वर्ष का हुआ तो उसे पूर्वजन्मों की स्मृति बराबर बनी रही और वह निरन्तर ही जहाँ भगवान् कृष्ण की पवित्र कथा का अनुवाद होता हो वहाँ वह अवश्य ही पहुंचता है। उसे जब माता भी बुलाती तो वह यही कहता कि आता हूं थोड़ी भगवान् की पूजा करलूँ। यह बालक नारद नाम से विख्यात हुआ। वह दिन दूना रात चौगुना बढ़ता गया। उसे जिसे कृष्ण मन्त्र की प्राप्ति हुई उसका वर्णन। इसके बाद नारदजी शाप से छुटकारा पा गये।

ब्रह्माजी के पुत्रों की नाना सुन्दर व्युत्पत्तियों का वर्णन।

भगवान् ब्रह्माने अपने सब पुत्रों को सृष्टि के विधान में लगाकर नारदजी से सृष्टि करने को कहा। उन्होंने कहा कि सम्पूर्ण संसार में गृहस्थ ही प्रधान है और पुण्यशील है। यह स्त्री, पुत्र, पौत्रों का जो मन्दिर है वह बड़ी तपस्या का फल है देव पितर और ऋषि सभी गृहस्थ के नित्य, नैमित्तिक और काम्य विधियों से प्रसन्न होते हैं इसलिये गृहस्थ पालन करना आवश्यक है। नारदजी ने इसपर बहुत ही सुन्दर आदर्श वचन कहकर कि गृहस्थजीवन यदि कृष्णभक्ति विहीन है तो उसका सारा का सारा जीवन ही व्यर्थ है ऐसे घृणित जीवन की भर्त्सना की। आगे उन्होंने बताया कि जीवन में स्त्री के साथ पाणिग्रहण दुःखके लिये है सुख के लिये नहीं साथ ही तप, स्वर्ग, भक्ति और मुक्ति के उन्नत मार्ग पर चलने के लिये बड़ी भारी रुकावट है। साध्वी, भोग्या, कुलटा तीन प्रकार की स्त्रियाँ बतुलाई गई हैं। परलोक

के डर से और कामस्नेह से केवल अपने पति की जो सेवा करती है, वह साध्वी है। वस्त्र, अलङ्कार, सुन्दर स्निग्ध आहार जबतक जिस स्त्री को मिलते हैं वह भोग्या है और कुलटा तो कुल की अङ्गार होकर नित्य ही पति को जलाती रहती है। नारदजी कहते हैं सम्भोग से तेज नष्ट होता है 'दिनमें बात करने से यश का क्षय होता है' अधिक प्रेम करने से धन का क्षय होता है और अति आसक्ति होने से शरीर का क्षय होता है। साथ रहने से पुरुषार्थ नष्ट होता है कलह में मान्यता समाप्त होती है उनका विश्वास करने से सर्वनाश होता है हे पितः आप ही कहिये स्त्रीमात्र में क्या सुख है। इस प्रकार पिता से क्षमाप्रार्थनापूर्वक नारदजी ने तपस्या के लिये आज्ञा मांगी। इसपर ब्रह्माजी गले लिपटकर ऊँचे स्वर से रोने लगे वास्तव में मनुष्यों का विछोह भी दुःसह (असह्य) होता है।

२४ नारदम्प्रति दारपरिग्रहार्थं ब्रह्मण उपदेशः ८३

तदनन्तर ब्रह्माजी नारदजी को फिर समझाने लगे और दार परिग्रह के लिये नाना उपदेशपूर्ण वचनों से अपना मन्तव्य प्रगट कर कहा कि कृष्णभक्त को घर में ही तपस्या का फल मिल जाता है।

आदौ भवेद् गृहीलोको वानप्रस्थस्ततः परम्।
ततस्तपस्वी मोक्षाय क्रमएष श्रुतौश्रुतः॥
गृहीभव मुनिश्रेष्ठ! गृहीणां सर्वदासुखम्।
कामिन्यां सुखसम्भोगः स्वर्गभोगात्सुदुर्लभः॥

तद्दर्शनमुपस्पर्शं वाञ्छन्त्येव मुमुक्षवः। सर्वस्पर्शसुखात् स्त्रीणामुपस्पर्शसुखं परम्॥
ततः सुखतमंपुत्र दर्शनं स्पर्शनं मुने। नास्ति पुत्रात्परोबन्धुर्नास्तिपुत्रात्परः प्रियः॥
सर्वेभ्यो जयमन्विच्छेद् पुत्रादेकात्पराजयम्॥

इसपर भी नारदजी थोड़े ही मानने वाले थे। उन्होंने भगवान् कृष्ण की साधना के लिये मन्त्रदीक्षा मांगी और इसके बाद ही दार परिग्रह करने की

मुमुक्षूणां मोक्षदात्रीसुखिनांसुखदायिनी। स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीःसागृहलक्ष्मीर्गृहेष्वसौ
तपस्विषु तपस्या च श्रीरूपासा नृपेषु च। या चाग्नौदाहिकारूपा प्रभारूपा च भास्करे
शोभास्वरूपा चन्द्रे च पद्मेषु च सुशोभना। सर्वशक्तिस्वरूपा या कृष्णे परमात्मनि ॥

यया च शक्तिमानात्मा यया च शक्तिमज्जगत्।
यया विना जगत् सर्वं जीवन्मृतमिव स्थितम् ॥ ७६ ॥

या च संसारवृक्षस्य वीजरूपासनातनी। स्थितिरूपा वुद्धिरूपा फलरूपा च नारद ॥

क्षुत्पिपासा दया श्रद्धा निद्रा तन्द्रा क्षमा धृतिः।
शान्तिर्लज्जा तुष्टिपुष्टिभ्रान्तिकान्त्यादिरूपिणी ॥ ७८ ॥

सा च संस्तूय सर्वेशं तत्पुरः समुवास ह। रत्नसिंहासनं तस्यै प्रददौ राधिकेश्वरः ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सस्त्रीकश्च चतुर्मुखः। पद्मनाभो नाभिपद्मान्निःससार पुमान् मुने ॥
कमण्डलुधरः श्रीमांस्तपस्वी ज्ञानिनां वरः। चतुर्मुखस्तं तुष्टाव प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा ॥
सुन्दरी सुन्दरीश्रेष्ठा शतचन्द्रसमप्रभा। वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता ॥ ८२ ॥
रत्नसिंहासने रम्ये संस्तूय सर्वकारणम्। उवास स्वामिना सार्द्धं कृष्णस्य पुरतोमुदा
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो द्विधारूपो वभूव सः। वामार्द्धाङ्गीमहादेवोदक्षिणोगोपिकापतिः
शुद्धस्फटिकसङ्काशः शतकोटिरविप्रभः। त्रिशूलपट्टिशधरो व्याघ्रचर्मधरो हरः ॥८५ ॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभजटाभारधरः परः। भस्मभूषणगात्रश्च सस्मितश्चन्द्रशेखरः ॥ ८६ ॥
दिगम्बरो नीलकण्ठः सर्पभूषणभूषितः। विभ्रद्दक्षिणहस्तेन रत्नमालां सुसंस्कृताम् ॥
प्रजपन् पञ्चवक्त्रेण ब्रह्मज्योतिः सनातनम्। सत्यस्वरूपं श्रीकृष्णं परमात्मानमीश्वरम्
कारणं कारणानाञ्च सर्वमङ्गलमङ्गलम्। जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहरंपरम् ॥८६॥
संस्तूय मृत्योर्मृत्युं तं जातोमृत्युञ्जयाभिधः। रत्नसिंहासने रम्ये समुवास हरेःपुरः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे देवदेव्युत्पत्तिर्नाम
द्वितीयोऽध्यायः।

तृतीयोऽध्यायः

विश्वनिर्णयवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथ डिम्बोजले तिष्ठन् यावद्वै ब्रह्मणो वयः । ततःस्वकालेसहसाद्विधारूपो बभूव सः ॥
तन्मध्ये शिशुरेकश्च शतकोटिरविप्रभः । क्षणं रोरूयमाणश्च स्तनान्धः पीड़ितः क्षुधा॥२॥
पितृमातृपरित्यक्तो जलमध्ये निराश्रयः । ब्रह्माण्डासंख्यनाथो यो ददर्शोर्द्ध्वमनाथवत्
स्थूलात्स्थूलतमःसोऽपिनाम्नादेवोमहाविराट् । परमाणुर्यथासूक्ष्मात्परःस्थूलात्तथाप्यसं
तेजसांषोड़शांशोऽयंकृष्णस्यपरमात्मनः । आधारोऽसंख्यविश्वानांमहाविष्णुश्चप्राकृतः ॥
प्रत्येकं रोमकूपेषु विश्वानि निखिलानिच । अद्यापितेषांसंख्याञ्चकृष्णोवक्तुंनहिक्षमः ॥
संख्या चेद्रजसामस्ति विश्वानां नकदाचन । ब्रह्मविष्णुशिवादीनांतथासंख्यानविद्यते ।
प्रतिविश्वेषुसन्त्येवंब्रह्मविष्णुशिवादयः । पाताला‌द्ब्रह्मलोकान्तंब्रह्माण्डंपरिकीर्त्तितम् ॥
तत ऊर्द्ध्वे च वैकुण्ठो ब्रह्माण्डाद् बहिरेव सः । सचसत्यस्वरूपश्चशश्वन्नारायणोयथा

तदूर्द्ध्वे चैव गोलोकः पञ्चाशत् कोटियोजनात् ।
नित्यः सत्यस्वरूपश्च यथा कृष्णस्तथाप्ययम् ॥१०॥

सप्तद्वीपमिता पृथ्वी सप्तसागरसंयुता । ऊनपञ्चाशदुपद्वीपासंख्यशैलवनान्विता ॥ ११॥
ऊर्द्ध्वं सप्त चस्वर्लोकाब्रह्मलोकसमन्विताः । पातालानिचसप्ताधश्चैवंब्रह्माण्डमेवच ॥
ऊर्द्ध्वं धरायाभूर्लोकोभुवर्लोकस्ततःपरः । स्वर्लोकस्तुततःपश्चान्महर्लोकस्ततोजनः ॥
ततःपरस्तपोलोकःसत्यलोकस्ततःपरः । ततःपरोब्रह्मलोकस्तप्तकाञ्चननिर्मितः ॥ १४ ॥
एवं सर्वं कृत्रिमञ्च धराभ्यन्तर एव च । तद्विनाशे विनाशश्च सर्वेषामेव नारद ॥ १५ ॥
जलबुद्बुदवत्सर्वं विश्वसंघमनित्यकम् । नित्यौगोलोकवैकुण्ठौसत्यौशश्वदकृत्रिमौ ॥
लोमकूपेचब्रह्माण्डंप्रत्येकमस्यनिश्चितम् । एषांसंख्यांनजानातिकृष्णोऽन्यस्यापिकाकथा
प्रत्येकं प्रतिब्रह्माण्डे ब्रह्मविष्णुशिवादयः । तिस्रः कोट्यःसुराणाञ्चसंख्यासर्वत्रपुत्रक ॥
दिगीशाश्चैव दिक्पाला नक्षत्राणि ग्रहादयः । भुविवर्णाश्चचत्वारोऽधोनागाश्चराचराः ॥
अथ कालेन स विराडूर्द्ध्वं दृष्ट्वा पुनः पुनः । डिम्बान्तरञ्च शून्यञ्च न द्वितीयं कथञ्चन ॥

चिन्तामवाप क्षुद्युक्तो रुरोद च पुनः पुनः । ज्ञानं प्राप्य तदाऽध्यौकृष्णःपरमपूरुषम् ॥
ततो ददर्श तत्रैव ब्रह्मज्योतिः सनातनम् । नवीननीरदश्यामं द्विभुजं पीतवाससम् ॥२२
सस्मितं मुरलीहस्तं भक्तानुग्रहकारकम् । जहास बालकस्तुष्टो दृष्ट्वा जनकमीश्वरम् ॥
वरं तस्मै ददौ तुष्टो वरेशः समयोचितम् । मत्समो ज्ञानयुक्तश्च क्षुत्पिपासाविवर्जितः ॥
ब्रह्माण्डासंख्यनिलयो भव वत्स लयावधि ।
निष्कामो निर्भयश्चैव सर्वेषां वरदोवरः । जरामृत्युरोगशोकपीड़ादिपरिवर्जितः ॥२५
इत्युक्त्वा तद्दक्षकर्णे महामन्त्रं षड़क्षरम् । त्रिः कृत्वा प्रजजापाद्यौवेदाङ्गमवरं परम् ॥२६
प्रणवादिचतुर्थ्यन्तं कृष्ण इत्यक्षरद्वयम् । वह्निज्वालान्तमिष्टञ्च सर्वविघ्नहरं परम् ॥२७
मन्त्रं दत्त्वा तदाहारं कल्पयामास वै प्रभुः । श्रूयतां तद्ब्रह्मपुत्र निबोधकथयामि ते ॥
प्रतिविश्वे यन्नैवेद्यं ददाति वैष्णवो जनः । षोड़शांशंविषयिणोविष्णोःपञ्चदशास्यवै ॥
निर्गुणस्यात्मनश्चैव परिपूर्णतमस्य च । नैवेद्येन च कृष्णस्य नहिकिञ्चित्प्रयोजनम् ॥
यद् ददाति च नैवेद्यं यस्मै देवाय यो जनः । सचखादतितत्सर्वंलक्ष्मीदृष्ट्या पुनर्भवेत् ॥
तञ्च मन्त्रं वरं दत्त्वा तमुवाच पुनर्विभुः । वरमन्यं किमिष्टन्ते तन्मे ब्रूहि ददामि ते ॥३२
कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच महाविराट् । अदन्तो बालकस्तत्र वचनं समयोचितम् ॥

महाविराट् उवाच ।

वरं मे त्वत्पदाम्भोजे भक्तिर्भवतु निश्चला । सन्ततं यावदायुर्मे क्षणं वा सुचिरञ्चवा ॥
त्वद्भक्तियुक्तोयोलोकेजीवन्मुक्तःससन्ततम् । त्वद्भक्तिहीनोमूर्खश्चजीवन्नपिमृतोहि सः ॥
किं तज्जपेन तपसा यज्ञेन पूजनेन च । व्रतेनैवोपवासेन पुण्येन तीर्थसेवया ॥ ३६ ॥
कृष्णभक्तिविहीनस्य मूर्खस्य जीवनं वृथा । येनात्मना जीवितश्च तमेवनहि मन्यते ॥३७
यावदात्माशरीरेऽस्तितावत्सशक्तिसंयतः । पश्चाद्यान्तिगतेतस्मिन्नस्वतन्त्राश्चशक्तयः ॥
स च त्वञ्चमहाभागसर्वात्माप्रकृतेःपरः । स्वेच्छामयश्चसर्वाद्योब्रह्मज्योतिः सनातनः ॥
इत्युक्त्वा बालक[illegible] विरराम च नारद । उवाच कृष्णःप्रत्युक्तिमधुरां श्रुतिसुन्दरीम् ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

सुचिरं सुस्थिरं तिष्ठ यथाहं त्वं तथा भव । ब्रह्मणोऽसंख्यपाते च पातस्तेनभविष्यति ॥

अंशेन प्रतिब्रह्माण्डे त्वञ्च पुत्र विराट् भव। त्वन्नाभिपद्मेब्रह्माचविश्वस्रष्टाभविष्यति।
ललाटे ब्रह्मणश्चैव रुद्रश्चैकादशैव तु। शिवांशेन भविष्यन्ति सृष्टिसञ्चरणाय वै ॥४
कालाग्निरुद्रस्तेष्वेको विश्वसंहारकारकः। पाताविष्णुश्च विषयीक्षुद्रांशेनभविष्यति।
मद्भक्तियुक्तः सततं भविष्यसि वरेण मे। ध्यानेन कमनीयं मांनित्यंद्रक्ष्यसिनिश्चितम्।
मातरं कमनीयाञ्चममवक्षःस्थलस्थिताम्। यामिलोकंतिष्ठवत्सेत्युक्त्वासोऽन्तरधीयत।
गत्वा स्वर्लोकं ब्रह्माणं शङ्करं स उवाच ह। स्रष्टारं स्रष्टुमीशञ्चःसंहर्त्तारञ्चतत्क्षणम्।

श्रीकृष्ण उवाच।

सृष्टिं स्रष्टुं गच्छ वत्स नाभिपद्मोद्भवोभव। महाविराट्लोमकूपे क्षुद्रस्यचविधेःशृणु।
गच्छ वत्स महादेवं ब्रह्मभालोद्भवो भव। अंशेन च महाभाग स्वयञ्च सुचिरं तपः।
इत्युक्त्वा जगतां नाथो विरराम विधेः सुतः। जगामनत्वातंब्रह्माशिवश्चशिवदायकः।
महाविराट्लोमकूपे ब्रह्माण्डगोलके जले। स बभूव विराट् क्षुद्रोविराडंशेनसाम्प्रतम्।
श्यामो युवा पीतवासाःशयानोजलतल्पके। ईषद्धास्यःप्रसन्नास्योविश्वरूपीजनार्दनः।
तन्नाभिकमले ब्रह्मा बभूव कमलोद्भवः। संभूय पद्मदण्डञ्च बभ्राम युगलक्षकः ॥ ५३
नान्तं जगाम दण्डस्य पद्मनाभस्य पद्मजः। नाभिजस्य च पद्मस्यचिन्तामापपितामहः।
स्वस्थानं पुनरागत्य दध्यौ कृष्णपदाम्बुजम्। ततो ददर्श क्षुद्रं तं ध्यानेन दिव्यचक्षुषा।
शयानं जलतल्पे च ब्रह्माण्डगोलकावृते। यल्लोमकूपे ब्रह्माण्डं तञ्च तत् परमीश्वरम्॥५
श्रीकृष्णञ्चापि गोलोकं गोपगोपीसमन्वितम्। तं संस्तूय वरंप्रापततःसृष्टिंचकारसः।
बभूवुर्ब्रह्मणः पुत्रा मानसाः सनकादयः। ततो रुद्राः कपालाच्च शिवांशैकादशस्मृताः।
बभूव पाता विष्णुश्च क्षुद्रस्य वामपार्श्वतः। चतुर्भुजश्च भगवान्श्वेतद्वीपनिवासकृत्।
क्षुद्रस्य नाभिपद्मे च ब्रह्म विश्वं ससर्ज सः। स्वर्गंमर्त्त्यञ्चपातालंत्रिलोकंसचराचरम्।
एवंसर्वलोमकूपे विश्वं प्रत्येकमेव च। प्रतिविश्वे क्षुद्रविराट् ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥६
इत्येवं कथितं वत्स कृष्णसङ्कीर्त्तनं शुभम्। सुखदंमोक्षदंसारंकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि।

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डेनारायणनारदसंवादेविश्वनिर्णयवर्णनंनाम तृतीयोऽध्यायः।

चतुर्थोऽध्यायः

सरस्वतीपूजाविधानं मन्त्रश्च ।

नारद उवाच ।

श्रुतं सर्वमपूर्वञ्च त्वत्प्रसादात् सुधोपमम् । अधुना प्रकृतीनाञ्च व्यासं वर्णय पूजनम् ॥

कस्याः पूजा कृता केन कथं मर्त्ये प्रकाशिता ।

केन वा पूजिता कावा केन का वा स्तुता मुने ॥ २ ॥

कवचंस्तोत्रमन्त्रञ्च प्रभावंचरितंशुभम् । काभिःकाभ्योवरो दत्तस्तन्मेव्याख्यातुमर्हसि॥

नारायण उवाच ।

गणेशजननीदुर्गाराधा लक्ष्मीःसरस्वती । सावित्रीचसृष्टिविधौ प्रकृतिःपञ्चधास्मृता ॥

आसीत् पूजा प्रसिद्धाच प्रभावः परमाद्भुतः । सुधोपमञ्च चरितं सर्वमङ्गलकारणम् ॥

प्रकृत्यंशाःकलायाश्च तासाञ्च चरितंशुभम् । सर्वंवक्ष्यामिते ब्रह्मन् सावधानं निशामय॥

वाणी वसुन्धरागङ्गा षष्ठी मङ्गलचण्डिका । तुलसीमनसा निद्रास्वाहास्वधाच दक्षिणा ॥

तेजसा मत्समास्ताश्च रूपेण च गुणेन च ॥ ८ ॥

संक्षेपमासाञ्चरितं पुण्यदं श्रुतिसुन्दरम् । जीवकर्मविपाकञ्च तच्च वक्ष्यामि सुन्दरम् ॥

दुर्गायाश्चैव राधाया विस्तीर्णं चरितंमहत् । तच्च पश्चात् प्रवक्ष्यामि संक्षेपंक्रमतःश्रृणु॥

आदौ सरस्वतीपूजा श्रीकृष्णेन विनिर्मिता । यत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ मूर्खो भवति पण्डितः॥

आविर्भूतायदा देवी वक्त्रतः कृष्णयोषितः । इयेष कृष्णं कामेन कामुकी कामरूपिणी ।

स च विज्ञाय तद्भावंसर्वज्ञः सर्वमातरम् । तामुवाच हितंसत्यं परिणामसुखावहम् ॥१३

श्रीकृष्ण उवाच ।

भज नारायणं साध्वि ! मदंशञ्च चतुर्भुजम् । युवानं सुन्दरं सर्वगुणयुक्तञ्च मत्समम्

कामदंकामिनीनाञ्च तासाञ्च कामपूरकम् । कोटिकन्दर्पलावण्यंलीलाप्यकृतमीश्वरम्

कान्तेकान्तञ्चमांकृत्वा यदि स्थातुमिहेच्छसि । त्वत्तोबलवतीराधा नतेभद्रंभविष्यति

योयस्माद्बलवान्वाणि ! ततोऽन्यंरक्षितुंक्षमः । कथंपरान्साधयतियदिस्वयमनीश्वरः ॥
सर्वेशः सर्वशास्ताहं राधां राधितुमक्षमः । तेजसा मत्समा साच रूपेण च गुणेन च ॥
प्राणाधिष्ठातृदेवीसाप्रणांस्त्यक्तुञ्चकःक्षमः । प्राणतोऽपिप्रियःकुत्रकेषांवास्तिचकश्चन ॥
त्वंभद्रेगच्छ वैकुण्ठं तवभद्रं भविष्यति । पतिन्तमीश्वरं कृत्वा मोदस्वसुचिरं सुखम् ॥
लोभमोहकामकोपमानहिंसाविवर्जिता । तेजसा त्वत्समा लक्ष्मी रूपेण च गुणेण च ।
तयासार्द्धंभव प्रीत्याशश्वत् कालंप्रयास्यति । गौरवंमद्वरात् तुल्यं करिष्यतिपतिर्द्वयोः ॥
प्रतिविश्वेषु ते पूजा महतींते मुदान्विताः । माघस्य शुक्लपञ्चम्यां विद्यारम्भेषु सुन्दरि ॥
मानवामनवोदेवा मुनीन्द्राश्च मुमुक्षवः । सन्तश्चयोगिनः सिद्धानागगन्धर्वकिन्नराः ॥
मद्वरेण करिष्यन्तिकल्पे कल्पेयथाविधि । भक्तियुक्ताश्च दत्त्वावै चोपचारांश्चषोड़श ॥
काण्वशाखोक्तविधिना ध्यानेनस्तवनेनच । जितेन्द्रियाःसंयताश्च घटेचपुस्तकेऽपिच ॥
कृत्वासुवर्णगुटिकां गन्धचन्दनचर्च्चिताम् । कवचन्ते ग्रहीष्यन्तिकण्ठे वा दक्षिणे भुजे ॥
पठिष्यन्तिच विद्वांसः पूजाकालेच पूजिते । इत्युक्त्वा पूजयामास तां देवीं सर्वपूजितः ।
ततस्तत्पूजनंचक्रुर्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । अनन्तश्चापि धर्मश्च मुनीन्द्राः सनकादयः ।२६।
सर्वे देवाश्च मनवो नृपाश्च मानवादयः । बभूव पूजिता नित्या सर्वलोकैः सरस्वती ॥

नारद उवाच ।

पूजाविधानं स्तवनं ध्यानं कवचमीप्सितम् । पूजोपयुक्तं नैवेद्यं पुष्पञ्च चन्दनादिकम् ॥
वद वेदविदां श्रेष्ठ श्रोतुं कौतूहलं मम । वर्द्धते साम्प्रतं शश्वत् किमिदं श्रुतिसुन्दरम् ॥

नारायण उवाच ।

शृणु नारद वक्ष्यामि काण्वशाखोक्तपद्धतिम् ।
जगन्मातुः सरस्वत्याः पूजाविधिसमन्विताम् ॥ ३३ ॥

माघस्यशुक्लपञ्चम्यां विद्यारम्भदिनेऽपि च । पूर्वेऽह्नि संयमंकृत्वातत्राह्नि संयतःशुचिः ॥
स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्व घटं संस्थाप्य भक्तितः । संपूज्य देवषट्कञ्च नैवेद्यादिभिरेवच ॥
गणेशञ्च दिनेशञ्चवह्निं विष्णुंशिवंशिवाम् । संपूज्य संयतोऽग्रेच ततोऽभीष्टं प्रपूजयेत् ॥
ध्यानेनवक्ष्यमाणेन ध्यात्वावाह्यघटेबुधः । ध्यात्वा पुनः षोड़शोपचारेण पूजयेद्व्रती ॥

पूजोपयुक्तंनैवेद्यं यद्यद्वेदे निरूपितम्। वक्ष्यामिसाम्प्रतं किञ्चिद्यथाधीतंयथागमम् ॥
नवनीतं दधिक्षीरं लाजाश्च तिललड्डुकम्। इक्षुमिक्षुरसं शुक्लवर्णं पक्वगुडं मधु ॥३६॥
स्वस्तिकंशर्करां शुक्लधान्यस्याक्षतमक्षतम्। अस्विन्नशुक्लधान्यस्य पृथुकं शुक्लमोदकम् ॥
घृतसैन्धवसंस्कारैर्हविष्यान्नश्च व्यञ्जनैः। यवंगोधूमचूर्णानां पिष्टकं घृतसंस्कृतम् ॥४१॥
पिष्टकं स्वस्तिकस्यापि पक्वरम्भाफलस्यच। परमान्नश्च सघृतंमिष्टान्नश्च सुधोपमम् ॥
नारिकेलं तदुदकं केशरं मूलमार्द्रकम्। पक्वरम्भाफलं चारु श्रीफलं वदरीफलम् ॥
कालदेशोद्भवं पक्वफलं शुक्लं सुसंस्कृतम् ॥ ४३ ॥
सुगन्धि शुक्लपुष्पञ्च सुगन्धि शुक्लचन्दनम्। नवीनशुक्लवस्त्रञ्च शङ्खञ्च सुमनोहरम् ॥
माल्यञ्च शुक्लपुष्पाणां शुक्लहारञ्च भूषणम् ॥ ४४ ॥
यद्दृष्टञ्च श्रुतौ ध्यानं प्रशस्यं श्रुतिसुन्दरम्। तन्निबोध महाभाग भ्रमभञ्जनकारणम् ॥
सरस्वतीं शुक्लवर्णां सस्मितां सुमनोहरम्। कोटिचन्द्रप्रभामुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहाम् ।४६।
वह्निशुद्धांशुकाधानां सस्मितां सुमनोहराम्। रत्नसारेन्द्रनिर्माणवरभूषणभूषिताम् ॥४७॥
सुपूजितां सुरगणैर्ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः। वन्दे भक्त्या वन्दितां तां मुनीन्द्रमनुमानवैः ॥
एवं ध्यात्वाचमूलेन सर्वं दत्त्वा विचक्षणः। संस्तूय कवचं धृत्वा प्रणमेद्दण्डवद्भुवि ॥
येषाञ्चेयमिष्टदेवी तेषां नित्यक्रिया मुने। विद्यारम्भेच सर्वेषां वर्षान्ते पञ्चमीदिने ॥५०
सर्वोपयुक्तो मूलश्च वैदिकाष्टाक्षरःपरः। येषां येनोपदेशो वा तेषां स मूल एव च ॥
सरस्वतीचतुर्थ्यन्तो वह्निजायान्त एव च ॥ ५१ ॥
श्रीं ह्रीं स्वरस्वत्यै स्वाहा। लक्ष्मीमायादिकश्चैव मन्त्रोऽयं कल्पपादपः ॥ ५२ ॥
पुरा नारायणश्चेमं वाल्मीकाय कृपानिधिः। प्रददौ जाह्नवीतीरे पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥
भृगुर्ददौ च शुक्राय पुष्करे सूर्य्यपर्वणि। चन्द्रपर्वणि मारीचो ददौ वाक्पतये मुदा ॥
भृगवेच ददौ तुष्टो ब्रह्मा वदरिकाश्रमे। आस्तिकाय जरत्कारुर्ददौ क्षीरोदसन्निधौ ॥
वि[illegible]ण्डको ददौ मेरौ ऋष्यशृङ्गाय धीमते ॥ ५५ ॥
शिवः कणादमुनये गौतमाय ददौ मुने। सूर्य्यश्च याज्ञवल्क्याय तथा कात्यायनायच ॥
शेषः पाणिनयेचैव भरद्वाजाय धीमते। ददौ शाकटायनाय सुतले बलिसंसदि ॥ ५७॥

चतुर्लक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् । यदिस्यात् सिद्धमन्त्रोहि वृहस्पतिसमोभवेत् ॥
कवचंश्रृणु विप्रेन्द्र यद् दत्तं विधिना पुरा । विश्वश्रेष्ठं विश्वजयं भृगवे गन्धमादने ॥

भृगुरुवाच ।

ब्रह्मन् ब्रह्मविदां श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानविशारद । सर्वज्ञ सर्वजनक सर्वेश सर्वपूजित ॥ ६० ॥
सरस्वत्याश्च कवचं ब्रूहि विश्वजयं प्रभो । अजातमायमन्त्राणां समूहसंयुतं परम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

श्रृणु वत्स प्रवक्ष्यामिकवचं सर्वकामदम् । श्रुतिसारं श्रुतिसुखं श्रुत्युक्तं श्रुतिपूजितम् ॥
उक्तं कृष्णेन गोलोके मह्यं वृन्दावने वने । रासेश्वरेण विभुना रासेन रासमण्डले ।६३
अतीवगोपनीयञ्च कल्पवृक्षसमं परम् । अश्रुताद्भुतमन्त्राणां समूहैश्च समन्वितम् ॥६४
यद्धृत्वापठनाद् ब्रह्मन् वुद्धिमांश्च वृहस्पतिः । यद्धृत्वा भगवान् शुक्रःसर्वदैत्येषु पूजितः।

पठनाद्धारणाद् वाग्मी कवीन्द्रो वाल्मिको मुनिः ।
स्वायम्भुवो मनुश्चैव यद् धृत्वा सर्वपूजितः ॥ ६६ ॥
कणादो गौतमः कण्वः पाणिनिः शाकटायनः ।
ग्रन्थश्चकार यद् धृत्वा दक्षः कात्यायनः स्वयम् ॥ ६७ ॥

धृत्वा वेदविभागञ्च पुराणान्यखिलानि च । चकार लीलामात्रेण कृष्णद्वैपायनःस्वयम् ।
शातातपश्च संवर्त्तो वशिष्ठश्च पराशरः । यद् धृत्वा पठनाद् ग्रन्थं याज्ञवल्क्यश्चकार सः ॥
ऋष्यश्रृङ्गो भरद्वाजश्चास्तीको देवलस्तथा । जैगीषव्योऽथजावालिर्यद्धृत्वासर्वपूजितः
कवचस्यास्य विप्रेन्द्र ऋषिरेषः प्रजापतिः । स्वयं वृहस्पतिश्छन्दो देवो रासेश्वरः प्रभुः
सर्वतत्त्वपरिज्ञानसर्वार्थसाधनेषु च । कवितासु च सर्वासु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥
ओं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा शिरोमे पातुसर्वतः । श्रीं वाग्देवतायैस्वाहा भालं मे सर्वदावतु

ओं सरस्वत्यै स्वाहेति श्रोत्रं पातु निरन्तरम् ।
ओं श्रीं ह्रीं भारत्यै स्वाहा नेत्रयुग्मं सदावतु ॥ ७४ ॥
ऐं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा नासां मे सर्वतोऽवतु ।
ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा ओष्ठं सदावतु ॥ ७५ ॥

ओं श्रीं ह्रीं ब्राह्म्यै स्वाहेति दन्तपंक्तीःसदावतु । ऐमित्येकाक्षरो मन्त्रो ममकण्ठंसदावतु
ओं ह्रीं ह्रीं पातुमे ग्रीवांस्कन्धंमे श्रींसदावतु । श्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहावक्षःसदावतु
ओं ह्रीं विद्यास्वरूपायै स्वाहा मे पातु नाभिकाम् ।
ओं ह्रीं क्लीं वाण्यै स्वाहेति मम पृष्ठं सदावतु ॥ ७८ ॥
ओं सर्ववर्णात्मिकायै पादयुग्मं सदावतु । ओं रागाधिष्ठातृदेव्यै सर्वाङ्गं मे सदावतु ॥
ओं सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा प्राच्यां सदावतु ।
ओं ह्रीं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहाग्निदिशि रक्षतु ॥ ८० ॥
ओं ऐं ह्रीं श्रीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा । सततं मन्त्रराजोऽयं दक्षिणे मां सदावतु ॥
ओं ह्रीं श्रीं त्र्यक्षरो मन्त्रो नैर्ऋत्यां मे सदावतु ।
कविजिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा मां वारुणेऽवतु ॥ ८२ ॥
ओं सदाम्बिकायै स्वाहावायव्ये मां सदावतु । ओं गद्यपद्यवासिन्यैस्वाहामामुत्तरेऽवतु
ओं सर्वशास्त्रवासिन्यैस्वाहैशान्यां सदावतु । ओंह्रींसर्वपूजितायैस्वाहाचोर्ध्वंसदावतु
ऐं ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहाऽधो मां सदावतु ।
ओं ग्रन्थबीजरूपायै स्वाहा मां सर्वतोऽवतु ॥ ८५ ॥
इति ते कथितं विप्र सर्वमन्त्रौघविग्रहम् । इदं विश्वजयं नाम कवचं ब्रह्मरूपिणम् ॥
पुरा श्रुतं धर्मवक्त्रात् पर्वते गन्धमादने । तव स्नेहान्मयाख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित्
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद् वस्त्रालङ्कारचन्दनैः । प्रणम्य दण्डवद्भूमौ कवचं धारयेत्सुधीः
पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धन्तु कवचं भवेत् । यदि स्यात्सिद्धकवचो बृहस्पतिसमो भवेत्
महावाग्मी कवीन्द्रश्च त्रैलोक्यविजयी भवेत् । शक्नोति सर्वं जेतुं स कवचस्य प्रसादतः
इदं ते काण्वशाखोक्तं कथितं कवचं मुने । स्तोत्रं पूजाविधानञ्च ध्यानञ्च वन्दनं तथा

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारदसंवादे सरस्वतीकवचं नाम चतुर्थोऽध्यायः ।

पञ्चमोऽध्यायः

याज्ञवल्क्योक्तवाणीस्तवः ।

नारायण उवाच ।

वाग्देवतायाः स्तवनं श्रूयतां सर्वकामदम् । महामुनिर्याज्ञवल्क्यो येन तुष्टाव तां पुरा ॥
गुरुशापाच्च स मुनिर्हतविद्यो बभूव ह । तदा जगाम दुःखार्त्तो रविस्थानञ्च पुण्यदम् ॥
संप्राप्य तपसा सूर्य्यं कोणार्के दृष्टिगोचरे । तुष्टाव सूर्य्यं शोकेन रुरोद च पुनः पुनः ॥
सूर्य्यस्तं पाठयामास वेदवेदाङ्गमीश्वरः । उवाच स्तुहि वाग्देवीं भक्त्या च स्मृतिहेतवे
तमित्युक्त्वा दीननाथोअन्तर्द्धानंचकार सः । मुनिः स्नात्वा चतुष्टावभक्तिनम्रात्मकन्धरः

याज्ञवल्क्य उवाच ।

कृपां कुरु जगन्मातर्मामेव हतचेतसम् । गुरुशापात् स्मृतिभ्रष्टं विद्याहीनञ्च दुःखितम् ॥
ज्ञानं देहि स्मृतिंदेहि विद्यां विद्याधिदेवते । प्रतिष्ठांकवितांदेहि शक्तिशिष्यप्रबोधिकाम्
ग्रन्थकर्तृकशक्तिञ्च सत्शिष्यं सुप्रतिष्ठितम् । प्रतिभांसत्सभायाञ्चविचारक्षमतां शुभाम्
लुप्तं सर्वं दैववशान्नवीभूतं पुनः कुरु । यथाङ्कुरं भस्मनि च करोति देवता पुनः ॥ ६ ॥
ब्रह्मस्वरूपा परमा ज्योतीरूपा सनातनी । सर्वविद्याधिदेवी या तस्यै वाण्यै नमो नमः
यया विना जगत् सर्वं शश्वद्जीवन्मृतं सदा । ज्ञानाधिदेवीयातस्यैसरस्वत्यै नमोनमः
यया विना जगत्सर्वं मूकमुन्मत्तवत् सदा । वागधिष्ठातृदेवी या तस्यै वाण्यै नमोनमः
हिमचन्दनकुन्देन्दुकुमुदाम्भोजसन्निभा । वर्णाधिदेवी या तस्यै चाक्षरायै नमो नमः ॥
विसर्गविन्दुमात्रासु यदधिष्ठानमेव च । तदधिष्ठात्री या देवी भारत्यै ते नमो नमः ॥

यया विनात्र संख्याकृत् संख्यां कर्त्तुं न शक्यते ।
कालसंख्यास्वरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः ॥ १५ ॥

व्याख्यास्वरूपा यादेवीव्याख्याधिष्ठातृदेवता । भ्रमसिद्धान्तरूपा या तस्यैदेव्यैनमोनमः
स्मृतिशक्तिर्ज्ञानशक्तिर्बुद्धिशक्तिस्वरूपिणी । प्रतिभा कल्पनाशक्तिर्या च तस्यै नमो नमः
सनत्कुमारो ब्रह्माणं ज्ञानं पप्रच्छ यत्र वै । बभूव जड़वत् सोऽपि सिद्धान्तंकर्त्तुमक्षमः

तदा जगाम भगवानात्मा श्रीकृष्ण ईश्वरः । उवाच सततं स्तोत्रं वाणीमितिप्रज्ञापतिम्
स च तुष्टाव त्वां ब्रह्मा चाज्ञया परमात्मनः । चकारत्वत्प्रसादेन तदा सिद्धान्तमुत्तमम्
यदाप्यनन्तं पप्रच्छ ज्ञानमेकं वसुन्धरा । बभूव मूकवत् सोऽपि सिद्धान्तं कर्त्तुमक्षमः
तदा त्वाञ्च स तुष्टाव संत्रस्तः कश्यपाज्ञया । ततश्चकार सिद्धान्तं निर्मलं भ्रमभञ्जनम्
व्यासः पुराणसूत्रञ्च पप्रच्छ वाल्मिकं यदा । मौनीभूतः स सस्मारत्वामेवंजगदम्बिकाम्
तदा चकार सिद्धान्तं मद्वरेण मुनीश्वरः । संप्राप निर्मलं ज्ञानं प्रमादध्वंसकारणम् ॥
पुराणसूत्रं श्रुत्वा स व्यासः कृष्णकुलोद्भवः । त्वां सिषेव दध्यौ च शतवर्षञ्च पुष्करे ॥
तदा त्वत्तो वरं प्राप्य स कवीन्द्रो बभूव ह ॥ २५ ॥
तदा वेदविभागञ्च पुराणानि चकार ह । यदा महेन्द्रे पप्रच्छ तत्त्वज्ञानं शिवाशिवम् ॥
क्षणं त्वामेव संचिन्त्य तस्यैज्ञानं ददौ विभुः । पप्रच्छशब्दशास्त्रञ्च महेन्द्रश्चबृहस्पतिम्
दिव्यं वर्षसहस्रञ्च स त्वां दध्यौ च पुष्करे । तदा त्वत्तो वरं प्राप्य दिव्यंवर्षसहस्रकम्
उवाच शब्दशास्त्रञ्च तदर्थञ्च सुरेश्वरम् ॥ २८ ॥
अध्यापिताश्च यैः शिष्या यैरधीतं मुनीश्वरैः ॥ २६ ॥
ते च त्वां परिसंचिन्त्य प्रवर्त्तन्ते सुरेश्वरि ।
त्वं संस्तुता पूजिता च मुनीन्द्रमनुमानवैः । दैत्येन्द्रैश्च सुरैश्चापि ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः
जड़ीभूतः सहस्रास्यः पञ्चवक्त्रश्चतुर्मुखः । यां स्तोतुं किमहं स्तौमितामेकास्येनमानवः
इत्युक्त्वा याज्ञवल्क्यश्च भक्तिनम्रात्मकन्धरः । प्रणनाम निराहारो रुरोद च मुहुर्मुहुः ॥
तदा ज्योतिःस्वरूपासातेनादृष्टाप्युवाच तम् । सुकवीन्द्रो भवेत्युक्त्वावैकुण्ठञ्चजगामह
याज्ञवल्क्यकृतं वाणीस्तोत्रं यः संयतः पठेत् । सुकवीन्द्रोमहावाग्मी बृहस्पतिसमो भवेत्
महामूर्खश्च दुर्मेधो वर्षमेकञ्च यः पठेत् । स पण्डितश्च मेधावी सुकविश्च भवेद्ध्रुवम्
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे याज्ञवल्क्योक्तवाणी-
स्तवो नाम पञ्चमोऽध्यायः ।

षष्ठोऽध्यायः

सरस्वत्युपाख्यानम् सर्वासां कलहश्च ।

नारद उवाच ।

सरस्वती सा वैकुण्ठे स्वयं नारायणान्तिके । गङ्गाशापेन कलया कलहाद्भारतेसरित् ॥
पुण्यदा पुण्यजननी पुण्यतीर्थस्वरूपिणी । पुण्यवद्भिर्निषेव्या च स्थितिः पुण्यवतां मुने ॥
तपस्विनां तपोरूपा तपस्याकाररूपिणी । कृतपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निस्वरूपिणी ॥३॥
ज्ञाने सरस्वतीतोये मृतं यैर्मानवैर्भुवि । तेषां स्थितिश्च वैकुण्ठे सुचिरं हरिसंसदि ॥४॥
भारतेकृतपापी च स्नात्वा तत्रावलीलया । मुच्यतेसर्वपापेभ्यो विष्णुलोकेवसेच्चिरम्
चतुर्दश्यां पौर्णमास्यामक्षयायां दिनक्षये । व्यतीपातेचग्रहणेऽन्यस्मिन् पुण्यदिनेऽपि च
आनुषङ्गेन यः स्नाति हेलयाश्रद्धयापिवा । सारूप्यं लभते नूनं वैकुण्ठे स हरेरपि ॥ ७
सरस्वतीमन्त्रकश्च मासमेकन्तु यो जपेत् । महामूर्खः कवीन्द्रश्च सभवेन्नात्र संशयः
नित्यं सरस्वतीतोये यः स्नाति मुण्डयेन्नरः । न गर्भवासं कुरुते पुनरेव स मानवः
इत्येवं कथितं किञ्चिद्भारतीगुणकीर्त्तनम् । सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयःश्रोतुमिच्छसि
नारायणवचः श्रुत्वा नारदो मुनिसत्तमः । पुनः पप्रच्छ सन्देहच्छेदं शौनक सत्वरम्

नारद उवाच ।

कथं सरस्वती देवी गंगाशापेन भारते । कलया कलहेनैव बभूव पुण्यदा सरित् ।१२
श्रवणे श्रुतिसाराणां वर्द्धते कौतुकं मम । कथामृतानां नो तृप्तिः केन श्रेयसि तृप्यते

कथं शशाप सा गङ्गा पूजितां तां सरस्वतीम् ।
शान्तसत्वस्वरूपा च पुण्यदा सर्वदा नृणाम् ॥ १४ ॥

तेजस्विन्योर्द्वयोर्वादकारणं श्रुतिसुन्दरम् । सुदुर्लभं पुराणेषु तन्मेव्याख्यातुमर्हसि ।

नारायण उवाच ।

शृणुनारद वक्ष्यामि कथामेतांपुरातनीम् । यस्याः स्मरणमात्रेण सर्वपापात्प्रमुच्यते
लक्ष्मीःसरस्वतीगङ्गातिस्रोभार्य्याहरेरपि । प्रेम्णासमास्तास्तिष्ठन्तिसततंहरिसन्निधौ

चकारसैकदागङ्गाविष्णोर्मुखनिरीक्षणम् । सस्मितातिसकामा च सकटाक्षं पुनःपुनः ॥
विभुर्जहास तद्वक्त्रं निरीक्ष्य च क्षणं मुदा । क्षमाञ्चकार तद्दृष्ट्वा लक्ष्मीर्नैव सरस्वती ।

बोधयामास तां पद्मा सत्वरूपा च सस्मिता ।
क्रोधाविष्टा च सा वाणी न च शान्ता बभूव ह ॥ २० ॥

उवाच गङ्गां भर्तारं रक्तास्या रक्तलोचना । कम्पिता कोपवेगेनशश्वत्प्रस्फुरिताधरा ॥

सरस्वत्युवाच ।

सर्वत्र समताबुद्धिः सद्भर्त्तुः कामिनीः प्रति । धर्मिष्ठस्य वरिष्ठस्य विपरीता खलस्यच ।
ज्ञातं सौभाग्यमधिकं गङ्गायान्ते गदाधर । कमलायाञ्च तत्तुल्यं न च किञ्चिन्मयिप्रभो ।
गङ्गायाः पद्मया सार्द्धं प्रीतिश्चापि सुसम्मता । क्षमाञ्चकार तेनेदं विपरीतं हरिप्रिया ॥
किं जीवनेन मेऽत्रैवदुर्भगायाश्चसाम्प्रतम् । निष्फलंजीवनंतस्या या पत्युः प्रेमवञ्चिता ।
त्वां सर्वेशं सत्वरूपं ये वदन्ति मनीषिणः । ते च मूर्खा न वेदज्ञा न जानन्तिमतितव ।

सरस्वतीवचः श्रुत्वा दृष्ट्वा तां कोपसंयुताम् ।
मनसा स समालोच्य प्रजगाम वहिः समाम् ॥ २७ ॥

गते नारायणे गंगामुवाच निर्भयं रुषा । रागाधिष्ठातृदेवी सा वाक्यं श्रवणदुःसहम् ॥

हे निर्लज्जे सकामे त्वं स्वामिगर्वं करोषि किम् ।
अधिकं स्वामिसौभाग्यं विज्ञापयितुमिच्छसि ॥ २६ ॥

मानचूर्णं करिष्यामि तवाद्यहरिसन्निधौ । किं करिष्यति ते कान्तो ममैवकान्तवल्लभे ।
इत्येबमुक्त्वा गंगायाः केशं ग्रहीतुमुद्यता । वारयामास तां पद्मा मध्यदेशस्थिता सती ॥
शशाप वाणी तां पद्मां महाकोपवती सती । वृक्षरूपा सरिद्रूपा भविष्यसि न संशयः ॥
विपरीतं यतो दृष्ट्वा किञ्चिन्न वक्तुमर्हसि । सन्तिष्ठसि सभामध्येयथावृक्षोयथासरित् ॥
शापं श्रुत्वा च सा देवी न शशापचुकोपन । तत्रैवदुःखितातस्थौवाणींधृत्वाकरेणच ॥
अत्युद्धताञ्च तां दृष्ट्वा कोपप्रस्फुरितानना । उवाच गङ्गा तां देवीं पद्माञ्चपद्मलोचना ॥

गङ्गोवाच ।

त्वमुत्सृज महोग्राञ्च पद्मे किं मे करिष्यति । वाग्दुष्टावागधिष्ठात्रीदेवीयंकलहप्रिया ॥

यावती योग्यतास्याश्च यावती शक्तिरेव वा । तया करोतु वादश्चमयासार्द्धंसुदुर्मुखा।
स्वबलं यन्मम बलं विज्ञापयितुमर्हतु । जानन्तु सर्वेह्युभयोः प्रभावं विक्रमं सति ॥३
इत्येवमुक्त्वा सा देवी वाण्यै शापंददाविति । सरित्स्वरूपाभवतुसायात्वाञ्चशशापह।
अधोमर्त्यं सा प्रयातु सन्ति यत्रैव पापिनः । कलौ तेषां च पापांशंलभिष्यतिन संशय
इत्येवं वचनं श्रुत्वा तां शशाप सरस्वती । त्वमेव यास्यसिमहींपापिपापं लभिष्यसि।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र भगवानाजगाम ह । चतुर्भुजश्चतुर्भिश्च पार्षदैश्च चतुर्भुजैः ॥ ४२।
सरस्वतीं करे धृत्वा वासयामास वक्षसि । बोधयामास सर्वज्ञः सर्वज्ञानं पुरातनम्।
श्रुत्वा रहस्यंतासाञ्चशापस्यकलहस्यच । उवाचदुःखितास्ताश्चवाक्यंसामयिकंविभुः।

श्रीभगवानुवाच ।

लक्ष्मि त्वं कलयागच्छधर्मध्वजगृहंशुभे । अयोनिसम्भवाभूमौतस्यकन्याभविष्यसि।
तत्रैव दैवदोषेण वृक्षत्वञ्च लभिष्यसि । मदंशस्यासुरस्यैव शङ्खचूडस्य कामिनी ॥४६
भूत्वा पश्चाच्च मत्पत्नी भविष्यसिनसंशयः । त्रैलोक्यपावनीनाम्नातुलसीतिच भारते।
कलया च सरिद्भूत्वा शीघ्रं गच्छ वरानने । भारतं भारतीशापान्नाम्नापद्मावतीभव।
गङ्गे यास्यसि पश्चात् त्वमंशेनविश्वपावनी । भारतंभारतीशापात्पापदाहायदेहिनाम्।
भगीरथस्य तपसा तेन नीता सुदुष्करात् । नाम्ना भागीरथी पूताभविष्यसिमहीतले॥
मदंशस्य समुद्रस्य जायाजाये ममाज्ञया । मत्कलांशस्य भूपस्य शान्तनोश्च सुरेश्वरि॥
गङ्गाशापेन कलया भारतं गच्छ भारति । कलहस्य फलंभुङ्क्ष्वसपत्नीभ्यांसहाच्युते॥
स्वयञ्च ब्रह्मसदनं ब्रह्मणः कामिनी भव । गङ्गा यातु शिवस्थानमत्र पद्मैवतिष्ठतु ।५३
शान्ता च क्रोधरहितामद्भक्तासत्त्वरूपिणी । महासाध्वीमहाभागासुशीलाधर्मचारिणी॥
यदंशकलया सर्वा धर्मिष्ठाश्च पतिव्रताः । शान्तरूपाः सुशीलाश्च प्रतिविश्वेषुयोषितः॥
तिस्रोभार्य्यास्त्रयः शालास्त्रयो भृत्याश्चबान्धवाः । ध्रुवंवेदविरुद्धाश्चनह्येतेमङ्गलप्रदाः॥
स्त्रीपुंवच्च गृहे येषां गृहिणां स्त्रीवशः पुमान् । निष्फलञ्च जन्म तेषामशुभञ्च पदेपदे॥
मुखदुष्टा योनिदुष्टा यस्य स्त्री कलहप्रिया । अरण्यं तेन गन्तव्यं महारण्यं गृहाद्वरम्॥
जलानाञ्च स्थलानाञ्च फलानां प्राप्तिरेव च । सततं सुलभा तत्र न तेषांतद्गृहेऽपिच॥

वरमग्नौस्थितिर्हिंस्रजन्तूनांसन्निधौसुखम् । ततोऽपिदुःखंपुंसाञ्चदुष्टास्त्रीसन्निधौध्रुवम्॥
व्याधिज्वाला विषज्वाला वरंपुंसांवरानने । दुष्टास्त्रीणांमुखज्वालामरणादतिरिच्यते ॥
पुंसश्च स्त्रीजितस्यैव जीवनं निष्फलं ध्रुवम् । यदह्ना कुरुते कर्मनतस्यफलभाग्भवेत् ॥
स निन्दितोऽत्र सर्वत्र परत्र नरकं व्रजेत् । यशःकीर्त्तिविहीनोयोजीवन्नपिमृतोहिसः॥
बह्वीनाञ्च सपत्नीनां नैकत्र श्रेयसि स्थितिः । एकभार्य्यः सुखीनैवबहुभार्य्यःकदाचन ॥
गच्छ गङ्गे शिवस्थानं ब्रह्मस्थानं सरस्वती । अत्र तिष्ठतु मद्गेहे सुशीला कमलालया ॥
सुसाध्वी यस्य पत्नी च सुशीला च पतिव्रता । इह स्वर्गसुखंतस्य धर्ममोक्षे परत्रच ॥
पतिव्रता यस्य पत्नी सचमुक्तःशुचिःसुखी । जीवन्मृतोऽशुचिर्दुःखीदुःशीलापतिरेवयः ॥
इत्युक्त्वा जगतांनाथो विरराम च नारद । अत्युच्चैरुरुदुर्देव्यः समालिङ्ग्य परस्परम्॥
ताश्चसर्वाः समालोच्य क्रमेणोचुःसदीश्वरम् । कम्पिताःसाश्रुनेत्राश्चशोकेनचभयेनच ॥

सरस्वत्युवाच ।

विदायं देहि भो नाथ! दुष्टां मां जन्मशोधनम् ।
सत्स्वामिना परित्यक्ताः कुत्र जीवन्ति काः स्त्रियः ॥ ७० ॥

देहत्यागं करिष्यामि योगेन भारते ध्रुवम् । अत्युच्चतो निपतनं प्राप्तुमर्हति निश्चितम्॥

गङ्गोवाच ।

अहं केनापराधेन त्वया त्यक्ता जगत्पते । देहत्यागं करिष्यामि निर्दोषाया वधं लभ ॥
निर्दोषकामिनीत्यागं करोति यो जनो भवे । स याति नरकं कल्पं किं तेसर्वेश्वरस्यवा

लक्ष्मीरुवाच ।

नाथ सत्त्वस्वरूपस्त्वं कोपः कथमहो तव । प्रसादं कुरु भार्य्याभ्योमदीशस्य क्षमावरा
भारतं भारतीशापात् यास्यामिकलयायदि । कतिकालंस्थितिस्तत्रकदाद्रक्ष्यामितेपदम्
दास्यन्ति पापिनः पापं मह्यं स्नानावगाहनात् । केन तेन विमुक्ताहमागमिष्यामि तेपदम्
कलया तुलसीरूपा धर्मध्वजसुता सती । भूत्वा कदा लभिष्यामि त्वत्पादाम्बुजमच्युत
वृक्षरूपा भविष्यामि तदधिष्ठातृदेवता । मामुद्धरिष्यसि कदा तन्मे ब्रूहि कृपानिधे ॥७८
गङ्गा सरस्वतीशापाद् यदि यास्यतिभारतम् । शापेनमुक्तापापाच्चकदात्वांवालभिष्यति

गङ्गाशापेन सा वाणी यदि यास्यति भारतम् ।
कदा शापाद्विनिर्मुच्य लभिष्यसि पदं तव ॥ ८० ॥

तां वाणीं ब्रह्मसदनं गङ्गां वा शिवमन्दिरम् । गन्तुंवदसि हे नाथ ! तत्क्षमस्वचते व
इत्युक्त्वा कमलाकान्तपदं धृत्वा ननाम च । स्वकेशैर्वेष्टयित्वा च रुरोद च पुनः पुन
उवाच पद्मनाभस्तां पद्मां कृत्वा स्ववक्षसि । ईषद्धास्यः प्रसन्नास्यो भक्तानुग्रहकारकः

नारायण उवाच ।

त्वद्वाक्यमाचरिष्यमि स्ववाक्यञ्च सुरेश्वरि । समताञ्च करिष्यामि शृणु तत्क्रममेवच
भारती यातु कलया सरिद्रूपा च भारतम् । अर्द्धांशा ब्रह्मसदनं स्वयं तिष्ठतु मद्गृहे
भगीरथेन नीता सा गङ्गा यास्यति भारतम् । पूतं कर्त्तुं त्रिभुवनं स्वयं तिष्ठतुमद्गृहे
तत्रैव चन्द्रमौलेश्च मौलिंप्राप्स्यतिदुर्लभम् । ततःस्वभावतः पूताप्यतिपूता भविष्यति
कलांशांशेन त्वं गच्छ भारते कमलोद्भवे । पद्मावती सरिद्रूपा तुलसीवृक्षरूपिणी ।८
कलेः पञ्चसहस्रे च गतेवर्षेचमोक्षणम् । युष्माकंसरितांभूयोमद्गृहेचागमिष्यथ ॥८
सम्पदां हेतुभूता च विपत्तिः सर्वदेहिनाम् । विना विपत्तेर्महिमा केषां पद्मे भवेद्भवे
मन्मन्त्रोपासकानाञ्चसतांस्नानावगाहनात् । युष्माकंमोक्षणंपापात्पापिदत्ताच्चस्पर्शना
पृथिव्यांयानितीर्थानिसन्त्यसंख्यानि सुन्दरि । भविष्यन्तिचपूतानिमद्भक्तस्पर्शदर्शनात
सन्मन्त्रोपासका भक्ता भ्रमन्ति भारतेसति । पूतं कर्त्तुं भारतञ्चसुपवित्रां वसुन्धराम्
मद्भक्ता यत्र तिष्ठन्ति पादं प्रक्षालयन्ति च । तत्स्थानञ्चमहातीर्थंसुपवित्रंभवेद्ध्रुवम्
स्त्रीघ्नो गोघ्नः कृतघ्नश्च ब्रह्मघ्नोगुरुतल्पगः । जीवन्मुक्तोभवेत् पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्
एकादशीविहीनश्च सन्ध्याहीनोऽप्यनास्तिकः । नरघातीभवेत्पूतोमद्भक्तस्पर्शदर्शनात्
असिजीवी मसिजीवी धावकः शूद्रयाजकः । वृषवाहोभवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्
विश्वासघाती मित्रघ्नो मिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः । स्थाप्यहारीभवेत्पूतोमद्भक्तस्पर्शनात्
ऋणग्रस्तो वार्द्धुषिको जारजः पुंश्चलीपतिः । पूतश्च पुंश्चलीपुत्रो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्
शूद्राणां सूपकारश्च देवलो ग्रामयाजकः । अदीक्षितो भवेत् पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्
अश्वत्थघातकश्चैव मद्भक्तनिन्दकस्तथा । अनिवेद्यभोजी विप्रश्च पूतो मद्भक्तदर्शनात्

मातरं पितरं भार्य्यां भ्रातरं तनयं सुताम् । गुरोः कुलञ्चभगिनींवंशहीनञ्चबान्धवम् ॥
श्वश्रूञ्च श्वशुरञ्चैव यो न पुष्णाति नारद । स महापातकी पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥
देवद्रव्यापहारीचविप्रद्रव्यापहारकः । लाक्षालौहरसानाञ्च विक्रेता दुहितुस्तथा ॥१०४॥
महापातकिनश्चैते शूद्राणां शवदाहकः । भवेयुरेते पूताश्च मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥१०५॥

लक्ष्मीरुवाच ।

भक्तानां लक्षणं ब्रूहि भक्तानुग्रहकारक । येषां सन्दर्शनस्पर्शात् सद्यःपूता नराधमाः ॥
हरिभक्तिविहीनाश्च महाहङ्कारसंयुताः । स्वप्रशंसारता धूर्त्ताः शठाश्चसाधुनिन्दकाः ॥
पुनन्ति सर्वतीर्थानि येषां स्नानावगाहनात् । येषाञ्च पादरजसा पूता पादोदकान्मही ॥
येषां सन्दर्शनं स्पर्शं देवा वाञ्छन्ति भारते । सर्वेषां परमोलाभोवैष्णवानांसमागमः ॥
न ह्यम्मयानि तीर्थानि नदेवामृच्छिलामयाः । तेपुनन्त्युरुकालेनविष्णुभक्ताःक्षणादहो ॥

सौतिरुवाच ।

महालक्ष्मीवचः श्रुत्वा लक्ष्मीकान्तश्च सस्मितः । निगूढतत्त्वंकथितुमृषिश्रेष्ठोपचक्रमे ॥

श्रीनारायण उवाच ।

भक्तानां लक्षणं लक्ष्मि गूढं श्रुतिपुराणयोः । पुण्यस्वरूपंपापघ्नंसुखदं भक्तिमुक्तिदम् ॥
सारभूतं गोपनीयं न वक्तव्यं खलेषु च । त्वां पवित्रां प्राणतुल्यां कथयामि निशामय ॥
गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे प्रविशति । वदन्ति वेदवेदाङ्गास्तं पवित्रंनरोत्तमम् ।
पुरुषाणां शतं पूर्वं पूतं तज्जन्ममात्रतः । स्वर्गस्थं नरकस्थं वा मुक्तिप्राप्नोतितत्क्षणम् ॥
यैः कश्चिद् यत्र वाजन्मलब्धंयेषुचजन्मसु । जीवन्मुक्तास्तेचपूतायान्तिकालेहरेःपदम् ॥
मद्भक्तियुक्तो मत्पूजानियुक्तो मद्गुणान्वितः । मद्गुणश्लाघनीयश्चमन्निविष्टश्चसन्ततम्
मद्गुणश्रुतिमात्रेण सानन्दः पुलकान्वितः । सगद्गदः साश्रुनेत्रः स्वात्मविस्मृत एव च ॥
न वाञ्छन्ति सुखं मुक्तिसालोक्यादिचतुष्टयम् । ब्रह्मत्वममरत्वं वा तद्वाञ्छाममसेवने ॥
इन्द्रत्वञ्च मनुत्वञ्च देवत्वञ्च सुदुर्लभम् । स्वर्गवाह्यादिभोगञ्च स्वप्नेचनहिवाञ्छति ॥
ब्रह्माण्डानि विनश्यन्ति देवा ब्रह्मादयस्तथा । कल्याणभक्तियुक्तश्च मद्भक्तोनप्रणश्यति ॥

भ्रमन्ति भारते भक्तालब्ध्वाजन्मसुदुर्लभम् । तेऽपियान्तिमहींपूत्वानरास्तीर्थंममालयम्
इत्येतत् कथितं सर्वं कुरु पद्मे यथोचितम् । तदाज्ञाताश्च ताश्चक्रुर्हरिस्तस्थौ सुखासने
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारदसंवादे सरस्वत्युपाख्यानं ना
॥ षष्ठोऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः ।

कालकालेश्वरगुणनिरूपणम् ।

नारायण उवाच ।

सरस्वती पुण्यक्षेत्रे आजगाम च भारतम् । गङ्गाशापेन कलया स्वयं तस्थौहरेःपदम्
भारती भारतं गत्वा ब्राह्मी च ब्रह्मणःप्रिया । वागधिष्ठातृदेवीसातेनवाणीचकीर्त्तिता
सर्वविश्वं परिव्याप्य स्रोतस्येव हि दृश्यते । हरिः सरःसु तस्येयं तेन नाम्नासरस्वती
सरस्वती नदी साच तीर्थरूपातिपावनी । पापिपापेध्मदाहाय जलदग्निस्वरूपिणी ॥ ४
पश्चाद्भगीरथानीता महीं भागीरथी शुभा । समाजगाम कलया वाणीशापेन नारद ॥५
तत्रैव समये ताञ्च दधार शिरसा शिवः । वेगं सोढुमशक्ताया भुवः प्रार्थनया विभुः ॥
पद्माजगाम कलया साच पद्मावती नदी । भारतं भारतीशापात् स्वयंतस्थौ हरेःपदम्
ततोऽन्ययासा कलया ललाभजन्मभारते । धर्मध्वजसुता लक्ष्मीर्विख्यातातुलसीतिच
पुरा सरस्वतीशापात्तत्पश्चाद्धरिशापतः । बभूव वृक्षरूपा सा कलया विश्वपावनी ॥
कलेः पञ्चसहस्रञ्च वर्षं स्थित्वाच भारते । जग्मुस्तत्र सरिद्रूपं विहाय श्रीहरेः पदम्
यानिसर्वाणितीर्थानिकाशीवृन्दावनं विना । यास्यन्ति सार्द्धंताभिश्च वैकुण्ठमाज्ञयाहरेः
शालग्रामो हरेर्मूर्त्तिर्जगन्नाथश्च भारतम् । कलेर्दशसहस्रान्ते ययौ त्यक्त्वा हरेः पदम्
वैष्णवाश्च पुराणानि शङ्खाश्च श्राद्धतर्पणम् । वेदोक्तानिच कर्माणि ययुस्तैः सार्द्धमेव
हरिपूजा हरेर्नाम तत्कीर्त्तिगुणकीर्त्तनम् । वेदाङ्गानिच शास्त्राणि ययुस्तैः सार्द्धमेवच

सत्वञ्च सत्यं धर्मश्च वेदाश्च ग्राम्यदेवताः । व्रतं तपस्यानशनं ययुस्तैः सार्द्धमेव च ॥
वामाचाररताः सर्वे मिथ्याकापट्यसंयुताः । तुलसीवर्जिता पूजा भविष्यति ततःपरम् ।
एकादशीविहीनाश्च सर्वे धर्मविवर्जिताः । हरिप्रसङ्गविमुखाः भविष्यन्ति ततः परम् ॥
शठाः क्रूरा दाम्भिकाश्च महाहङ्कारसंयुताः । चौराश्च हिंसकाःसर्वे भविष्यन्तिततःपरम्

पुंसां भेदश्च स्त्रीभेदो विवाहो वापि निर्णयः ।
स्वस्वामिभेदो वस्तूनां न भविष्यति तत्परम् ॥ १६ ॥

सर्वेजनाः स्त्रीवशाश्च पुंश्चल्यश्चगृहेगृहे । तर्जनैर्भर्त्सनैःशश्वत् स्वामिनं ताडयन्तिच ॥
गृहेश्वरीचगृहिणी गृही भृत्याधिकोऽधमः । चेटीभृत्यसमौ वध्वाः श्वश्रूश्चश्वशुरस्तथा॥

कर्त्तारो बलिनो गेहे योनिसम्बन्धिबान्धवाः ।
विद्यासम्बन्धिभिः सार्द्धं सम्भाषोऽपि न विद्यते ॥ २२ ॥

यथापरिचितालोकास्तथा पुंसश्चबान्धवाः । सर्वकर्माक्षमाःपुंसो योषितामाज्ञयाविना।
म्लेच्छाशास्त्रंपठिष्यन्तिस्वशास्त्राणिविहायच । ब्रह्मक्षत्रविशांवंशाःशूद्राणांसेवकाःकलौ
सूपकारा भविष्यन्ति धावका वृषवाहकाः । सत्यहीना जनाः सर्वे शस्यहीनाच मेदिनी॥
फलहीनाश्चतरवोऽपत्यहीनाश्च योषितः । क्षीरहीनास्तथागावः क्षीरं सर्पिर्विवर्जितम् ॥
दम्पतीप्रीतिहीनौ च गृहिणः सुखवर्जिताः । प्रतापहीना भूताश्च प्रजाश्च करपीड़िताः ॥
जलहीना नदाः नद्यो दीर्घिकाः कन्दरादयः । धर्महीनाः पुण्यहीना वर्णाश्चत्वार एवच।
लक्षेषुपुण्यवान् कोऽपिनतिष्ठतिततःपरम् । कुत्सिताविकृताकारानरा नार्य्यश्चबालकाः॥
कुवार्त्ताःकुत्सितशब्दा भविष्यन्ति ततःपरम् । केचिद्ग्रामाश्च नगरा नरशून्याभयानकाः।
केचित् स्वल्पकुटीरेण नरेणच समन्विताः । अरण्यानि भविष्यन्ति ग्रामेषु नगरेषुच ॥
अरण्यवासिनः सर्वे जनाश्च करपीड़िताः । शस्यानिच भविष्यन्ति तड़ागेषु नदीषुच ॥
प्रकृष्टानिच क्षेत्राणि शस्यहीनान्यतःपरम् । हीनाः प्रकृष्टा धनिनो बलदर्पसमन्विताः ॥
प्रकृष्टवंशजाहीना भविष्यन्ति कलौयुगे । अलीकवादिनो धूर्त्ताः शठाश्चसत्यवादिनः॥
पापिनः पुण्यवन्तश्चाप्यशिष्टाः शिष्टा एवच। जितेन्द्रिया लम्पटाश्च पुंश्चल्यश्च पतिव्रताः
तपस्विनः पातकिनो विष्णुभक्ता अवैष्णवाः । अहिंसका दयायुक्ताश्चौराश्च नरघातिनः

भिक्षुवेशधरा धूर्त्ता निन्दन्त्युपहसन्ति च । भूतादिसेवानिपुणा जनानां मन्दकारिणः
पूजितास्तेभविष्यन्ति वञ्चकाज्ञानदुर्बलाः । वामना व्याधियुक्ताश्चनरानार्य्यश्चसर्वतः
अल्पायुषो जरायुक्ता यौवनेषु कलौ युगे । पलिताः षोडशे वर्षे महावृद्धास्तुविंशतौ
अष्टवर्षाच युवती रजोयुक्ताच गर्भिणी । वत्सरान्ते प्रसूता स्त्री षोडशेन जरान्विता
एताःकाश्चित् सहस्रेषुवन्ध्याश्चापिकलौयुगे । कन्याविक्रयिणः सर्ववर्णाश्चत्वारएवच
मातृजायावधूनाञ्च जारोपार्जनभक्षकाः । कन्यानां भगिनीनाञ्च जारोपार्जनजीविनः
हरेर्नामविक्रयिणो भविष्यन्ति कलौयुगे । स्वयमुत्सृज्य दानञ्च कीर्त्तिवर्द्धनहेतवे
तत्पश्चान्मनसालोच्य स्वयमुल्लङ्घयिष्यति । देववृत्तिं ब्रह्मवृत्तिं वृत्तिं गुरुकुलस्य च
स्वदत्तांपरदत्तां वा सर्वमुल्लङ्घयिष्यति। कन्याकामामिनःकेचित् केचिच्च श्वश्रूगामिनः
केचिद् वधूगामिनश्च केचिच्च सर्वगामिनः । भगिनीगामिनःकेचित् सपत्नीमातृगामिनः
भ्रातृजायागामिनश्च भविष्यन्ति कलौयुगे । अगम्यागमनञ्चैव करिष्यन्ति गृहे गृहे ॥४
आत्मयोनिंपरित्यज्य विहरिष्यन्तिसर्वतः । पत्नीनांनिर्णयोनास्ति भर्तॄणाञ्चकलौयुगे
प्रजानाञ्चैव ग्रामाणां वस्तूनाञ्च विशेषतः । अलीकवादिनः सर्वेसर्वे चौराश्च लम्पटाः
परस्परं हिंसकाश्च सर्वेच नरघातिनः । ब्रह्मक्षत्रविशां वंशा भविष्यन्तिच पापिनः ॥५
लाक्षालौहरसानाञ्च व्यापारं लवणस्यच । वृषवाहा विप्रवंशाः शूद्राणां शवदाहिनः
शूद्रान्नभोजिनः सर्वे सर्वेच वृषलीरताः । पञ्चपर्वपरित्यक्ताः कुहूरात्रौच भोजिनः ॥५

यज्ञसूत्रविहीनाश्च सन्ध्याशौचविहीनकाः ॥ ५३ ॥

पुंश्चलीचावीरा वृद्धा कुट्टनीचरजस्वला । विप्राणां रन्धनागारे भविष्यन्तिचपाचिकाः
अन्नानांनिर्णयो नास्ति योनीनाञ्चविशेषतः । आश्रमाणांजनानाञ्चसर्वे म्लेच्छाकलौयु
एवं कलौसंप्रवृत्ते सर्वे म्लेच्छमया भवे । हस्तप्रमाणे वृक्षे चाङ्गुष्ठमाने च मानवे ॥५
विप्रस्यविष्णुयशसः पुत्रः कल्कीभविष्यति । नारायणकलांशश्च भगवान् बलिनांवर
दीर्घेण करवालेन दीर्घघोटकवाहनः । म्लेच्छशून्याञ्च पृथिवीं त्रिरात्रेण करिष्यति
निर्म्लेच्छांवसुधां कृत्वाअन्तर्द्धानंकरिष्यति । अराजकाचवसुधा दस्युग्रस्ताभविष्यति
स्थूलप्रमाणं षड्रात्रं वर्षाधाराप्लुता मही । लोकशून्या वृक्षशून्या गृहशून्या भविष्यति

ततश्च द्वादशादित्याः करिष्यन्त्युदयंमुने । प्राप्नोतिशुष्कतां पृथ्वी समातेषाञ्च तेजसा ॥
कलौ गते च दुर्द्धर्षे संप्रवृत्ते कृते युगे ।
तपःसत्यसमायुक्तो धर्मपूर्णो भविष्यति ॥ ६२ ॥
तपस्विनश्च धर्मिष्ठा वेदज्ञा ब्राह्मणा भुवि । पतिव्रताश्च धर्मिष्ठा योषितश्च गृहे गृहे ॥
राजानः क्षत्रियाः सर्वे विप्रभक्ताःस्वधर्मिणः । प्रतापवन्तोधर्मिष्ठाःपुण्यकर्मरताःसदा ॥
वैश्या वाणिज्यनिरता विप्रभक्ताश्च धार्मिकाः ।शूद्राश्चपुण्यशीलाश्चधर्मिष्ठाविप्रसेविनः ॥
विप्रक्षत्रविशां वंशा विष्णुयज्ञपरायणाः । विष्णुमन्त्ररताःसर्वेविष्णुभक्ताश्चवैष्णवाः ॥
श्रुतिस्मृतिपुराणज्ञा धर्मज्ञा ऋतुगामिनः । लेशो नास्ति ह्यधर्माणां धर्मपूर्णे कृते युगे ॥
धर्मस्त्रिपाच्च त्रेतायां द्विपाच्च द्वापरे स्मृतः । कलौ प्रवृत्ते चैकपात्सर्वलुप्तस्ततः परम् ॥
वाराः सप्त तथा विप्र तिथयः षोडश स्मृताः । यथा द्वादशमासाश्चऋतवश्चषड़ेवच ॥
द्वौ पक्षौ चायने द्वे च चतुर्भिः प्रहरैर्दिनम् । चतुर्भिः प्रहरैरात्रिर्मासस्त्रिंशद्दिनैस्तथा ॥
शतत्रये षष्ट्यधिके नराणाञ्च युगे गते । देवानाञ्च युगो ज्ञेयः कालसंख्याविदां मतः ॥
मन्वन्तरन्तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः । मन्वन्तरसमं ज्ञेयश्चेन्द्रायुः परिकीर्त्तितम् ॥
अष्टाविंशतिमे चन्द्रे गते ब्रह्मदिवानिशम् । अष्टोत्तरे वर्षशते गते पातश्च ब्रह्मणः ॥७३॥
प्रलयः प्राकृतो ज्ञेयस्तत्रादृष्टाःवसुन्धरा । जलप्लुतानि विश्वानि ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥
ऋषयो जीविनः सर्वे लीनाः कृष्णे परात्परे । तत्रैव प्रकृतिर्लीनो तेन प्राकृतिको लयः॥
लये प्राकृतिकेऽतीते पाते च ब्रह्मणो मुने । निमेषमात्रः कालश्च कृष्णस्य परमात्मनः ॥
एवंनश्यन्तिसर्वाणिब्रह्माण्डान्यखिलानि च । स्थितौगोलोकवैकुण्ठौश्रीकृष्णश्चसपार्षदः
निमेषमात्रः प्रलयो यत्र विश्वं जलप्लुतम् । निमेषानन्तरे काले पुनः सृष्टिः क्रमेणच ॥
एवंकतिविधासृष्टिर्लयःकतिविधोऽपिवा । कतिकृत्वोगतायातःसंख्यांजानातिकःपुमान् ।
सृष्टीनाञ्चकलानाञ्चब्रह्माण्डानाञ्चनारद । ब्रह्मादीनाञ्चब्रह्माण्डेसंख्यांजानातिकःपुमान् ॥
ब्रह्माण्डानाञ्च सर्वेषामीश्वरश्चैक एव सः । सर्वेषां परमात्मा च श्रीकृष्णःप्रकृतेः परः ॥
ब्रह्मादयश्च तस्यांशास्तस्यांशश्च महाविराट् ।
तस्यांशश्च विराट् क्षुद्रस्तस्यांशा प्रकृतिःस्मृता ॥८२॥

स च कृष्णो द्विधाभूतो द्विभुजश्चचतुर्भुजः । चतुर्भुजश्चवैकुण्ठेगोलोकेद्विभुजःस्वयम्
ब्रह्मादितृणपर्य्यन्तं सर्वं प्राकृतिकं भवेत् । यद् यत् प्राकृतिकं सृष्टं सर्वं नश्वरमेवच
एवं विद्धि सृष्टिहेतुं सत्यं नित्यं सनातनम् । स्वेच्छामयं परं ब्रह्म निर्लिप्तं निर्गुणंपरम्
निरुपाधि निराकारं भक्तानुग्रहविग्रहम् । अतीवकमनीयञ्च नवीननीरदप्रभम् ॥८६॥
द्विभुजं मुरलीहस्तं गोपवेशं किशोरकम् । सर्वज्ञं सर्वसेव्यञ्चपरमात्मनमीश्वरम् ॥८७
करोति ब्रह्मा ब्रह्माण्डंज्ञानात्माकमलोद्भवः । शिवोमृत्युञ्जयश्चैवसंहर्त्तासर्वतत्त्ववित्
यस्य ज्ञानाद् यत्तपसास्सर्वेशस्तत्समोमहान् । महाविभूतियुक्तश्चसर्वज्ञःसर्वदा स्वयम्
सर्वव्यापीसर्वपाताप्रदातासर्वसम्पदाम् । विष्णुःसर्वेश्वरःश्रीमान्यस्यज्ञानाज्जगत्पति
महामाया च प्रकृतिः सर्वशक्तिमतीश्वरी । यज्ज्ञानाद् यस्यतपसायद्भक्त्यायस्यसेवया
सावित्री वेदमाता च वेदाधिष्ठातृदेवता । सर्वग्रामाधिदेवी सा सर्वसम्पत्प्रदायिनी
सर्वेश्वरी सर्ववन्द्या सर्वेशं प्राप या पतिम् । सर्वस्तुता च सर्वज्ञादुर्गादुर्गतिनाशिनी
कृष्णवामांशसम्भूताकृष्णप्रेमाधिदेवता । कृष्णप्राणाधिकाप्रेम्णाराधिकाकृष्णसेवया
सर्वाधिकश्च रूपश्च सौभाग्यमानगौरवम् । कृष्णवक्षःस्थलस्थानं पत्नीत्वंपापसेवया
तपश्चकार सा पूर्वं शतशृङ्गे च पर्वते । दिव्यं युगसहस्रञ्च निराहारा च क्लिश्यति ॥६
कृशां निःश्वासरहितां दृष्ट्वा चन्द्रकलोपमाम् । कृष्णोवक्षःस्थलेकृत्वारुरोदकृपयाविभुः
वरं तस्यैददौ सारं सर्वेषामपि दुर्लभम् । मम वक्षःस्थले तिष्ठ मयितेभक्तिरस्त्विति
सौभाग्येन च मानेन प्रेम्णा च गौरवेण च । त्वं मेश्रेष्ठाचप्रेज्येष्ठाचसर्वश्रेष्ठायोषिताम्
वरिष्ठा च गरिष्ठा च संस्तुता पूजिता मया । सन्ततं तवसाध्योऽहंवाध्यश्चप्राणवल्लभे
इत्युक्त्वा जगतां नाथश्चकार चेतनां ततः । सपत्नीरहितां ताञ्च चकार प्राणवल्लभाम्
येषां या याश्च देव्यश्च पूजितास्तस्यसेवया । तपस्यायादृशीयासांतासांतादृक्फलंमुने
दिव्यं वर्षसहस्रञ्च तपस्तप्त्वा हिमालये । दुर्गा च तत्पदं ध्यात्वा सर्वपूज्याबभूव ह
सरस्वती तपस्तप्त्वा पर्वते गन्धमादने । लक्षवर्षञ्च दिव्यञ्च सर्ववन्द्या बभूव सा ॥१०
लक्ष्मीर्युगशतं दिव्यं तपस्तप्त्वा च पुष्करे । सर्वसम्पत्प्रदात्री च बभूव तस्य सेवया
सावित्री मलये तप्त्वा द्विजपूज्या बभूवसा । षष्टिवर्षसहस्रञ्चदिव्यंध्यात्वाचतत्पदम्

शतमन्वन्तरं तप्तं शङ्करेण पुरा विभो ।
शतमन्वन्तरञ्चैव ब्रह्मणा तस्य भक्तितः । शतमन्वन्तरं विष्णुस्तप्त्वा पाता बभूव ह ॥
शतमन्वन्तरं धर्मस्तप्त्वा पूज्यो बभूव ह । मन्वन्तरन्तपस्तेपे शेषो भक्त्या च नारद ॥
मन्वन्तरञ्च सूर्य्यश्च शक्रश्चेन्द्रस्तथैव च ॥ १०६ ॥
दिव्यं सतयुगञ्चैव वायुस्तप्त्वा च भक्तितः । सर्वप्राणःसर्वपूज्यःसर्वाधारोबभूवसः ॥
एवं कृष्णस्य तपसा सर्वे देवाश्च पूजिताः । मुनयो मानवा भूपा ब्राह्मणाश्चैव पूजिताः
एवं ते कथितं सर्वं पुराणञ्चतथागमम् । गुरुवक्त्राद्यथाज्ञातंकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारद-संवादे कालकालेश्वरगुण-निरूपणं नाम सप्तमोऽध्यायः ।

अष्टमोऽध्यायः

पृथिव्युपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

हरेर्निमेषमात्रेण ब्रह्मणः पात एव च । तस्य पाते प्राकृतिकः प्रलयः परिकीर्त्तितः ॥१॥
प्रलये प्राकृते चोक्तं तत्रादृष्टा वसुन्धरा । जलप्लुतानि विश्वानि सर्वे लीनाहराविति ॥
वसुन्धरा तिरोभूता कुत्र वा तत्र तिष्ठति । सृष्टेर्विधानसमये साविर्भूता कथं पुनः ॥३॥
कथं बभूव सा धन्या मान्या सर्वाश्रयाजया । तस्याश्च जन्मकथनंवदमङ्गलकारणम् ॥

श्रीनारायण उवाच ।

सर्वादिसृष्टौ सर्वेषां जन्म कृष्णादिति श्रुतिः ।
आविर्भावस्तिरोभावः सर्वेषु प्रलयेषु च ॥५॥
श्रूयतां वसुधाजन्मं सर्वमङ्गलमङ्गलम् । विघ्ननिघ्नकरं पापनाशनं पुण्यवर्द्धनम् ॥ ६ ॥
अहो केचिद्वदन्तीति मधुकैटभमेदसा । बभूव वसुधा धन्या तद्विरुद्धमतं शृणु ॥ ७ ॥

ऊचतुस्तौ पुरा विष्णुं तुष्टौ युद्धेन तेजसा । आवां जहि न यत्रोर्वीपयसासंवृतेतिच ।
तयोर्जीवनकालेन प्रत्यक्षा च भवेत् स्फुटम् । ततो बभूव मेदश्च मरणानन्तरंतयोः ॥६॥
मेदिनीति च विख्यातेत्युक्त्वा यैस्तन्मतं शृणु । जलधौता कृशा पूर्वंवर्द्धितामेदसायतः
कथयामि च तज्जन्म सार्थकं सर्वसम्मतम् । पुराश्रुतश्च श्रुत्युक्तं धर्मवक्त्राच्च पुष्करे ॥
महाविराट्शरीरस्य जलस्थस्य चिरं स्फुटम् । मलोबभूवकालेनसर्वाङ्गव्यापकोध्रुवम् ।
स च प्रविष्टः सर्वेषां तल्लोम्नां विवरेषु च । कालेन महता तस्माद् बभूव वसुधा मुने ।
प्रत्येकं प्रतिलोम्नांञ्च रूपेषु सा स्थितास्थिरा । आविर्भूता तिरोभूता सचलाचपुनःपुनः
आविर्भूता सृष्टिकाले तज्जलात् पर्यपस्थिता । प्रलयेचतिरोभूताजलाभ्यन्तरवस्थिता ।

प्रतिविश्वेषु वसुधा शैलकाननसंयुता ।
सप्तसागरसंयुक्ता सप्तद्वीपमिता सती ॥ १६ ॥

हिमाद्रिमेरुसंयुक्ता ग्रहचन्द्रार्कसंयुता । ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च सुरैर्लोकैस्तथानया ॥१७॥
पुण्यतीर्थसमायुक्ता पुण्यभारतसंयुता । काञ्चनीभूमिसंयुक्ता सर्वदुर्गसमन्विता ॥१८॥
पातालाः सप्त तदधस्तदूर्ध्वे ब्रह्मलोककः । ध्रुवलोकश्च तत्रैव सर्वविश्वञ्च तत्र वै ।१९

एवं सर्वाणि विश्वानि पृथिव्यां निर्मितानि वै ।
ऊर्ध्वे गोलोकवैकुण्ठौ नित्यौ विश्वपरौ च तौ ॥ २० ॥
नश्वराणि च विश्वानि सर्वाणि कृत्रिमाणि च ।
प्रलये प्राकृते ब्रह्मन् ब्रह्मणश्च निपातने ॥ २१ ॥

महाविराडादिसृष्टौ सृष्टः कृष्णेन चात्मना । नित्ये स्थितःस प्रलये काष्ठाकाशेश्वरैःसह
क्षित्यधिष्ठातृदेवी सा वाराहे पूजितासुरैः । मनुभिर्मुनिभिर्विप्रैर्गन्धर्वादिभिरेव च ॥२३॥
विष्णोर्वराहरूपस्य पत्नी सा श्रुतिसम्मता । तत्पुत्रो मङ्गलो ज्ञेयः सुयशा मङ्गलात्मजः

नारद उवाच ।

पूजिता केन रूपेण वाराहे च सुरैर्मही । वाराहेण च वाराही सर्वैः सर्वाश्रया सती ॥
तस्याः पूजाविधानञ्चाप्यधश्चोद्धरणक्रमम् । मङ्गलं मङ्गलस्यापि जन्म व्यासं वद प्रभो

नारायण उवाच ।

वाराहे च वराहश्च ब्रह्मणा संस्तुतः पुरा । उद्धार महीं हत्वा हिरण्याक्षं रसातलात् ॥
जले तां स्थापयामास पद्मपत्रं यथार्णवे । तत्रैव निर्ममे ब्रह्मा सर्वविश्वं मनोहरम् ॥२८
दृष्ट्वा तदधिदेवीञ्च सकामां कामुको हरिः । वराहरूपी भगवान् कोटिसूर्य्यसमप्रभः ॥
कृत्वा रतिकरीं शय्यां मूर्त्तिञ्च सुमनोहराम् । क्रीडाञ्चकार रहसि दिव्यवर्षमहर्निशम् ।
सुखसम्भोगसंस्पर्शात् मूर्च्छां सम्प्राप सुन्दरी । विदग्धया विदग्धेन सङ्गमोऽपि सुखप्रदः
विष्णुस्तदङ्गसंश्लेषाद् बुबुधे न दिवानिशम् । वर्षान्ते चेतनां प्राप्य कामी तत्याज कामुकीम्
पूर्वरूपञ्च वाराहं दधार चावलीलया । पूजाञ्चकार भक्त्या च ध्यात्वा च धरणीं सतीम्
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः सिन्दूरैरनुलेपनैः । वस्त्रैः पुष्पैश्च बलिभिः संपूज्योवाच तां हरिः ॥

महावराह उवाच ।

सर्वाधारा भव शुभे सर्वैः संपूजिता शुभम् । मुनिभिर्मनुभिर्देवैः सिद्धैश्च मानवादिभिः
अम्बुवाचित्यागदिने गृहारम्भप्रवेशने । वापीतडागारम्भे च गृहे च कृषिकर्मणि ॥३६॥
तव पूजां करिष्यन्ति मद्वरेण सुरादयः । मूढा ये न करिष्यन्ति यास्यन्ति नरकञ्च ते ॥

वसुधोवाच ।

वहामि सर्वं वाराहरूपेणाहं तवाज्ञया । लीलामात्रेण भगवन् विश्वञ्च सचराचरम् ॥
मुक्तां शुक्तिं हरेरर्च्चां शिवलिङ्गं शिलान्तथा । शङ्खं प्रदीपं रत्नञ्च माणिक्यं हीरकं मणिम्
यज्ञसूत्रञ्च पुष्पञ्च पुस्तकं तुलसीदलम् । जपमालां पुष्पमालां कर्पूरञ्च सुवर्णकम् ॥४०॥
गोरोचनां चन्दनञ्च शालग्रामजलन्तथा । एतान् वोढुमशक्ताहं क्लिष्टा च भगवन् शृणु

श्रीभगवानुवाच ।

द्रव्याण्येतानि ये मूढा अर्पयिष्यन्ति सुन्दरि । ते यास्यन्ति कालसूत्रं दिव्यं वर्षशतं त्वयि
इत्येवमुक्त्वा भगवान् विरराम च नारद । बभूव तेन गर्भेण तेजस्वी मङ्गलग्रहः ॥ ४३ ॥
पूजाञ्चक्रुः पृथिव्यांश्च ते सर्वे चाज्ञया हरेः । काण्वशाखोक्तध्यानेन तुष्टुवुः स्तवनेन च
दद्युर्मूलेन मन्त्रेण नैवेद्यादिकमेव च । संस्तुता त्रिषु लोकेषु पूजिता सा बभूव ह ॥४५॥

नारद उवाच ।

किं ध्यानं स्तवनं किं वा तस्य मूलञ्च किं वद । गूढं सर्वपुराणेषु श्रोतुं कौतूहलं म

नारायण उवाच ।

आदौ च पृथिवी देवी वराहेण च पूजिता । ततो हि ब्रह्मणा पश्चात् ततश्च पृथुना पु
ततः सर्वैर्मुनीन्द्रैश्च मनुभिर्नारदादिभिः । ध्यानञ्च स्तवनं मन्त्रं शृणु वक्ष्यामि नारद।
ओं ह्रीं श्रीं वां वसुधायै स्वाहा । इत्यनेन मन्त्रेण पूजिता विष्णुना पुरा ॥ ४६।
श्वेतचम्पकवर्णाभां शतचन्द्रसमप्रभाम् । चन्दनोक्षिप्तसर्वाङ्गीं सर्वभूषणभूषिताम्।
रत्नाधारां रत्नगर्भां रत्नाकरसमन्विताम् । वह्निशुद्धांशुकाधानां सस्मितां वन्दितां भजे
ध्यानेनानेन सा देवी सर्वैश्च पूजिता भवेत् । स्तवनं शृणु विप्रेन्द्र काण्वशाखोक्तमेव

विष्णुरुवाच ।

यज्ञशूकरजाया च जयं देहि जयावहे । जये जये जयाधारे जयशीले जयप्रदे ॥ ५३।
सर्वाधारे सर्ववीजे सर्वशक्तिसमन्विते । सर्वकामप्रदे देवि सर्वेष्टं देहि मे भवे ॥ ५४।
सर्वशस्यालये सर्वशस्याढ्ये सर्वशस्यदे । सर्वशस्यहरे काले सर्वशस्यात्मिके भवे।
मङ्गले मङ्गलाधारे मङ्गल्यमङ्गलप्रदे । मङ्गलार्थे मङ्गलांशे मङ्गलं देहि मे भवे ॥ ५६।
भूमे भूमिपसर्वस्वे भूमिपालपरायणे । भूमिपाहङ्काररूपे भूमिं देहि च भूमिदे ॥ ५७।
इदं स्तोत्रंमहापुण्यं तां संपूज्यच यः पठेत् । कोटि कोटि जन्मजन्मसभवेद्भूमिपेश्वर
भूमिदानकृतं पुण्यं लभते पठनाज्जनः । भूमिदानहरात् पापात् मुच्यते नात्र संशयः।
भूमौ वीर्य्यत्यागपापाद् भूमौ दीपादिस्थापनात् । पापेनमुच्यते प्राज्ञःस्तोत्रस्य पठनान्मु

अश्वमेधशतं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥ ६१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे पृथिव्युपाख्याने पृथिवीस्तोत्रं नाम अष्टमोऽध्यायः । ८

———

नवमोऽध्यायः

भूमिदानफलंतद्धरणेपापञ्च ।

नारद उवाच ।

भूमिदानकृतं पुण्यं पापं तद्धरणेन यत् । परभूमौ श्राद्धरूपं कूपे कूपदजं तथा ॥ १ ॥
अम्बुवाचीभूखननवीजत्यागजमेव च । दीपादिस्थापनाद् पापं श्रोतुमिच्छामि यत्नतः ॥
अन्यद्वा पृथिवीजन्यं पापं यत् प्रश्नतः परम् । यदस्ति तत्प्रतीकारं वद वेदविदांवर ॥३॥

नारायण उवाच ।

वितस्तिमात्रं भूमिञ्च योददाति च भारते । सन्ध्यापूतायविप्राय सयातिविष्णुमन्दिरम्
भूमिञ्च सर्वशस्याढ्यां ब्राह्मणाय ददाति यः । भूमिरेणुप्रमाणञ्च वर्षं विष्णुपदे स्थितिः
ग्रामं भूमिञ्च धान्यञ्च यो ददात्याददाति यः । सर्वपापाद्विनिर्मुक्तौचोभौवैकुण्ठवासिनौ
भूमिं दातुञ्च यत्काले यः साधुश्चानुमोदते । स प्रयातिचवैकुण्ठं मित्रगोत्रसमन्वितः ॥
स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेत्तु यः । स तिष्ठति कालसूत्रं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥८॥
तत्पुत्रपौत्रप्रभृतिर्भूमिहीनः श्रिया हतः । पुत्रहीनो दरिद्रश्च अन्ते याति च रौरवम् ॥६॥
गवीमार्गं विनिष्कृष्य यश्च शस्यं ददाति सः । दिव्यं वर्षशतंचैवकुम्भीपाकेच तिष्ठति ॥
गोष्ठं तड़ागं निष्कृष्य मार्गं शस्यं ददाति यः । सचतिष्ठत्यसीपत्रे यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥
परकीयतड़ागे च पङ्कमुद्धृत्य चोत्सृजेत् । रेणुप्रमाणवर्षञ्च ब्रह्मलोके वसेन्नरः ॥१२॥
पिण्डं पित्रे भूमिभर्त्तुर्न प्रदाय च मानवः । श्राद्धं करोतियोमूढ़ोनरकंयातिनिश्चितम् ॥
भूमौ प्रदीपं योऽर्पयतिसोऽन्धःसप्तजन्मसु । भूमौशङ्खञ्चसंस्थाप्यकुष्ठंजन्मान्तरेलभेत् ॥
मुक्तामाणिक्यहीरञ्च सुवर्णञ्च मणिन्तथा । यश्च संस्थापयेद् भूमौ दरिद्रःसप्तजन्मसु ॥
शिवलिङ्गं शिलामर्च्चां यश्चार्पयति भूतले । शतमन्वन्तरं यावत् कृमिभक्षे स तिष्ठति ॥
सूक्तं मन्त्रं शिलातोयं पुष्पञ्च तुलसीदलम् । यश्चार्पयति भूमौ च स तिष्ठेन्नरकं युगम् ॥
जपमालां पुष्पमालां कर्पूरं रोचनान्तथा । योमूढ़श्चार्पयेद् भूमौ स याति नरकं ध्रुवम् ॥

मुने चन्दनकाष्ठञ्च रुद्राक्षं कुशमूलकम् । संस्थाप्य भूमौ नरके वसेन्मन्वन्तरावधि।
पुस्तकं यज्ञसूत्रञ्च भूमौ संस्थापयेत्तु यः। न भवेद्विप्रयोनौ च तस्य जन्मान्तरे जनिः।
ब्रह्महत्यासमं पापमिह वै लभते ध्रुवम् । ग्रन्थियुक्तं यज्ञसूत्रं पूज्यञ्च सर्ववर्णकैः ॥२१
यज्ञंकृत्वातुयोभूमिंक्षीरेणनहि सिञ्चति । स याति तप्तसूर्मिञ्च संततः सर्वजन्मसु ॥२२
भूकम्पे ग्रहणे यो हि करोति खननंभुवः । जन्मान्तरेमहापापीसोऽङ्गहीनोभवेद् ध्रुवम्।
भवनं यत्र सर्वेषां भूमिस्तेन प्रकीर्त्तिता । वसुरत्नं यो ददाति वसुधा च वसुन्धरा।
हरेरुरौ च या ज्ञाता सा चोर्वी परिकीर्त्तिता । धरा धरित्रीधरणीसर्वेषांधरणात्तुया।
इज्या चयागधरणात्क्षौणीक्षीणालयेचया । महालयेक्षयंयातिक्षितिस्तेनप्रकीर्त्तिता।
काश्यपी कश्यपस्येयमचला स्थितिरूपतः । विश्वम्भरा तद्भरणाद्यानन्तानन्तरूपतः।
पृथ्वी पृथुककन्यात्वाद् विस्तृतत्वान्महामुने ॥ २८ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारद-संवादे पृथिव्युपाख्यानं नाम नवमोऽध्यायः ।

दशमोऽध्यायः ।

गङ्गोपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

श्रुतं पृथिव्युपाख्यानं अतीवसुमनोहरम् । गङ्गोपाख्यानमधुना वद वेदविदां वर ॥१॥
भारतं भारतीशापादाजगाम सुरेश्वरी । विष्णुस्वरूपा परमा स्वयं विष्णुपदीसती ॥२॥
कथं कुत्र युगे केन प्रार्थिता प्रेरिता पुरा । तत्क्रमंश्रोतुमिच्छामिपापघ्नंपुण्यदंशुभम् ।

नारायण उवाच ।

राजराजेश्वरः श्रीमान् सगरः सूर्य्यवंशजः । तस्य भार्य्या च वैदर्भीसैव्याचद्वेमनोहरे।
सत्यस्वरूपः सत्येष्टः सत्यवाक् सत्यभावनः। सत्यधर्मविचारज्ञः परं सत्ययुगोद्भवः।

एककन्या चैकपुत्रो बभूव सुमनोहरः । असमञ्जा इति ख्यातः शैब्यायां कुलवर्द्धनः ॥६
अन्या चाराधयामास शङ्करं पुत्रकामुकी । बभूव गर्भस्तस्याश्च शिवस्य च वरेण च ॥
गते शताब्दे पूर्णे च मांसपिण्डं सुषाव सा । तद्दृष्ट्वा च शिवं ध्यात्वा रुरोदोच्चैः पुनःपुनः ॥
शम्भुर्ब्राह्मणरूपेण तत्समीपं जगाम ह । चकार संविभज्यैतत् पिण्डं षष्टिसहस्रधा ॥९
सर्वे बभूवुः पुत्राश्च महाबलपराक्रमाः । ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डप्रभायुष्टकलेवराः ॥ १० ॥
कपिलस्य कोपदृष्ट्या बभूवुर्भस्मसाच्च ते । राजा रुरोद तच्छ्रुत्वा जगाम मरणं शुचा ॥
तपश्चकारासमञ्जा गङ्गानयनकारणम् । तपः कृत्वा लक्षवर्षं ममार कालयोगतः ॥१२॥
दिलीपस्तस्य तनयो गङ्गानयनकारणम् । तपः कृत्वा लक्षवर्षं ययौ लोकान्तरं नृपः ॥
अंशुमांस्तस्य पुत्रश्च गङ्गानयनकारणम् । तपः कृत्वा लक्षवर्षं ममार कालयोगतः ॥१४
भगीरथस्तस्य पुत्रो महाभागवतः सुधीः । वैष्णवो विष्णुभक्तश्च गुणवानजरामरः ॥
तपः कृत्वा लक्षवर्षं गङ्गानयनकारणम् । ददर्श कृष्णं हृष्टास्यं सूर्य्यकोटिसमप्रभम् ॥१६
द्विभुजं मुरलीहस्तं किशोरं गोपवेशकम् । परमात्मानमीशञ्च भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥१७॥
स्वेच्छामयं परं ब्रह्म परिपूर्णतमं विभुम् । ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च स्तुतं मुनिगणैर्युतम् ॥
निर्लिप्तं साक्षिरूपञ्च निर्गुणं प्रकृतेः परम् । ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम् ॥१९
वह्निशुद्धांशुकाधानं रत्नभूषणभूषितम् ॥ २० ॥
तुष्टाव दृष्ट्वा नृपतिः प्रणम्य च पुनः पुनः । लीलया च वरं प्राप्य वाञ्छितं वंशतारणम् ॥
तत्राजगाम गङ्गा सा स्मरणात् परमात्मनः । तं प्रणम्य प्रतस्थौ च तत् पुरः संपुटाञ्जलिः ॥
उवाच भगवांस्तत्र तां दृष्ट्वा सुमनोहराम् । कुर्वतीं स्तवनं दिव्यं पुलकाञ्चितविग्रहाम् ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

भारतं भारतीशापात् गच्छ शीघ्रं सुरेश्वरि । सगरस्य सुतान् सर्वान् पूतान् कुरु ममाज्ञया ॥
तत्स्पर्शवायुना पूता यास्यन्ति मम मन्दिरम् । बिभ्रतो दिव्यमूर्त्तिं ते दिव्यस्यन्दनगामिनः ॥
मत्पार्षदा भविष्यन्ति सर्वकालं निरामयाः । समुच्छिद्य कर्मभोगं कृतं जन्मनि जन्मनि ॥
कोटिजन्मार्जितं पापं भारते यत् कृतं नृणाम् । गङ्गायाः स्पर्शवातेन नश्यतीति श्रुतौ श्रुतम् ॥
स्पर्शनाद्दर्शनाद्देव्याः पुण्यं दशगुणं ततः ।

मौषलस्नानमात्रेण सामान्यदिवसे नृणाम् । शतकोटिजन्मपापं नश्यतीति श्रुतौ श्रुतम् ।
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।
जन्मासंख्यार्जितान्येवकामतोऽपिकृतानिच । तानिसर्वाणिनश्यन्तिमौषलस्नानतोनृणाम्
पुण्याहस्नानजं पुण्यं वेदा नैव वदन्ति च । केचिद्वदन्ति ते देवि ! फलमेव यथागमम् ।
ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्च सर्वं नैव वदन्ति च । सामान्यदिवसस्नानंसङ्कल्पं शृणु सुन्दरि ।
पुण्यं दशगुणञ्चैव मौषलस्नानतः परम् । ततस्त्रिंशत्गुणं पुण्यं रविसंक्रमणे दिने ॥३२
अमायाश्चापि तत्तुल्यं द्विगुणं दक्षिणायने । ततो दशगुणं पुण्यं नराणामुत्तरायणे ।
चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामनन्तं पुण्यमेव च । अक्षयायाञ्च तत्तुल्यं नैतद्वेदे निरूपितम् ।
असंख्यपुण्यफलदमेतेषु स्नानदानकम् । सामान्यदिवसस्नानात् ज्ञानाच्छतगुणंफलम् ।
मन्वन्तराद्यां देवेशि युगाद्यायां तथैव च । तथाप्यशोकाष्टम्याञ्च नवम्याञ्च तथा हरेः ।
ततोऽपि द्विगुणं पुण्यं नन्दायां तव दुर्लभे । दशहरादशम्याञ्च युगाद्यादिसमं फलम् ।
नन्दासमञ्च वारुण्यां महत्पूर्वं चतुर्गुणम् । ततश्चतुर्गुणं पुण्यं द्विमहत्पूर्वके सति ॥३
पुण्यंकोटिगुणं चैवसामान्यस्नानतो हि यत् । चन्द्रोपरागसमये सूर्ये दशगुणं ततः ।
पुण्योऽप्यर्द्धोदये काले ततः शतगुणं फलम् । सर्वेषामेवसङ्कल्पोवैष्णवानां विपर्य्ययः ।
फलसन्धानरहिता जीवन्मुक्ताश्च वैष्णवाः । मत्प्रीतिभक्तिकामास्तेसर्वदासर्वकर्मसु ।
गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे प्रविशति । जीवन्मुक्तं वैष्णवन्तं वेदाःसर्वेवदन्ति
पुरुषाणां शतं पूर्वं पैतृकञ्च परं शतम् । मातामहस्य च शतं मातरं मातृमातरम् ॥४३
भगिनीं भ्रातरञ्चैव भागिनेयञ्च मातुलम् । श्वश्रूञ्च श्वशुरञ्चैव गुरुपत्नीं गुरोः सुतम् ।
गुरुञ्च ज्ञानदातारं मित्रञ्च सहचारिणम् । भृत्यं शिष्यंतथाचेटींप्रजाः स्वाश्रमसन्निधौ ।
उद्धरेदात्मना सार्द्धं मन्त्रग्रहणमात्रतः । मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥४६॥
तस्य संस्पर्शमात् पूतं तीर्थञ्च भुवि भारतम् । तस्यैव पादरजसा सद्यःपूतावसुन्धरा ।
पादोदकपतत्स्थानं तीर्थमेव भवेद् ध्रुवम् ॥ ४७ ॥
अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम् । वैष्णवाश्च न खादन्तिनैवेद्यभोजिनःसदा ।
विष्णोर्निवेदितान्नञ्च नित्यं ये भुञ्जते नराः । पूतानि सर्वतीर्थानि तेषाञ्च स्पर्शनादहो ।

विष्णोः पादोदकं पुण्यं नित्यं ये भुञ्जते नराः। तेषां सन्दर्शनमात्रेण पूतञ्च भुवनत्रयम्
विष्णोः सुदर्शनं चक्रं शततं तांश्च रक्षति ॥ ५१ ॥
मद्गुणश्रवणाद् ये च पुलकाङ्कितविग्रहाः। गद्गदाः साश्रुनेत्रास्तेनराश्चवैष्णवोत्तमाः ॥
पुत्रादपि परः स्नेहो मयि येषां निरन्तरम्। गृहाद्याश्रमयिन्यस्तास्तेनरावैष्णवोत्तमाः ॥
आब्रह्मस्तम्भपर्य्यन्तं मत्तः सर्वं चराचरम्। सर्वेषामहमात्मेश इतिज्ञा वैष्णवोत्तमाः ॥
असंख्यकोटिब्रह्माण्डं ब्रह्मविष्णुशिवादयः। प्रलये मयिलीयन्तेचेतिज्ञा वैष्णवोत्तमाः ॥
तेजःस्वरूपं परमं भक्तानुग्रहविग्रहम्। स्वेच्छामयं निर्गुणञ्च निरीहं प्रकृतेः परम् ॥५६॥
सर्वे प्राकृतिकामत्तःआविर्भूतास्तिरोहिताः। इतिजानन्तियेदेवि ! तेनरावैष्णवोत्तमाः ॥
इत्येवमुक्त्वा देवेशो विरराम तयोः पुरः। उवाच तं त्रिपथगा भक्तिनम्रात्मकन्धरा ॥

गङ्गोवाच।

यामि चेद्भारतं नाथ भारतीशापतः पुरा। तवाज्ञया च राजेन्द्र तपसा चैव साम्प्रतम् ॥
दास्यन्ति पापिनो मह्यं पापानि यानि कानि च। तानिमेकेननश्यन्तितदुपायंवदप्रभो ॥
कतिकालं परिमितं स्थितिर्मे तत्र भारते। कदा यास्यामि सर्वेश तद्विष्णोः परमंपदम् ॥
ममान्यद्वाञ्छितं यद् यत् सर्वंजानासिसर्ववित्। सर्वान्तरात्मन्सर्वज्ञतदुपायंवदप्रभो ॥

श्रीकृष्ण उवाच।

जानामि वाञ्छितं गङ्गे तव सर्वं सुरेश्वरि। पतिस्ते रुद्ररूपोऽयं लवणोदोभविष्यति ॥
ममैवांशसमुद्रश्च त्वञ्च लक्ष्मीस्वरूपिणी। विदग्धायाविदग्धेनसङ्गमो गुणवान् भुवि ॥
यावत्यः सन्ति नद्यश्च भारत्याद्याश्च भारते। सौभाग्यं तव तास्वेव लवणोदस्य सौरते
अद्यप्रभृति देवेशि कलेः पञ्चसहस्रकम्। वर्षं स्थितिस्ते भारत्याः शापेन भारते भुवि ॥
नित्यं वार्णिधिना सार्द्धं करिष्यसिरहोरतिम्। त्वमेवरसिकादेवीरसिकेन्द्रेणसंयुता ॥
त्वां स्तोष्यन्ति च स्तोत्रेणभगीरथकृतेनच। भारतस्थाजनाःसर्वेपूजयिष्यन्तिभक्तितः ॥
कौथुमोक्तेनध्यानेनध्यात्वात्वांपूजयिष्यति। यःस्तौतिप्रणमेन्नित्यंसोऽश्वमेधफलंलभेत्
गंगागंगेति यो ब्रूयात् योजनानांशतैरपि। मुच्यतेसर्वपापेभ्योविष्णुलोकंसगच्छति ॥
सहस्रपापिनां स्नानाद् यत्पापं ते भविष्यति। मद्भक्तैकदर्शनेन तदेव हि विनश्यति ॥७१

पापिनान्तु सहस्राणां शवस्पर्शेन यत्तव । मन्मन्त्रोपासकस्नानात्तदघञ्च विलङ्घति ॥
यत्र यत्र भवेद् गंगे मन्नामगुणकीर्त्तनम् । तत्रैव त्वमधिष्ठानं करिष्यस्यघमोचनात्
सार्द्धं सरिद्भिःश्रेष्ठाभिःसरस्वत्यादिभिःशुभे । तत्तुतीर्थंभवेत्सद्योयत्रमद्गुणकीर्त्तनम्
तद्रेणुस्पर्शमात्रेण पूतो भवति पातकी । रेणुप्रमाणंवर्षञ्च स वैकुण्ठे वसेद् ध्रुवम् ॥
ज्ञानेन त्वयियेभक्त्यामन्नामस्मृतिपूर्वकम् । समुत्सृजन्तिप्राणांश्चतेगच्छन्तिहरेःपदम्
पार्षदप्रवरास्ते च भविष्यन्ति हरेश्चिरम् । लयं प्राकृतिकंतेचद्रक्ष्यन्तिचाप्यसंख्यकम्
मृतस्य बहुपुण्येन तत्शवंत्वयिविन्यसेत् । प्रयातिसचवैकुण्ठंयावदस्थ्नांस्थितिस्त्वयि
कायव्यूहं ततः कृत्वाभोजयित्वास्वकर्मकम् । तस्मैददामिसारूप्यंकरोमितञ्चपार्षदम्

अज्ञानत्वाज्जलस्पर्शाद् यदि प्राणान् समुत्सृजेत् ।
तस्मै ददामि सारूप्यं करोमि तञ्च पार्षदम् ॥ ८० ॥

अन्यत्रवासृजेत् प्राणांस्त्वन्नामस्मृतिपूर्वकम् । तस्मैददामि सारूप्यमसंख्यप्रलयंलयम्
अन्यत्रवात्यजेत्प्राणान्मन्नामस्मृतिपूर्वकम् । तस्मैददामिसालोक्यंयावद्वैब्रह्मणो वयः
तीर्थेऽप्यतीर्थेमरणेविशेषो नास्तिकश्चन । मन्मन्त्रोपासकानाञ्च नित्यंनैवेद्यभोजिनाम्
पूतं कर्त्तुं स शक्तो हि लीलया भुवनत्रयम् । रत्नेन्द्रसारयानेन गोलोकं स प्रयाति च
मद्भक्तबान्धवा ये ये ते ते पुण्यधियः शुभे । ते यान्ति रत्नयानेन गोलोकञ्च सुदुर्लभम्
यत्र तत्र मृता ये च ज्ञानाज्ञानेन वा सति ! । जीवन्मुक्ताश्च ते पूता मद्भक्तसन्निधानतः
इत्युक्त्वाश्रीहरिस्ताञ्चतमुवाचभगीरथम् । स्तौहिगङ्गामिमांभक्त्यापूजांकुर्वितिसाम्प्रतम्
भगीरथस्तां तुष्टाव पूजयामास भक्तितः । कौथुमोक्तेन ध्यानेन स्तोत्रेण च पुनःपुनः
प्रणनाम च श्रीकृष्णं परमात्मानमीश्वरम् । भगीरथश्च गङ्गा च सोऽन्तर्द्धानं चकार

नारद उवाच ।

केन ध्यानेन स्तोत्रेण केन पूजाक्रमेण च । पूजाञ्चकार नृपतिर्वद वेदविदां वर ॥ ९

श्रीनारायण उवाच ।

स्नात्वानित्यक्रियांकृत्वाधृत्वाधौतेचवाससी । सम्पूज्यदेवषट्कञ्चसंयतोभक्तिपूर्वकम्
गणेशञ्चदिनेशञ्च वह्निंविष्णुं शिवंशिवाम् । सम्पूज्य देवषट्कञ्च सोऽधिकारीचपूजने

बात कही तब ब्रह्माजी ने पति से, पिता से और विविक्त आश्रम (सन्यासी) वालों से मन्त्रदीक्षा न लेकर जन्मतः प्राप्त अपने इष्टगुरु से मन्त्र लेनेकी वात कही। क्योंकि

पत्युर्मन्त्रं पितुर्मन्त्रं न गृह्णीयाद् विचक्षणः। विविक्ताश्रमिणाञ्चैव न पुत्र सुखदायकः निषेकाल्लभ्यते मन्त्रो गुरुर्भर्त्ता च कामिनी। विद्या सुखंभयं दुःखं पुरुषैः स्वेच्छया न च

अव महेश्वर तुम्हारे गुरु हैं उनके पास जाकर भगवन्मत्र को लेकर फिर मेरे पास आओ। इसके वाद नारदजी पिता के आदेश से शिवलोक को चले गये।

२५ नारदकृत शिवस्तुतिः शिवनारदसम्मेलनश्च ८६

शिवलोक में जाकर नारदजी ने उनकी स्तुति की तथा भगवान् के सम्मुख अपना हार्द (भाव) कहकर उनसे अपनेको दीक्षित करने की प्रार्थना की।

२६ शिवोक्ताह्निकाचारवर्णनम् ८८

आह्निकप्रकरणम् ९१

जव शिवजीने सम्पूर्ण स्तोत्र कवच, मन्त्र, ध्यान और पूजा का विधान कह दिया तो नारदजी ने प्रतिदिन करने योग्य आचार प्रसङ्ग के सम्बन्ध में उपदेश करने की प्रार्थना की। भगवान् भूतनाथ देवाधिदेव महेश्वर ने प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त से शय्या त्यागकर रात्रि में शयन तक की आदर्श दिनचर्या का निरूपण किया, जिसमें निम्नलिखित मुख्य हैं :—

गुरु इष्टदेव के ध्यानपूर्वक शौच निवृत्ति के लिये वन में एकान्त स्थान पर उत्तराभिमुखादि होकर जावे तदनन्तर जल से हाथ पैर धोकर १६ गण्डूष करे और दन्तमार्जन काष्ठ से अच्छी प्रकार दाँतों को साफ करे फिर जलस्नान कर प्रातः सन्ध्या करे। तर्पण, स्नान, दान, तप, होम, दैवपितृ कर्म के पहिले तिलक को अवश्य धारण करे। तदनन्तर तर्पण और आवश्यक नित्यकार्यों को सम्पादनकर एप विहित शालग्राम की पूजा करे। शालग्राम शिला का माहात्म्य।

शालग्राम शिलाचक्रं यत्र तिष्ठति नारद । सचक्रो भगवांस्तत्र सर्वतीर्थानि निश्चि

शालग्राम की षोडश उपचार या बारह वस्तुओं तथा पञ्चद्रव्यों से पूजा का विधान आता है :—

आसनं वसनं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् ।पुष्पं चन्दन धूपञ्च दीप नैवेद्यमुत्तमम् ॥

गन्ध्यं माल्यञ्च शय्याञ्च ललितां सुविलक्षणाम् ।
जलमन्नञ्च ताम्बूलं साधारं देयमेव च ॥६२॥
गन्धान्नतल्पताम्बूलं विना द्रव्याणि द्वादश ।
पाद्यार्घ्यं जल नैवेद्य पुष्पाण्येतानि पञ्च च ॥६३॥

प्रथम भूतशुद्धि कर प्राणायाम करे अङ्गन्यास एवं प्रत्यङ्गन्यास और न्यास करे। वर्णन्यास के वाद अर्घ्य प्रदान किया जाय ।

२७ नराणां भक्ष्याभक्ष्यकर्तव्याकर्तव्य कथनम्

नारदजी के द्वारा द्विज, गृहस्थ, यति, वैष्णव, विधवा एवं ब्रह्मचारियों लिये भक्ष्याभक्ष्य के विषय में पूछने पर भगवान् महादेवजी ने कहा कि ब्राह्मण के लिये भगवान् नारायण के प्रसादरूप में चढ़ाया हुआ हविष्य अन्न भोज्य अन्य सब त्याज्य है, एकादशी को अन्न सर्वथा त्याज्य है ।

ब्राह्मणःकामतोऽन्नं च यो भुङ्क्ते हरिवासरे ।
त्रैलोक्यजनितं पापं सोऽपि भुङ्क्ते न संशयः ॥७॥

जन्माष्टमी, शिवरात्रि, रामनवमी और एकादशी को उपवास कर असमर्थ व्यक्ति अन्न का सेवन न करे हाँ फल मूल जल का सेवन कर सकता

नित्यं नैवेद्यभोजी यः श्रीकृष्णस्य च वैष्णवः ।
नित्यं शतोपवासानां जीवन्मुक्तः फलं लभेत् ॥

भगवान् श्रीकृष्ण को नैवेद्य लगाकर भोजन करनेवाला मनुष्य सौ उपवासों का फल पाता है और वह जीवन्मुक्त है। विधवा स्त्री, यति, ब्रह्मचारी और तपस्वी लोगों के लिये ताम्बूल का सेवन गोमांस के सेवन के बराबर है। ताम्रपात्र में पयःपान और लवण के साथ दुग्ध सेवन गोमांस के समान है। कांस्यपात्र में नारिकेल का जल और ताम्रपात्र में मधु और ईख का रस सुरा के समान है। जो द्विज बांये हाथ से जल पीते हैं वह सुरा पीनेवाले हैं।

अनिवेद्य हरेरन्नं भुक्तशेषञ्च नित्यशः। पीतशेषजलञ्चैव गोमांससदृशं मुने ॥२५॥

मत्स्यादि का मांस सदा ही अभक्ष्य है। प्रतिपदा को कूष्माण्ड, द्वितीया को बृहती भोजन, और पटोल शत्रुओं की वृद्धि करता है तृतीया और चतुर्थी को मूलक का सेवन, पञ्चमी को बिल्व का सेवन, षष्ठी को निम्ब का भक्षण, सप्तमी को ताल का भक्षण शरीर नाशक है। नारिकेल फल का भक्षण अष्टमी के दिन बुद्धि को नाश करता है नवमी को तुम्बी (घिया) दशमी को कलम्बिका, एकादशी को शिम्बीधान्य द्वादशी को पूतिका, त्रयोदशी को बैंगन का भक्षण पुत्र नाश करता है अतः वर्ज्य है, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावास्या को मांसभक्षण सदा महापातक करनेवाला है अतः उसे कभी सेवन न करे।

सरसों का तैल, पक्वतैल का सेवन प्रातःस्नान में, विशेष रूप से पार्वण श्राद्ध में, व्रत के दिन, कुहू, पूर्णिमा, संक्रान्ति, चतुर्दशी और अष्टमी को प्रशस्त है। रविवार, श्राद्ध, व्रत के दिन स्त्रीसेवन और तिल तैल, मांस, रक्त शाक और कांस्य के वर्तन में भोजन निषिद्ध है। सम्पूर्ण वर्णों के लिये दिन में स्त्रीप्रसङ्ग वर्जित है। रात्रि में दधि भक्षण, दोनों सन्ध्या में शयन, रजस्वला स्त्री में गमन ये नरक के कारण है।

रजस्वला और वीरान्न पुंश्चलि का अन्न, शूद्रयाजक और शूद्र के श्राद्ध का अन्न, वृषलीपति का अन्न, ज्योतिषी का अन्न और वैद्य का अन्न वर्जित हैं। अमावास्या,

कृतिका में क्षौर वर्जित है जो व्यक्ति मैथुन और क्षौर कर देव और पितरों
तर्पण करता है वह रुधिर के समान है और दाता नरक में जाता है इस
मनुष्य को इनसे बचकर अपनी जीवनी बनानी चाहिये।

२८ ब्रह्मनिरूपणम्

साकार निराकार ईश्वर के सम्बध में प्रश्न पूछने पर भगवान् शङ्क
ब्रह्मा का निरूपण किया। पांचो प्राण साक्षात् स्वयं विष्णु हैं मन ब्रह्मा प्रजाप
सम्पूर्ण ज्ञानस्वरूप मैं हूं शक्तिरूपा प्रकृति ईश्वरी है आत्माधीन ही हम सब
कर्म के भोगने के लिये जीव उसका प्रतिबिम्ब है, जैसे--जल से पूर्ण घड़े में सूर्य
चन्द्रमा की परछाया दीखती है और घड़े के फूट जाने पर विम्ब चन्द्र और
में लीन हो जाता है वैसे ही सृष्टि के भग्न होनेपर जीव ब्रह्म में मिल जा
संसार के प्रलय के समय एक परब्रह्म ही स्थित रहता है और हम सब तथा
संसार उसी में लीन हो जाते हैं। वह ज्योतिस्वरूप मण्डलाकार है ग्रीष्म के प्र
मध्याह्न सूर्यों की करोड़ों की संख्या में जैसी प्रभा होती है वैसा है। आकाश के स
विस्तीर्ण है सर्वव्यापक है विनाश रहित है योगिवृन्द के द्वारा सुख से दिख
पड़ता है इसको वे ही रात दिन ध्यान करते हैं। परमानन्दस्वरूप परमानन्
कारण पर प्रधानपुरुष निर्गुण है और प्रकृति से परे है। वहींपर सम्पूर्ण बीजरूपा प्र
लीन रहती हं जैसे अग्नि में दाहिका शक्ति, सूर्य में प्रभा, दुग्ध में धवलता, ज
शीतलता, आकाश में शब्द, पृथ्वी में गन्ध वैसे ही निर्गुण ब्रह्म और प्रकृति
सम्बन्ध है। सृष्टि के आरम्भ होते ही वह सगुण रूप बनकर उपस्थित हो
और त्रिगुण प्रकृति छायामयी वहाँ विराजमान रहती है यह सुन नारद
भगवान् शङ्कर से प्रार्थना कर विदा ली।

नारायणम्प्रति नारदप्रश्नः ९९

भगवान् नारायण के पास नारदजी का शुभागमन जब उन्होंने श्रीकृष्ण ध्यान में मग्न देखा तो निम्नलिखित॰ प्रश्न पूछे। हे प्रभो! ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता इन्द्र और मुनिजन किसका ध्यान करते हैं? सृष्टि किससे होती है और कहाँ लीन हो जाती है? सम्पूर्ण कारणों का करनेवाला विष्णु कौन हैं? उनका स्वरूप और कर्म क्या है? यह आप बतलाने की कृपा करें।

श्रीनारायणकृतस्तवः १००

भगवान् नारायण ने उन देवाधिदेव भगवान् पूर्ण कलावतार श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द की स्तुति करते हुए श्री नारदजी से उन्हीं के चरणों में ध्यान लगाने का आदेश दिया।

ब्रह्मवैवर्त के ब्रह्मखण्ड की विषय-सूची समाप्त।

श्रीगणेशाय नमः।

२. प्रकृति खण्ड

अध्याय	विषय	पृष्ठ

सृष्टि में जो कुछ शक्ति विभूति का दर्शन होता है वह सब सर्वव्य
परब्रह्म की ह्लादिनी शक्ति प्रकृति का ही विलास है। उस अनन्त ब्रह्माण्डों
नायिका महादेवी प्रकृति के सृष्टिविधि में पाँच प्रकार का रूप उपलब्ध होता
गणेश जननी भगवती पार्वती, दुर्गा, राधा, लक्ष्मी और सरस्वती एवं सावित्र
सभी स्त्रियों में ये ओत-प्रोत हैं व्याप्त है। यह अनादिकाल से ही सृष्टि के ज
पालन-पोषण में तत्पर हैं इनकी महिमा किसी से भी नहीं कही जासकती। प्र
की यही व्युत्पत्ति है कि प्र=प्रकृष्ट का वाचक, कृति=सृष्टि का वाचक।
प्रक्रिया में जो देवी प्रकर्ष रूप में विराजमान रहती है वह प्रकृति है।

स्त्री मात्र की प्रतिनिधि पृथ्वीरूपा है। जैसे पृथ्वी अपने प्रणव श्वांस से
के द्वारा तीन गुण है, सत्व, रजस् और तमस्! प्र=प्रकृष्ट सत्त्व कृ=र
ति=तमस् त्रिगुणात्मिका सम्पूर्ण शक्ति सम्पन्न और सम्पूर्ण सृष्टि करने में प्र
प्रकृति कहलाती है। सृष्टि के आरम्भ में योग से विराट ने अपना दो रूप
दक्षिण अर्द्धाङ्ग से पुरुष और वामाङ्ग से प्रकृति हुई वैसे परमार्थतः स्त्री और पु
का भेद नही है सम्पूर्ण संसार ही ब्रह्ममय है। सृष्टि रचने की इच्छा करने
श्रीकृष्ण के द्वारा प्रकृति ईश्वरी पैदा हुई। उसकी आज्ञा से ही पञ्चविध भेद
भक्तों पर कृपा करने की इच्छा से भगवती प्रकृति के पाँच प्रकार के रूप हो

यह जड़ चेतन सब में अधिष्ठात्री रूप में रहती हैं। भगवान् की प्राणभूता है जो-जो पदार्थों मे प्राणियों में सत्त्व है वह सब इसी की प्रतिच्छाया है या यह सब यही है क्रमशः दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती,सावित्री, पञ्चतत्व दुर्गा, पार्वती, पृथ्वी, राधा राकिणी शक्ति, लक्ष्मी जनतत्त्व, सरस्वती आकाश, सूर्य एवं सावित्री का विधिपूर्वक वर्णन।

२ देवदेव्युत्पत्तिः १०६

प्रकृति के विना परब्रह्म कुछ भी नहीं कर सकते जैसे विना सोने के स्वर्णकार कुण्डल नहीं बना सकता और विना मिट्टी के कुलाल घड़ा नहीं बना सकता वैसे ही प्रकृति के विना ब्रह्म कुछ भी नहीं कर सकता। समृद्धि, बुद्धि, सम्पत्ति, यश का नाम भाग है। उससे युक्त होने से प्रकृति भगवती और भगवती से युक्त भगवान्। श्रीकृष्ण और राधा की विशेष नामों के साथ व्युत्पत्ति और उनकी अलौकिक ह्लादिनी शक्ति राधा की विशेष प्रशंसा। भगवती राधा के साथ भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्रह्माजी की आयु तक सुखसम्भोग किया उससे प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान तथा अधः प्राण हुए। इसके बाद उनके जिह्वा के अग्रभाग से शुक्लवर्ण की मनोहर कन्या का आविर्भाव हुआ वह पीतवस्त्र पहने हुए थी वीणा पुस्तकधारिणी रत्न आभूषणों से सज्जित सम्पूर्ण शास्त्रों की अधिदेवता थी। इसी के बाद श्रीकृष्ण द्विधा रूपवाले हो गये। दक्षिण अर्ध दो भुजावाला और वामार्द्ध चार भुजावाला बन गया। उस वाणी को श्रीकृष्ण ने कहा कि तुम इसकी कामिनी बनो। उन नारायण के साथ वह मनोहरा कन्या स्त्री रूप में वैकुण्ठ में चली गई। सौ मन्वन्तरों तक स्वर्णमय डिम्ब को राधिकाजी ने सेवन किया और उसे क्रोध से जल में फेंक दिया इस प्रकार ब्रह्माजीने शाप दिया कि तुमने कोपशील होकर उसको छोड़ दिया अतः अब तुम आगे से बिना पुत्रों की होजावोगी।

जब वह डिम्ब (गर्भ का पिण्ड) ब्रह्माजी के सम्पूर्ण वय तक जल में र तो समय पर उसके दो रूप हो गये उसके बीच में से रोता हुआ एक बालक अ प्रकाश से करोड़ों सूर्यों की जगमगाहट को भी फीका करता हुआ निकला। व भूख से व्याकुल था। उसने महाविराट् रूप में भगवान् श्रीकृष्ण के १६ वें अंश अपना रूप धारण किया। वह सम्पूर्ण विश्व का आधार है और उसके प्रत्ये रोमकूप में सम्पूर्ण विश्व के, ब्रह्माण्डों के प्रदेश रक्षित है। उन विश्व संख्या को भगवान् भी नही बता सकते। प्रति विश्व में ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं पाता से ब्रह्मलोक तक ब्रह्माण्ड है उससे ऊपर वैकुण्ठ है उससे ऊपर पचास कोटि योज पर गोलोक है। सात द्वीपवाली पृथ्वी सात सागर युक्त ४६ द्वीप उपद्वीप सम असंख्य पर्वतों के साथ ऊपर स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक और नीचे सात पाता तलातल रसातल आदि उससे भी ब्रह्माण्ड से ऊपर तपोलोक, सत्यलोक औ ब्रह्मलोक की स्थिति है। इस प्रकार से पृथ्वी के अन्तर में सबकुछ है। पृथ्वी नाश होने पर सबकुछ लय हो जाता है। वह विराट् भगवान् श्रीकृष्ण का ध्या करने लगा और प्रभुके प्रगट होने से वरदान पाकर वह सृष्टि निर्माण में लग गया

प्रकृति के पञ्चरूपों में से एक सरस्वती के सम्बन्ध में पूजादि विधान पूछ पर भगवान् नारायण ने संक्षेप से दुर्गा और भगवती राधा के सम्बन्ध में बताकर आरम्भ में सरस्वती पूजा का विधान बताया, जिसे करने से मूर्ख भी पण्डित बन जाता है। जब श्रीकृष्ण की स्त्री के मुख से यह उत्पन्न हुई तो कामरूपिण

इस देवी ने भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छा की तब श्रीकृष्ण ने कहा हे साध्वि तुम मेरे अंश नारायण को भजो क्योंकि यहाँ पर रहने से राधा जैसी बलवती तुम मानिनी के सामने टिक नहीं सकोगी और न तुम्हारा कल्याण होगा। अतः नारायण की स्त्री बनकर रहो और तुम्हारी पूजा माघ शुक्ल पञ्चमी को विद्यारम्भ में सारे मनुष्य करेंगे यह मेरा वरदान है। इसके अनन्तर सरस्वती के मूलमन्त्र, और सरस्वती कवच का विधान बतलाया गया है। जिसको करने से मनुष्य त्रैलोक्य विजयी तथा बृहस्पति के समान महावाग्मी और कवीन्द्र हो जाता है। वास्तव में यह कवच सम्पूर्ण इच्छित वस्तुओं को देनेवाला है।

५ याज्ञवल्क्योक्तवाणीस्तवः १२२

श्री याज्ञवल्क्य ने वाग्देवी सरस्वती को जिस स्तोत्र से प्रसन्न किया उससे भगवान् सूर्य के आदेश से उन्हें सिद्धि मिल गई। याज्ञवल्क्यजी के द्वारा जो भगवती का स्तोत्र है उसकी फलश्रुति और विधान का वर्णन।

६ गङ्गालक्ष्मीसरस्वतीनामुपाख्यानम् भक्तलक्षणञ्च १२५

भगवती सरस्वती गङ्गा के शाप से भारत में नदी रूप में अवतीर्ण हुई और उसमें स्नान करने से अनन्त पुण्यों का फल। लक्ष्मी, सरस्वती और गङ्गा ये तीन भगवान् नारायण की स्त्री है। अपने सौतेले डाह के कारण गङ्गा और सरस्वती का कटु वादविवाद और सरस्वती को मर्त्यलोक में नदी रूप में जाने के लिये गङ्गा का शाप और बदले में गङ्गा को सरस्वती का शाप। फिर नारायण द्वारा महालक्ष्मी जी को मर्त्यलोक में जाकर त्रैलोक्यपावनी तुलसी रूप में रहने को आदेश करना। सभी को जाने के लिये नारायण का आदेश। गङ्गा को शिवस्थान के लिये और

सरस्वती को ब्रह्मा के स्थान पर जाने को कहा गया तदनन्तर स्त्री के वशीभूत रहनेवा
पति के पतन का वर्णन। फिर सरस्वती, गङ्गा तथा लक्ष्मी का भगवान् को अप
लोक में आने के लिये अवधि का पूछना और भगवान् का उन्हें आधे अंश
अपने पास और आधे से मर्त्यलोक में रहकर जन कल्याण करने का आदेश दे
सान्त्वना देना। भगवान् के भक्तों के चरण जहां टिके वह स्थान पवित्र हो जा
है भक्त अपने चरित्रों से संसार का कल्याण कर अन्त में भगवान् में मन लगाते हैं

७ कालकालेश्वरगुणनिरूपणम् १३

भगवती गङ्गाजी द्वारा मर्त्यलोक के कल्याण के लिये संसार में अवतरण
भगीरथ के प्रयत्नों द्वारा भगवान् शङ्कर के शिर पर धारण कर सम्पूर्ण प्रवाह
हिमालय से निकलना। भगवती महालक्ष्मी पद्मावती नाम से और फिर तुल
रूप से जनकल्याण के लिये इस लोक में आई। कलि के पांच हजार वर्षों के बीत
के बाद यहां पर रहकर भगवान् की आज्ञा से वैकुण्ठ में गमन। केवल का
और वृन्दावन तीर्थ ही प्रधान रूप से यहां पर रहेंगे। सभी आस्तिक सम्प्रदा
को प्रसन्न करनेवाली परम्परायें धीरे-धीरे ह्रास को प्राप्त हो जायेंगी। इसके बा
सभी मनुष्य आचार हीन विष्णुभक्ति विमुख, शठ, क्रूर, दाम्भिक, हिंसक औ
दुराचारी बन जायेंगे कहीं भी गुणीजन का आदर नहीं होगा। सभी सार
वस्तुयें निःसार हो जायेंगी। प्राणी वर्ग शौर्य और प्रतापहीन हो जायेंगे। सभी बा
स्त्री और पुरुष कुत्सित एवं विकृताकार हो जायेंगे। आपस में बातचीत क
हुए भी लोग अपशब्दों का प्रयोग करेंगे। सभी ग्रामों व नगरों में अरण्य के सम
दृश्य हो जायेंगे। सभी नागरिकों पर कर इतना लाद दिया जायगा कि वे
बोझ से अपना जीवनस्तर ऊँचा नहीं बना सकेंगे और सभी स्थान कृषि से र
हो जायेंगे। सभी मिथ्यावादी, धूर्त्त, असत्यवादी होंगे। पापी लोग पुण्यात्मा मा
जायेंगे, लम्पट पुरुष जितेन्द्रिय होंगे, पुंश्चली पतिव्रता मानी जायगी। पातक करनेवा

सरपंच कहलायेंगे, भगवान् के नाम पर लोग कमाई करेंगे और कलि आने पर सभी म्लेच्छमय वन जायेंगे। एक हाथ के वृक्ष हो जायेंगे और अङ्गुष्ठमात्र पुरुष हो जायेंगे ऐसे घोर समय में उत्थान के वाद जव पतन की चरम सीमा पहुंच जायगी तो भगवान् नारायण की कला के अंश, सम्पूर्ण वलिपुरुषों में श्रेष्ठ विष्णु-यशा नामक ब्राह्मण के पुत्र कल्की रूप में अवतार लेकर दुष्टों से शून्य इस भूमण्डल को तीन रात में वना देंगे। उस समय घोर वर्षा होगी और वारह आदित्य फिर उदय होकर पृथ्वी को सुखा देंगे। इसके वाद कल्प के अनुसार सत्ययुग का आगमन होगा और फिर वेदप्रयुक्त धर्म का प्रचार होकर सभी प्राणियों का सार्वत्रिक विकाश होगा सभी धर्मपरम्पराओं का पालन करेंगे। भगवान् के बड़े भारी भक्त और श्रुति स्मृति पुराणों के अच्छे ज्ञाता सभी होंगे। अधर्मों का लेशमात्र भी फिर नहीं चलेगा। धर्म पूर्ण चारों पादों से युक्त सत्ययुग में होगा, त्रेता में तीन पादोंवाला होगा, द्वापर में दो पाद का रहेगा, कलि में एक पाद वाला और वह भी फिर लुप्तप्रायः हो जायगा। मनुष्यों के ३६० युग बीतने पर देवताओं का एक युग होता है एवं देवताओं के ७१ दिव्ययुगों से एक मन्वन्तर या इन्द्र की आयु का प्रमाण वतलाया गया है १०८ ब्रह्मा की आयु बीतने पर प्राकृत लय हो जाता है। भगवान् कृष्ण में सम्पूर्ण भूतग्राम लीन होता है अतः इसका नाम यथार्थ रक्खा गया यह सव भगवान् कृष्ण की कालकालेश्वर की लीला वतलाई है।

हरि के निमेष मात्र से ब्रह्मा का पात हुआ उसको प्राकृतिक प्रलय कहा गया है। उस समय लीन प्राणी भगवान् में समा जाते हैं और पृथिवी की स्थिति कहां रहती है और विधान के समय उसका आविर्भाव कैसे हो जाता है। इस

प्रकार नारदजी के पूछने पर नारायण ने भगवान् श्रीकृष्ण को ही सबका उत्पत्ति और तिरोभाव का स्थान बतलाया। मधुकैटभ के मेद से यह सृष्टि बनी ऐसा कोई कहते हैं मेद से उत्पन्न होने से इसका नाम मेदिनी पड़ा। भगवान् वाराह कल्प में इसे समुद्र में से ऊपर ले आये। पृथ्वी की स्तुति।

भूमिदान का फल यदि उसका हरण कोई करे तो नरक का गामी होता है:-

स्वदत्तां परदत्ताम्वा ब्रह्मवृत्तिंहरेत्तु यः। स तिष्ठति कालसूत्रं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥६॥

भूमि की निरुक्ति सम्पूर्ण प्राणियों का आवास होने से उसकी भूमि सञ्ज्ञा है। वसु=धन रत्नादि देने से उसका वसुन्धरा नाम सार्थक है हरि के उरु से यह जानी गई इसलिये उर्वी नाम रक्खा गया और सम्पूर्ण प्राणिमात्र एवं स्थावरजङ्गम को धारण करने से धरा, धरित्री धरणी हुआ।

भगवती गङ्गा के अवतरण प्रसङ्ग में सगर के वंश का विस्तार से वर्णन

भगवती गङ्गा को सरस्वती के शाप से अनादिकाल में सगर के पुत्रों के उद्धार के लिये मर्त्यलोक में जाने के लिये श्रीकृष्ण भगवान् का आदेश। गङ्गा की अमित महिमा सम्पूर्ण पापताप का नाश करनेवाली यह भगवती गङ्गा है। जाह्नवी के तटपर उसकी पवित्र वायु के सेवन से ही दशगुणा पुण्य लाभ होता है। सामान्य दिनों में केवल स्नानमात्र से ही असंख्य पाप नष्ट होते हैं। विशेष पर्वों पर तो कहना ही क्या। अमावास्या, पूर्णिमा, सूर्य एवं चन्द्रग्रहण के अवसर पर चातुर्मास्य के समय स्नान, दान एवं पुण्य का अनन्तकोटिगुणित फल कहा गया है

भगवती गङ्गा की स्तुति इसके पूर्व भगवान ने गङ्गा जी को कई वरदान दिये जिसमें गङ्गा नाम स्मरणपूर्वक स्वर्गवासी होनेवाले मनुष्य की भगवान् के यहां सारूप्य मुक्ति विशेष बताई है।

भगवती भागीरथी की भगीरथ ने जो कौथुमशाखा की स्तुति की इसका सविस्तर वर्णन।

भगवती गङ्गा की विभूति कलियुग के पांच हजार वर्ष बीतने पर कहां चली गई। इस पर नारायण ने गोलोक से गङ्गाजी की राधाकृष्ण के शरीर से उत्पत्ति बताकर उस परमपावन धारा की प्रशंसा की और गोलोक में रासेश्वरी राधा के श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द के बाएँ अङ्ग में विराजने पर गङ्गाजी उनके रूप तथा गुणों पर मोहित हुई। इस पर राधा ने श्रीकृष्ण से कहा कि आप बार-बार गङ्गा को ही देख रहे हैं। अतः आप गोलोक से चले जांय आप इसे बहुत अधिक चाहते हैं और आप मेरे थोड़े शब्द से ही छिप गये। आपने बराबर सारे विश्व के प्राणिवर्ग को कुछ न कुछ विभूति दी है आपका क्या क्या गुणानुवाद कहा जाय। राधा द्वारा गङ्गाजल के पान की इच्छा और ब्रह्मादि देवों द्वारा भगवती गङ्गा की प्रशंसा।

भगवान् नारायण को फिर नारदजी ने प्रश्न किया कि भगवान् शङ्कर के सङ्गीत से मुग्ध होकर जब श्रीकृष्ण एवं राधिका द्रव रूप में होगये तो क्या हुआ और उपस्थित लोगों ने क्या किया इसे विस्तार से समझाइये। भगवान् श्रीनारायण बोले—राधाजी के महोत्सव पर जब कार्तिकी पूर्णिमा का दिन था रासमण्डल की सुन्दर शोभा हो रही थी उसी समय भगवती वीणापाणी सरस्वती

ने सुन्दर शास्त्रीय सङ्गीत से वातावरण को विमुग्ध कर दिया। इसपर ब्रह्माजी भगवान् कृष्ण, राधिकाजी एवं लक्ष्मीजी अमूल्य रत्न उन्हें भेंटस्वरूप दिये और भगवती दुर्गा ने विष्णुभक्ति दी। संसार में उनके द्वारा धर्म वृद्धि के साथ यश अर्जित हो यह धर्म ने वरदान दिया। अग्नि ने विशुद्ध वस्त्र दिये और वायु ने मणिनूपुर दिये। फिर ब्रह्माजी ने शङ्कर देवाधिदेव को रासोल्लासयुक्त श्रीकृष्ण सङ्गीत के लिये प्रेरणा की। इसपर भगवान् शङ्कर ने इतना सुललित गान किया कि सभी देवतावृन्द मूर्छित होगये जैसे चित्र में चित्रित पुत्तलिका हो। एक क्षण में जब चेतना हुई तो वहां पर जल से पूर्ण स्थल को देखा तथा श्रीराधाकृष्ण को अन्तर्धान। इसपर सभी गोपगोपीवृन्द तथा देवता ब्राह्मण ऊँचे स्वर से रोने लगे। ध्यान लगाकर जब ब्रह्माजी ने देखा तो उन्हें सारा रहस्य हृदयङ्गम हुआ कि भगवती राधा के साथ श्रीकृष्ण पिघलकर जल रूप हो गये। तब ब्रह्मादि देवताओं ने श्रीकृष्ण की आराधना की और उन्हें स्वरूप का दर्शन देकर वाञ्छित वर देने की प्रार्थना की। इसपर आकाशवाणी हुई कि सम्पूर्ण भक्तजन पर दया करनेवाली यह जलरूप मेरी ही शक्ति है हम दोनों के रूप की फिर क्या आवश्यकता है। इसके दर्शनों से ही मेरा परम पद प्राप्त होगा। यदि आपलोग मुझे ही देखना चाहते हैं तो भगवान् शङ्कर मेरी आज्ञा का पालन करें और ब्रह्माजी भी वेदाङ्ग शास्त्र को बनाव। जिससे संसार में सभी प्राणी लाभ उठाकर मुझे प्राप्त होव। यदि यह सब आप सबको मान्य हो तो मेरी प्रत्यक्ष मूर्ति के दर्शन सुलभ हैं। इसपर ब्रह्मा ने शङ्करजी से प्रसन्न होकर कहा और शङ्करजी ने गङ्गाजल हाथ में लेकर सत्य प्रतिज्ञा की कि भगवान् विष्णु की मायादि के सम्बन्ध में मन्त्रशास्त्र की रचना कर वेदों का सार उपस्थित करूँगा जिससे भगवान् कृष्ण की आज्ञा का पालन होसके। इसलिये कोई भी व्यक्ति गङ्गाजल लेकर झूठ न बोले नहीं तो ब्रह्मा के वय तक नरक में रहना होगा।

इसपर भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनकी आह्लादिनी शक्ति राधिका ने

आविर्भूत हुए इस प्रकार गङ्गाजी की उत्पत्ति एवं उनकी महिमा के जगन्मान्य प्रभाव का वर्णन हुआ—

१२ गङ्गाया विवाहः १५६

लक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा और लोकपावनी तुलसी भगवान् नारायण की ये चार प्रिया हैं। भगवती गङ्गा कैसे उनकी पत्नी वनी इस प्रकार नारदजी के पूछने पर ब्रह्माजी के मुख से कहे गये उपाख्यान को नारायण भगवान् ने वतलाया। जव राधाकृष्ण के अङ्ग से उत्पन्न गङ्गाजी को राधा ने मान से न देखना चाहा और उसे पान करने को अधीर हो गई तो गङ्गा श्रीकृष्ण भगवान् के चरणों में समा गई। भगवान् विष्णु ने सम्पूर्ण देवगण के मनका अभिप्राय जानकर अपने पैरों के नख के अग्रभाग से उसे गोलोक से वाहर निकाल दिया। इसे राधिका मन्त्र की दीक्षा दी और ब्रह्मा उसे लेकर नारायण को गान्धर्व विवाह से ग्रहण कराने के लिये ले गये। इस प्रकार गङ्गाजी सहित तीन भार्या भगवान् विष्णु के हुई और तुलसी के साथ चार का योग हो गया।

१३ तुलस्यूपाख्यानम् १५७

नारदजी द्वारा तुलसी के कुल, जन्म और प्रभाव के सम्वन्ध में पूछे जाने पर भगवान् नारायण ने दक्ष सावर्णि मनु से लेकर धर्म सावर्णि, विष्णु सावर्णि, देव सावर्णि, राज सावर्णि और वृषध्वज की वंश परम्परा वतलाई। वृषध्वज की शिवनिष्ठा प्रसिद्ध थी उसने भगवान् नारायण, लक्ष्मी और सरस्वती किसीको भी अपना इष्टदेवता न माना। इसपर सूर्य ने उसे भ्रष्टश्री होने का शाप दिया। इसपर सूर्य के पीछे भगवान् शङ्कर त्रिशूल लेकर दौड़े और उन्हें ब्रह्माजी तथा विष्णु के यहां शरण लेने को वाध्य किया। देवता लोग विष्णु की स्तुति करने लगे। तव विष्णु ने उन्हें अभय का आश्वासन दिया और शङ्करजी के आनेपर

विष्णु भगवान् की स्तुति करने पर भगवान् विष्णु ने उन्हें आने का कारण पूछा
और वृषध्वज को शाप देकर भागे हुए सूर्य के पीछे आने का कारण बता
विष्णु से वृषध्वज के शाप के उद्धार का उपाय पूछा। इसपर भगवान् ने वृषध्वज
पुत्र हंसध्वज और दो पौत्र धर्मध्वज एवं कुशध्वज के बाद लक्ष्मी प्राप्ति की
कह अन्तर्धान हो गये।

१४ वेदवत्याश्चरित्रम्

वेदवत्याः सीतारूपेणजन्म

भगवान् नारायण ने कहा कि धर्मध्वज और कुशध्वज दोनों ने क
तपस्या से लक्ष्मी को प्रसन्न कर उससे इच्छित वरदान प्राप्त किया। कुशध्वज
पत्नी मालावती के कमला लक्ष्मी की अंशभूता एक कन्या उत्पन्न हुई। वह जन्मते
वेदध्वनि करती हुई उठ खड़ी हुई इसलिये उसे वेदवती नाम से पुकारा जाता
उसने भगवान् विष्णु की कठिन तपस्या पुष्करक्षेत्र में एक मन्वन्तर तक की। उस
तपस्या से प्रसन्न होकर आकाशवाणी हुई।

हे सुन्दरी दूसरे जन्म में साक्षात् भगवान् हरि तुम्हारे पति होंगे फिर
सन्तुष्ट नहीं हुई और गन्धमादन पर्वत पर जाकर पहले से भी कठिन तपस्या क
लगी। वहांपर रावण को आया देख उसे अतिथि सुलभ सत्कार भावना से सु
कन्दमूल फल और जल से सम्मानित किया। उस पापी ने एकान्त में
यौवन प्राप्त स्त्री को देख काममोहित होकर पूछा हे सुन्दरी तुम कौन हो?
मूर्ख कामवाण से पीड़ित होकर उसे हाथ से ज्योंही खींचकर श्रृङ्गार करना चा
वैसे ही उस सती ने कोप दृष्टि से उसे स्तम्भित कर दिया और भगवती पद्मा
आराधना से वह स्वस्थ हो गया और वह स्वयं योग द्वारा देह को छोड़कर परम
सिधार गई। रावण भी उसे गङ्गाजी में प्रवाहित कर अपने घर चला
मार्ग में वह नाना प्रकार से पश्चात्ताप करता हुआ विलाप करने लगा।

कालान्तर में साध्वी जनकपुत्री सीतारूप में अवतीर्ण हुई और मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम को अपनी कठिन तपस्या से पतिरूप में पाकर धन्य-धन्य बन गई इन्हीं के कारण रावण अन्त में मारा गया। भगवती सीता के साथ अपने पिता श्री के सत्य वचनों को पालन करने के लिये जब राज्यपाट को छोड़कर राघवेन्द्र रामचन्द्र वन को गये तो समुद्र के निकट विप्रवेषधारी अग्निदेव से उनका साक्षात्कार हुआ। श्रीरामचन्द्र को इस प्रकार दुःखी देखकर वह बहुत दुःखी हुए और उन्होंने श्रीराम से कहा कि भगवन् अब आपके लिये सीताहरण का समय आ गया है दैव दुर्निवार्य है मेरी पुत्री को मेरे पास छोड़कर उसकी छाया आप अपने पास रक्खें, फिर परीक्षकाल आने पर आपको सीता देदूँगा देवताओं ने मुझे भेजा है मैं ब्राह्मण वेष में अग्नि हूँ। तब राम ने दुःखी होकर लक्ष्मण के बिना जाने इसे स्वीकार कर लिया और योग से अग्नि ने माया की सीता बनाकर उसी के समान गुण, रूपवाली श्रीराम को देदी। इसी समय रामने सोने का मृग देखा सीता ने उसे लाने के लिये श्रीरामजी को कहा। अब लक्ष्मण की देखरेख में सीता को छोड़ रामचन्द्र ने मायामृग के पीछे रहकर उसे मार दिया और वह परमधाम को चला गया। उसने मरते मरते लक्ष्मण को सम्बोधन कर प्राण छोड़े। इसपर जानकी ने भगवान् रामचन्द्र को खोजने के लिये लक्ष्मण को भेजा और अकेली सीता को पाकर दुष्ट रावण ने छलकर लङ्का में ले जाकर रक्खा। फिर राम ने जानकी का सारा पता पाकर वानरों की सहायता से उस दुष्ट रावण को मार डाला और सीता को प्राप्त किया। अग्निपरीक्षा के लिये जब सीताजी ने अग्निप्रवेश किया तो छाया की सीता ने अग्नि से अपना कर्तव्य पूछा। तब उन्होंने पुष्कर में जाकर तपस्या करने की आज्ञा दी और तीन लाख दिव्य वर्षों तक तप कर स्वर्ग में लक्ष्मी बन गई। सत्ययुग में कुशध्वज की कन्या वेदवती, त्रेता में रामपत्नी और द्वापर में द्रौपदी रूप में हुई। अग्निप्रवेश के समय निकलकर जब शङ्करजी से मतिव्यग्र सीता ने ५ बार पति दो पति दो यह कहा तो शङ्कर ने पाँच पति होंगे यह वर

दिया । इसी से वह पाण्डवों की प्रिय स्त्री द्रौपदी बनी। भगवान् श्रीरामचन्द्र लंका में विभीषण को राज्य देकर अयोध्या लौट कर ११ हजार वर्ष तक राज्य कर वैकुण्ठ सिधार गये ।

१५ धर्मध्वजपत्न्या माधव्यातुलस्याजन्म

धर्मध्वज की पत्नी माधवी के पद्मिनी नामक मनोहर कन्या का जन्म हुआ । उसकी अप्रतिम शोभा से लोग उसकी तुलना करने में असमर्थ रहे इसलिये उसे तुलसी नाम दिया गया। उसने भी भगवान् नारायण मेरे पति हो इस कामना से वड़ी कठिन तपस्या की; गर्मी में पञ्चाग्नि तप, शरद् में जल में रहकर और वर्षा में श्मशानों में रहकर उसने कड़ी साधना की । कई हजार वर्ष तक फल और जल पर रही, फिर पत्तों पर, फिर वायु पर, फिर निराहार रहकर उसने भगवान् ब्रह्मा को वर देने को प्रसन्न कर लिया। इसपर तुलसी ने पूर्वजन्म की कथा बतलाई और भगवान् नारायण को पति रूप में पाने की इच्छा कही । ब्रह्माने कहा भगवान् कृष्ण के अंश से उत्पन्न सुदामा नामक गोप का शंखचूड़ के रूप में राक्षस वंश में जन्म हुआ और उसको तुम तपस्या से मिलोगी और बाद में तुलसी का पेड़ बन संसार में पवित्र बन जाओगी। ब्रह्मा ने फिर तुलसी को राधा मन्त्र की दीक्षा दी और उसे बारह वर्ष जप कर तुलसी द्वारा तपस्या से विराम लेना ।

१६ तुलस्या सह शङ्खचूड़स्य मेलनं कथोपकथनञ्च

शङ्खचूड़वृत्तान्तम्

जब तुलसी वन में एकान्तवास कर रही थी तो वह कामज्वर से पीड़ित रहने लगी । भगवान् विष्णु की तपस्या किया हुआ किसी शाप से मर्त्यलोक में दानव योनि पाकर शंखचूड़ श्रीकृष्ण के मन्त्र का जप कर विधि के विधान से वहां आ पहुंचा। इस प्रकार व्याकुल वह तुलसी अपने वस्त्र से अपना मुँह ढँक

उस युवा पुरुष को बड़ी लज्जा से ध्यानपूर्वक देखने लगी। शङ्खचूड़ ने इस रमणी को देखकर एकान्त में आने का कारण पूछा और उसके सम्बन्ध में विस्तार से जानना चाहा। इसपर तुलसी ने व्यर्थ में ही किसी अज्ञात कुलवाली ललना से वार्तालाप करना उचित नही समझा और धर्मध्वज की पुत्री के रूप में तप्स्या करने की इच्छा से वन में आने का कारण वतलाया। साथ ही तुलसी ने स्त्रीजीवन की भर्त्स्ना की। इसपर स्त्री के दो रूपों की विशद विवेचना कर लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री, राधा रूप में स्त्रीमात्र को वताकर उनसे होनेवाले सम्पूर्ण संसार के अतीव उपकार गिनाये जो सात्विकतापूर्ण हैं। कृत्यारूप में स्त्रियां संसार के लिये घातक हैं। शंखचूड़ ने ब्रह्माजी की आज्ञा से विवाह करने का अपना प्रस्ताव रक्खा इसपर तुलसी ने योग्य वर कन्या से ही आगामी गृहस्थ जीवन अच्छा रहता है और वर के लक्षण वतलाये। जब सारी बातें हो गईं तो ब्रह्माजी प्रगट हुए उन्होंने शङ्खचूड़ को तुलसी के साथ गान्धर्व विवाह करने की बात कही क्योंकि चतुर मनुष्य का चतुर दक्ष स्त्री के साथ सङ्गम गुणवान् ही होता है। इसपर तुलसी का शङ्खचूड़ के साथ गान्धर्व विधि से विवाह सम्पन्न हो गया वह उसे तपोवन से दूसरे स्थान पर ले गया। वह दुर्दान्त दैत्य अपने नगर में जाकर स्वच्छन्द विहार करने लगा। इससे देवतावृन्द बहुत व्यथित हुए और वे सीधे ब्रह्माजी के पास पहुंचे। ब्रह्माजी उनको साथ लेकर शिवलोक गये और शङ्करजी के साथ वे सभी वैकुण्ठलोक में भगवान् विष्णु के यहां अपनी पुकार सुनाने गये। भगवान् के द्वारपालों ने जब शिवजी एवं ब्रह्माजी के साथ देवताओं का आगमन सुनाया तो उनने सबको अन्दर लिवाने की आज्ञा दी। इसपर सभी विष्णु की सभा में चले गये और भगवान् के अलौकिक प्रभाव की प्रशंसा करते हुए अपने आने की बात ब्रह्माजी को अपना प्रतिनिधि बनाकर कही। तब भगवान् ने शङ्खचूड़ के पूर्वजन्म की कथा कही कि किस प्रकार वह सुदामा नामक गोप था और राधाजी के शाप से उसे दानवी योनि मिली। फिर राधा को बहुत

समझाया गया तो उन्होंने कहा कि एक आधे क्षण में शाप का पालन कर फिर आ जायगा परन्तु गोलोक का आधा क्षण तो एक मन्वन्तर के बराबर हो है। हे-ब्रह्मन्! मेरी शूल लेजाकर शङ्कर उससे युद्धकर उसकी योनि छुड़ा दें परन्तु कल्याण हो क्योंकि उसको यह वर दिया गया है कि जब तेरी पत्नी सतीत्व भङ्ग होगा तो वहीं पर उसकी मृत्यु होजायगी। मैं तुलसी का सतीत्व करूँगा और उसके साथ ही तुलसी की योनि छूट जायगी तथा वह मेरी बनेगी'। तब विष्णु ने शिव को गदा दी और देवता लोग भारत में चले आये

१७ शिवेन सह शङ्खचूड़स्य युद्धार्थं पुष्पदन्तप्रेषणम् १७

ब्रह्माजीने शिवजी को शङ्खचूड़ के संहार के लिये नियुक्त कर अपने लोक पदार्पण किया। इधर शङ्करजी चन्द्रभागानदी के किनारे अपने कार्य के लिये देवताओं के उद्धार के लिये जुट गये। इसके लिये उन्होंने अपने पुष्पदन्त शङ्खचूड़ के पास दूतरूप में भेजा। पुष्पदन्त ने बड़ी कठिनता से उसके दरबार में प्रवेश कर शङ्कर के अभिमत युद्ध के सन्देश को कहा। उसका संक्षेप स यही था कि सम्पूर्ण देवताओं को उनका राज्य दो। श्रीहरि ने शङ्कर को शूल दे भेजा है कि यदि वह दैत्येश्वर ना कर दे तो युद्ध करके उन्हें राज्य दिलवा दि जाय। शङ्खचूड़ ने हँसकर प्रातःकाळ आकर युद्ध के आह्वान को स्वीकार कि शङ्कर के साथ अब उनके पार्षद एवं गण लोग जुटने लगे। सभी अस्त्र, योगिनी भूत, प्रेत, पिशाच, ब्रह्मराक्षस, वेताल, यक्ष, रक्ष और किन्नर लोग आग जब शङ्खचूड़ अपने अन्तःपुर में गया तब उस साध्वी तुलसी ने सब बातें सुनी उसने काल निकट है यह संकेत देकर सम्पूर्ण जीवन की सार बात करने को शङ्ख चूड़ ने इसपर भगवान् काल की महिमा बताकर भगवान् कृष्ण के चरणों दृढ़भक्ति करने का उपदेश दिया और अपने पूर्वजन्म की बात कहकर ढा बँधाया और दोनों आनन्द से केलि विलास में मग्न हो गये।

फिर शङ्करजी ने भगवत्परायण होकर हरिगुणगान का उपदेश दिया क्योंकि वही संसार की आधि और व्याधि को छुड़ानेवाली अचूक रामबाण औषधि है। तब शंखचूड़ ने बड़ी विनय से शंकर भगवान् की बातों को मानते हुए कहा कि देव दानवों का यह शक्ति प्राप्ति के लिये युद्ध अनादिकाल से होता आया है। इसमें कभी उनकी जय कभी हमारी जय चली आई है। परन्तु हमारे साथ सदा ही बहुत बुरा बर्ताव हुआ है। आपको हमारे साथ होड़ लगी है जीतने पर कोई वाहवाही नहीं हारने पर बुराई होगी। शङ्कर ने सारी बातों का उत्तर देकर या तो बात मानने को कहा अन्यथा युद्ध करने की ही धमकी दी।

१७ शिवेन सह युद्धार्थं शङ्खचूडस्य कथोपकथनम् १८१

प्रातःकाल होते-होते शङ्खचूड़ ने नित्यकृत्य से निवृत्त होकर अपने पुत्र को राज्याभिषिक्त किया और तरह-तरह के अपूर्व दान युद्धयात्रा की सिद्धि के लिये किये। उसने लम्बी चतुर्वाहिनी रथ, घोड़े, हाथी और पैदल सेना इकट्ठी की और पश्चिम समुद्र की ओर बढ़कर भगवान् शङ्कर से युद्धार्थ चन्द्रभागा नदी के किनारे साक्षात् उपस्थित हुआ। भगवान् शङ्कर ने शङ्खचूड़ के पूर्व वंश का इतिहास बताते हुए उस की गौरवगाथा गाई और देवताओं तथा दानवों दोनों को ही अपने-अपने अधिकार बराबर मिलें इसके लिये शङ्खचूड़ को कहा। उन्होंने उन्नति एवं अवनति दोनों को ही दिखाकर शङ्खचूड़ से देवतागणों के लिये अधिकार देने की बात कही।

१८ देवैः सह शङ्खचूडस्य युद्धम् १८५
कालिकया सह शङ्खचूडस्य युद्धम् १८७

शङ्खचूड़ने युद्ध के लिये पहले से ही पूरी तैयारी कर रक्खी थी। उसने शङ्कर को प्रणाम कर युद्ध की साजसज्जा से आगे आने को अपने अमात्य

लोगों को आज्ञा दी। अब बड़ा भयङ्कर युद्ध छिड़ गया। देवता लोग भाग ग
केवल कार्त्तिकेयस्वामी अकेले बच रहे। उनका शङ्खचूड़ के साथ घोर युद्ध हु
इसमें दोनों दलों ने महान् वीरत्व दिखलाया और नाना शक्तियाँ भी आ
कई दिनों तक जमकर युद्ध हुआ। अन्त में, आकाशवाणी हुई कि हे कार्तिकेय!
दानव शंखचूड़ तुम से अवध्य है मारा नहीं जासकता।

२० शिवशङ्खचूड़युद्धम् १८

शङ्करजी ने अपने गणों के साथ युद्धक्षेत्र में प्रवेश किया। शिवजी को साष्ट
प्रणाम कर वह युद्ध के लिये तैयार हो गया। युद्ध एक वर्ष तक चला। दोनों द
में वह अनिर्णयात्मक रूप में ही चलता रहा। तब भगवान् विष्णु वृद्ध ब्राह्मण का
धरकर आये और शङ्खचूड़ से कवच की भिक्षा मांगी। शङ्खचूड़ ने कवच
दे दिया। विष्णु भगवान् उस कवच को लेकर शङ्खचूड़ के रूप में तुलसी के पा
आये और माया से उसमें गर्भाधान किया और शंकरजी ने श्रीत्रिशूल से
दैत्य को भस्म कर दिया। वह भी दिव्य शरीर धरकर गोलोक में कृष्ण भगव
के यहां चला गया। वहाँ फिर सुदामा गोप बनकर श्रीकृष्णका पार्षद होकर सान
रहने लगा। शंकरजी ने दानव के अस्थिपञ्जर को अपने त्रिशूल से समुद्र में ड
दिया उन्हीं की शंख जाति बनी। इसी कारण से शङ्ख का जल तीर्थ जल के सम
पवित्र है और लक्ष्मीकारक है। अपना काम पूरा कर शङ्करजी शिवलो
पधार गये।

२१ तुलसीवृक्षस्य तत्पत्राणाञ्च माहात्म्यम् १९

शालग्रामचक्रनिर्देशस्तद्गुणकथनञ्च १९

नारद के यह पूछने पर कि तुलसी में नारायण ने किस रूप में गर्भा
किया। इसपर नारायण ने कहा कि शङ्खचूड़ के पास से छल से कवच लेकर

फिर उसीका रूप बनाकर तुलसी के द्वार पर विष्णु पहुंच गये। वहां उन्होंने विजय दुन्दुभी बजाई। जय शब्द सुनकर अपने पति को आया हुआ देख तुलसी अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसने छद्मवेषधारी विष्णु से अपनी विजय का कारण पूछा। विष्णु ने सारी अनगढ़न्त कहकर ब्रह्मा द्वारा बीचबचाव होने से शङ्करजी के साथ समझौता हो गया और देवतागण को अपना इच्छित अधिकार मिल गया। ऐसा सुखद सम्वाद सुनाया। जब तुलसी के साथ भगवान् शङ्खचूड़ वेष में रमण करने लगे तो उसे कुछ दूसरा अनुभव हुआ और भगवान् को अपने सामने देखकर उसने शाप दिया कि आपने धर्म का भङ्ग कर मेरे स्वामी को मारा है आपमें दया की भावना तनिक भी नहीं है जाइये आप पाषाण (पत्थर) के समान दयाहीन हो जाइये। आपको अपने भक्त का भी थोड़ासा खयाल नहीं रहता अतः एक जन्म में आप अपनेको भी भूल जायेंगे। अब वह महासती जोर-जोर से रोने लगी और करुण विलाप करने लगी। इसपर भगवान् नारायण ने उसे बोध दिया हे साध्वि ! तुमने पूर्वजन्म में मेरे लिये तपस्या की और शङ्खचूड़ ने तेरे लिये की अब सारा फलाफल भोगकर वह चला गया और तुम्हारे तप का फल देना बाकी है सो अब इस शरीर को छोड़कर दिव्य देह से रास में लक्ष्मी के बराबर शोभा-वाली तुम बनोगी और तेरे केश पास के तुलसी के पुण्य वृक्ष होंगे। तेरे ही नामपर उन्हें भी तुलसी कहा जायगा। हे वरानने सभी पत्रपुष्पों में जो देवपूजा के योग्य होंगे स्वर्ग, मर्त्यलोक, पाताल, वैकुण्ठ और मेरे पास गोलोक में तुलसी के वृक्ष प्रधान रूप में काम में आयेंगे। जहां पुण्यतीर्थस्थान हैं वहीं तुलसी के वृक्ष होंगे।

तुलसीपत्रतोयंश्च मृत्युकाले च यो लभेत्।
स मुच्यते सर्वपापात् विष्णुलोकं स गच्छति ॥८२॥

तुलसी का प्रतिदिन सेवन और तुलसीकाष्ठमाली के जप से अनन्तकोटि पुण्य लाभ होता है। अपने लिये भगवान् विष्णु ने कहा कि गण्डकी नदी के तीर के पास शैलरूप में मैं रहूंगा। वहांपर नानारूप में मेरी शिला मिलेगी उसके पूजन

से सारे पाप ताप नष्ट हो जायेंगे। तुलसीदल का शालग्राम शिलापर चढ़ाने महान् पुण्य है जो इसे नहीं चढ़ायेगा उसको सात जन्म तक अपनी स्त्री विछोह (वियोग) रहेगा। इसी प्रकार शङ्ख के सम्बन्ध में भी हरिपूजा अविभाज्य अङ्ग कहकर बहुत प्रशंसा की गई है। एक वार भी प्रेम होने से किस का वियोग सहा नहीं जाता है। तुलसिके! तुमने तो एक मन्वन्तर तक उसके सा गृहस्थ भोगा है तव तो विरह असह्य है ही परन्तु जाओ तुम्हारी पूर्वजन्म साधना सफल हो। यह कहकर भगवान् चुप हो गये और तुलसी ने अपना शरीर छोड़कर दिव्य शरीर धारण किया और भगवान् के साथ ही वह वैकुण्ठ लोक में चली गई। यह संक्षेप में लक्ष्मी, सरस्वती गङ्गा और तुलसी की कथा है जो भगवान् की भार्या बनी और भगवान् के देह से गण्डकी नदी पर शालग्राम शिलायें बनीं जिनकी पूजा से आज भी भक्तगण इच्छित फल पाया करते हैं।

नारदजी के तुलसीपूजाविधान और स्तोत्र के सम्बन्ध में पूछने पर भगवान् नारायण ने जो तुलसी वीजमन्त्र, पूजाविधान और स्तोत्र बताया उसका संक्षेप से विवरण। तुलसी के दिव्य देह धारण करने पर भगवान् नारायण उसे भी लक्ष्मी के समान मानने लगे, इसपर लक्ष्मी ने अप्रसन्न होकर उसे मारा। इस अपमान से लज्जित होकर तुलसी अन्तर्हित हो गई। इसपर भगवान् स्वयं तुलसीवन में गये और तुलसी बीजाक्षर से सिद्धि प्राप्त की। इसके बाद तुलसी ध्यानस्तोत्र और पूजा का संक्षेप से विवरण है।

२३	सावित्र्युपाख्यानम्	१९८
	सावित्रीध्यानम् पूजाविधानञ्च	२०१

मद्र देश में महाराज अश्वपति एक प्रबल प्रतापी राजा हुए। उनके मालती नामकी प्रधान महिषी थी उसने गायत्री की आराधना वशिष्ठजी के उपदेश से की परन्तु कोई फल नहीं मिला। तब फिर सौ वर्ष तक राजा ने तपस्या की अन्तमें उसे आकाशवाणी हुई कि हे राजन् १० लाख गायत्री के जप करो। गायत्री जप का माहात्म्य। जपविधान में हाथ के द्वारा स्वतः करने के विशेष फल का वर्णन पराशरजी ने आकर बताया। गायत्री जपके पहले सन्ध्यावन्दन अवश्य कर्तव्य है अन्यथा फलहानि होती है। राजा ने तदनुसार सावित्री का जप और पूजा कर उसे प्रसन्न कर दिया उसका वर भी मिला। इसपर राजा अश्वपति के द्वारा गायत्री विधान का वर्णन।

२४	द्वितीयसावित्र्या जन्मविवाहाद्युपाख्यानम्	२०३

राजा अश्वपति ने जब सावित्री को प्रसन्न किया तो वह प्रसन्न मुद्रा में स्वयं उपस्थित होकर राजा से बोली हे महाराज जो आपके मन में है और आपकी पत्नी को इच्छित है वह मैं दूँगी। तुम्हारी इच्छा पुत्र की है और स्त्री की इच्छा पुत्री की है। तुम दोनों की ही पुत्री और पुत्र की इच्छा पूर्ण होगी। तब राजा के अपनी स्त्री मालती से कन्या हुई उसका नाम भी सावित्री रक्खा गया। वह दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती गई यहां तक कि उसकी विवाह के योग्य अवस्था हो गई। उसने भी द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान् को वरने का वर लिया था इसलिये राजा अश्वपति ने उसका विवाह सत्यवान् से कर दिया और खूब दहेज़ के साथ अपनी पुत्री को श्वसुर गृह भेज दिया। एक वर्ष बीतने पर सत्यवान् अपने पिता की आज्ञा से काठ इन्धन लाने के लिये वन में गया उसी के साथ दैवयोग से सावित्री भी थी।

दुर्भाग्य से वृक्ष से गिरकर सत्यवान् मर गया। उसी समय यम भी अंगूठे के समान उसके जीव को लेकर अपने लोक में जाने लगा तो अपने पीछे आती हुई सती सावित्री को देखा। यमराज के द्वारा कर्मफल का विस्तार से वर्णन करते हुए सावित्री को यमलोक में जाने से रोकना यम द्वारा सत्यवान् की आयु क्षीण थी अतः अब वह कर्मफल के भोगने के लिये जाता है उसके लिये रोकने को मना करना।

२५ कर्मविपाके सावित्रीप्रश्नः २०५

सावित्री ने शुभ कर्म और अशुभ कर्म क्या है इसको लेकर प्रश्न किया यमराज ने वेदविहित कर्म को ही मङ्गलकर और शुभ वतलाया तथा अवैदिक कर्मों को अशुभ कहा। कर्म को निर्मूल करनेवाली हरिभक्ति ही सच्ची है, हरिभक्त ही मुक्त है, उसे किसी प्रकार की जन्म-मृत्यु एवं व्याधि की अवस्था से थोड़ा भी भय नहीं रहता। मुक्ति दो प्रकार की है एक निर्वाण रूप और दूसरी हरिभक्ति स्वरूप। कर्मरूप भगवान् विष्णु वीजरूप से विराजमान हैं अतः जीव कर्मफल भोगता है और आत्मा निर्लिप्त रहती है। देही आत्मा का प्रतिबिम्ब है वही जीव है देह विनाशशील है और पाञ्चभौतिक है। यह सब शरीर पृथिवी, वायु, आकाश, जल और तेज़ रूप का विकार है। सृष्टिविधि में यह सब सूत्ररूप में रहते हैं इन सबका कारणरूप श्रीकृष्ण भगवान् स्वयं हैं इसे जानकर बराबर स्वस्थ रहकर जीवनचर्या बनाने से ही मनुष्यजीवन की सफलता है। इसपर सावित्री ने कहा आप तो बुद्धि के सागर हैं मुझे वतलाइये कि इस पतिदेव को छोड़कर मैं कहाँ जाऊँ कृपया यह समझाइये कि किन कर्मों से जीव किन-किन योनियों को प्राप्त करता है, किनसे स्वर्ग मिलता है, किनसे नरकगामी होता है, किनसे भगवान् में भक्ति बढ़ती है और किन कर्मों से मुक्ति होती है। किस कर्म से रोगी और नीरोग होता है किससे दीर्घायु और अल्पायु होता है। अङ्गहीन, काना, अन्धा, वहरा, कृपण,

प्रमादी, लोभी, पागल और नरघातक किन-किन कर्मों से होता है ? किस कर्म से चारों प्रकार की मुक्ति मिलती है ? किससे ब्राह्मणत्व और तपस्वी जीवन मिलता है ? स्वर्ग के भोग और वैकुण्ठ किनसे मिलते हैं ? गोलोक किस कर्म से मिलता है ? नरक कितने प्रकार का है ? उसके भेद बतलाइये। कौन नरकगामी होता है और कितने समयतक वहांपर रहता है। पापियों को किन-किन कर्मों से व्याधियाँ हो जाती हैं आदि-आदि मुझे समझाइये।

२५ कर्मविपाके कर्मानुरूपस्थानगमनम् २०७

सावित्री का वचन सुनकर विस्मित होकर यम ने कहा हे सावित्री, १२ वर्ष की कन्या होकर भी तुम्हारा ज्ञान अपूर्व है मानो पहले के विद्वान् योगियों से भी बढ़ी चढ़ी हो अतः मैं प्रसन्न हूं और जैसे पूर्वकाल के असंख्य स्त्री पुरुषों ने जीवन धर्ममय बनाकर आदर्श रक्खा वैसे तुम भी सत्यवान् के साथ सौभाग्यशीला बनो अब तुम्हें जो दूसरा वर इच्छित हो वह कहो। सावित्री ने इसपर कहा कि मेरे पति के ही औरस से मेरे १०० पुत्र हों, मेरे पिता के सौ पुत्र और श्वशुर के आँखें हो जाय और मेरा गृहस्थजीवन सुखपूर्वक व्यतीत होनेपर मैं अपने पतिदेव सत्यवान् के साथ एक लक्ष वर्ष के बाद विष्णुलोक में चली जाऊँ। इसके बाद आप क्रमशः मुझे जीवकर्मविपाक और विश्वविस्तारबीज विशेष रूप से समझाइये।

यमराज ने तथास्तु कहकर जीवकर्मविपाक बताना आरम्भ किया। भारत में जन्म लेने से ही शुभ और अशुभ कर्मों का भोग भोगना पड़ता है क्योंकि यही पुण्यक्षेत्र है और नहीं। देवता, राक्षस, गन्धर्व, दानव और मनुष्य ये कर्म भोगने की योनियाँ हैं परन्तु सभी समजीवी नहीं हैं। अच्छे कर्मों के प्रभाव से ऊँची योनियाँ मिलती हैं बुरे कर्मों के प्रभाव से नीच योनियाँ प्राप्त होती हैं। कर्म को उखाड़ फेंकने में दो प्रकार की युक्ति बतलाई गई है। एक निर्वाण परमपद और दूसरी कृष्णभगवान् की सेवा। जीव कर्म न करने से रोगी और शुभ कर्म

करने से स्वस्थ होता है। कुत्सित कर्म से अन्धा, कूबड़ा, लूला, लंगड़ा बनता है। इसी प्रकार सबसे उत्कृष्ट कर्मों के करने से नई नई सिद्धियाँ प्राप्त करता है। हे सावित्री! मनुष्यजाति में जन्म दुर्लभ है वह भी फिर भारत में तथा श्रेष्ठ ब्राह्मण जाति में तो और भी कठिन; सुकर्म करने में यह जाति ही सबसे उत्तम कही गई है। भारत में विष्णुभक्त द्विज की तो शोभा ही मत पूछो वह भी दो प्रकार के है सकाम और निष्काम। निष्काम विष्णुभक्त का मार्ग प्रशस्त है, उसे कहीं भी रुकावट नहीं। सकाम मनुष्य को कर्म का भोग भोगने को बार बार जन्म लेनेको आना होता है अतः निष्काम भक्ति ही ऊँची है। भगवान् कृष्ण के आराधक गोलोक में जाते हैं और विष्णु के भक्त वैकुण्ठ में। सकाम भक्तिवाले को बार बार जन्म लेकर आना पड़ता है। फिर यम ने भिन्न-भिन्न दानों की भूरि-भूरि प्रशंसा कर उनकी फलश्रुति बतलाई। यम ने बतलाया कि आरब्ध कर्मों का भोग होने से ही क्षय होता है। हाँ, यदि दैवतीर्थ में कही मनुष्य की परम गति हुई तो कायव्यूह से वह शुद्ध हो जाता है।

२७ शुभकर्मविपाक प्रकथनम् २११

सावित्री ने स्वर्गादि की प्राप्ति के लिये जो कर्म पूछने चाहे उनका यम ने विस्तार से अन्नदान, धेनुदान, वृषदान, शालग्राम शिला का दान, छत्र, पादुका, शय्या, दीपक, गजदान, अश्वदान, पालकी, पंखा, श्वेत चँवर, सप्ताचल धान्यादि का जो दान करता है वह विष्णुलोक में जाकर कई लाख वर्षों तक वहाँपर निवास करता है।

स्मृतं श्री हरेर्नाम भारते यो जपेन्नरः। स एव चिरजीवी च ततो मृत्युः पलायते॥

इसके बाद तिलदान, विवाह के लिये आवश्यक सामग्री का दान, फल के वृक्ष का दान, फलदान, और अपने व्यवहार में आनेवाली सम्पूर्ण वस्तुओं का दान जो योग्य अधिकारी को देता है उसकी परमगति होती है और ऊँची गति

को प्राप्त कर विष्णुलोक में जाता है। फिर भूमिदान, स्वर्णदान, वापी, कूप तड़ाग और धर्मशाला आदि के निर्माण का जो पुण्य करता है वह कल्पान्तजीवी होकर महाराजराजेश्वर बनता है उसको विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। यथाशक्ति दानादि करसकने में यदि कोई व्यक्ति असमर्थ है तो उसे भगवान् विष्णु के दिव्य नामों का जप कर अपना ऐहिक कल्याण करना चाहिये। संसार में सभी नाश को प्राप्त होते हैं, परन्तु विष्णुभक्त कभी नष्ट नहीं होते। कार्तिक मास में जो तुलसी और भगवान् को दीप दान करता है उसे अक्षय पुण्य का लाभ मिलता है। माघ में गङ्गा स्नान जब अरुणोदय हो उस समय करनेवाला मनुष्य ६० हजार वर्ष तक भगवान् के मन्दिर में आनन्द करता है। फिर बारह मासों के नाना कृत्यों का वर्णन कर उनके फल बतलाये हैं। भगवान् कृष्ण के गुणानुवाद के साथ यम ने सत्यवान् के साथ सावित्री को लौट जाने की आज्ञा दी।

२८ सावित्रीकृतं यमस्तोत्रम् २१८

सावित्री ने यम के द्वारा भगवान् कृष्ण के गुणानुवाद को सुनकर आँखों में आँसू बहाते हुए गद्गद् होकर भगवान् हरि के नामाक्षर की अमित महिमा स्वयं अपनेआप गाई। सावित्री जैसी साध्वी के द्वारा कृष्ण गुणों की प्रशंसा स्वाभाविक है। उसने कृष्णभक्ति और भगवन्नाम कीर्तन से अपने कुल का उद्धार होना कहा और सुनने तथा बोलनेवाले सभी को समान रूप से उनके जन्म, मृत्यु और बुढ़ापा को हरनेवाला होने के कारण लाभदायक बतलाया। भगवान् के कीर्त्तन से दान, व्रत, तपस्या और योगाभ्यास की सिद्धियाँ भी तुच्छ (छोटी) जान पड़ती हैं। मुक्ति, अमरता और सम्पूर्ण सिद्धियां भी श्रीकृष्ण भक्ति की १६ वीं कला की भी बराबरी नहीं कर सकतीं। फिर अशुभ कर्मविपाक के सम्बन्ध में पूछकर उसने वेदोक्त स्तोत्र से यमराज की स्तुति की। इस स्तुति को प्रातः पढ़नेवाले को किसी प्रकार का पाप-ताप नहीं सताता।

यम ने सावित्री को विष्णुमन्त्र की दीक्षा विधिपूर्वक देकर कर्माशुभविपाक सम्वन्धमें विस्तार से वतलाया। कुकर्मी को सदा नरक की गति मिलती है। इस सम्बन्ध में नाना प्रकार के नरककुण्डों को विस्तार से पुराणों में जहाँ-जहाँ वर्णन आया है उसे साररूप में यमराज ने सावित्री को बतलाया। ८०६ कुण्ड हैं, उनमें अग्निकुण्ड, तप्तकुण्ड, क्षारकुण्ड, विट्कुण्ड, मूत्रकुण्ड, श्लेष्मकुण्ड, गरकुण्ड, दूषिकाकुण्ड, वसाकुण्ड, शुक्रकुण्ड, मसृक् कुण्ड, मश्रुकुण्ड और कान, आँख, आदि के मलों के कई कुण्ड, मज्जाकुण्ड मांसकुण्ड, नखकुण्ड, लोमकुण्ड, केशकुण्ड, और दुःखद अस्थि कुण्ड, ताम्रकुण्ड, लौहकुण्ड, तीक्ष्णकण्टककुण्ड, विषकुण्ड, घर्मकुण्ड (ताप का कुण्ड) तप्तसुराकुण्ड, प्रतप्ततैलकुण्ड, दन्तकुण्ड, कृमिकुण्ड पूयकुण्ड, सर्पकुण्ड, मशर्ककुण्ड, दशकुण्ड, गरलकुण्ड, वज्रदंष्ट्री जीवों का कुण्ड, बिच्छुओं का कुण्ड, शरकुण्ड, शूल कुण्ड, खड्गकुण्ड, गोलकुण्ड, नक्रकुण्ड, काककुण्ड, सञ्चालकुण्ड, वाजकुण्ड, दुस्तर बन्धककुण्ड, तप्तपाषाणकुण्ड, तीक्ष्णपाषाणकुण्ड, लार का कुण्ड, असिकुण्ड, चूर्ण कुण्ड, चक्रकुण्ड, वज्रकुण्ड, कूर्मकुण्ड, ज्वालाकुण्ड, भस्मकुण्ड, पूतिकुण्ड, तप्तशत्त्यप्यसी पात्र, क्षुरधारकुण्ड, सूचीमुखकुण्ड, गोधामुख, नक्रमुख, गजदंश, गोमुख, कुम्भीपाक कालसूत्रनरक, अवटोद, अरुन्तुद पांशुभोज, पाशवेष्ट, शूलप्रोत, उल्कामुख अन्धकूप, वेधन दण्डताड़न, जालबन्ध, देहचूर्ण, दलन, शोषणङ्कार, सर्पज्वालामुख जिम्भ, धूमान्ध, और नागवेष्टन इन कुण्डों का विवरण दिया तथा यहाँ पर किङ्कर लोक बराबर रक्षक रूप से नियुक्त हैं। वे अपने हाथ में दण्ड, शक्ति, शूल पाश, गदा लेकर मदोन्मत्त होकर निर्दयता से पापी जीवों के पूर्वकृत पापों का भोग करवाते हैं। .. आगे किन-किन पापों से किन-किन कुण्डों का वास होता है यह बताया जायगा।

संसार में जो भगवान् की सेवा में लगजाता है मन, बुद्धि और शरीर से शुद्ध है, योगी, सिद्ध और व्रती, तपस्वी एवं ब्रह्मचारी है वह कभी भी नरकगम्मी नहीं होता है। अपने वन्धुवान्धवों को जो कड़ी वाणी से और दुष्टता से व्यवहार करता है वह अग्निकुण्ड को जाता है। शरीर में जितने लोम हैं उतनी संख्या के वर्षों तक उसमें नरक भोगकर तीन जन्मों तक पशुयोनि पाता है। भूखे प्यासे ब्राह्मण को जो अपने घरपर अतिथि सत्कार के अनुरूप भोजन नहीं कराता, वह तप्तकुण्ड का गामी होता है और शरीर के जितने रोम हैं उतने वर्षों तक रहकर फिर सात जन्म तक पक्षी होता है। रविवार, अर्क की संक्रान्ति, अमावास्या और श्राद्ध के दिन जो कोई अपने कपड़ों में क्षार वा सावुन लगाकर सफाई करता है वह क्षारकुण्ड में जितने कपड़े में सूत के धागे हैं उतने वर्ष तक रहता है वाद में धोवी की योनि पाता है। अपनी दी गई या दूसरे की दी गई ब्राह्मण की वृत्ति को जो हरता है वह ६० हजार वर्ष तक विट् कुण्ड में रहता है। वही उसका भोजन होता हैं फिर ६० हजार वर्ष तक पृथ्वी पर विष्ठा का कीड़ा बनता है। दूसरे के बनाये गये तालाब पर यदि तड़ाग वनाया जाता है तो दैवदोष का अपराध होने से वह मूत्र कुण्ड में जाता है। जितनी पृथ्वी की रेणुका हैं उतने वर्ष तक उसे खाने वाला कीड़ा बनकर वहीं रहता है, फिर मगरमच्छ की योनि सात जन्म तक लेकर उससे छुटकारा पाता है। अकेला यदि कोई मिष्टान्न खाता है तो श्लेष्म कुण्ड में जाता है और पूरे सौ वर्ष तक उसे खाते हुए अपना जीवन बिताता है फिर सौ वर्ष तक भारत में प्रेत योनि में जाता है श्लेष्म, मूत्र, गर को खाकर फिर छूटता है। पिता, माता, गुरु, स्त्री, पुत्र और अपनी पुत्री को अनाथावस्था में जो पालन नहीं करता वह गर कुण्ड में पड़ता है और वहीं सहस्र वर्ष तक रहकर फिर भूत योनि सौ वर्ष तक भोगकर शुद्ध बनता है। जो अतिथि को देखकर

मुह मोड़ता है या टेढ़ी नजर से अपमान करता है उस पापी के यहाँ देवता और पितर जल नहीं लेते। ब्रह्महत्यादि जैसे जघन्य पापों का फल इसी जीवन में मिलता है। अन्त में दूषिका कुण्ड में गिरने से शुद्ध होता है ऐसा आदमी सात जन्म तक दरिद्र बनता है। ब्राह्मण को दिया हुआ धन यदि दूसरे को दिया जाय तो उसको देनेवाला २०० वर्ष तक वसाकुण्ड में गिरता है फिर चाण्डाल योनि में तीन जन्म रहकर शुद्ध होता है और भारत में गिरगिट योनि सात जन्म तक लेकर फिर दरिद्र और अल्पायु होता है। स्त्री-पुरुष को रज या पुरुष-स्त्री को यदि शुक्र पिलाता है तो शुक्र कुण्ड में गिरता है। १०० वर्ष तक उस कुण्ड का कीड़ा बनकर फिर पृथ्वी का कीड़ा बनता है और शुद्ध होता है बाद में सात जन्म तक व्याध के यहाँ पैदा होकर क्रम से शुद्ध होता है। भगवान् के भक्त को जो भक्ति से विह्वल और अश्रुपातादि से गद्गद हो गया हो यदि कोई उसकी हँसी करता है तो १०० वर्ष तक अश्रुकुण्ड में कीड़ा होता है फिर तीन जन्म तक चाण्डाल होकर शुद्ध होता है। सदा दुष्टता करनेवाला १० वर्ष तक शरीर के मलस्थानों के कुण्ड में गिरता है फिर तीन जन्म में गधा और तीन जन्म में शृगाल (सियार) बनकर शुद्ध होता है। जो बहरे की हँसी या अपमान तथा निन्दा करता है वह कान के मल के कुण्ड में १०० वर्ष तक रहता है और फिर सात जन्म तक दरिद्री और बहरा होता है और सात जन्म तक अङ्गहीन होकर शुद्ध होता है। जो लोभ से अपना पालन करने के लिये जीव को मारता है वह लाख वर्ष तक मज्जा कुण्ड में कीड़ा होता है। अपनी कन्या का पालन कर बेचनेवाला मांस कुण्ड में पड़ता है, ऐसा व्यक्ति ६० हजार वर्ष तक व्याध होता है फिर वराह, कुत्ता, मेढ़क, जोंक और कौआ सात-सात जन्म तक होकर शुद्ध होता है। व्रत, उपवास, श्राद्धादि के संयम न कर क्षौर कर्म करता है वह कभी शुद्ध नहीं होता उसे कहीं भी कर्म करने का अधिकार नहीं। इस प्रकार सम्पूर्ण पापों के नाना कुण्डों की गति और परिणाम का विस्तार से वर्णन किया गया है। पाप पुण्य के वास्तव और अतिदेशों के सम्बन्ध

में सावित्री ने जब यम से पूछा तो उसे यह बतलाया गया कि अतिदेशिक से वास्तव का चार गुना हत्या अधिक पाप का फल देती है। जो व्यक्ति किसी भी देवता के मन्त्र की दीक्षा नहीं लेता वह अदीक्षित है उसका कहीं भी अधिकार नहीं। प्रमत्त, पतित आदि के भेद का वर्णन।

३१ सावित्र्युपाख्याने पापिकुण्डनिर्णयः २३०

हरि सेवा के विना कर्म का खण्डन नहीं होता। शुभकर्म स्वर्ग का जनक है और कुकर्म नरक का जनक है। पुश्चल्यान्न, वेश्यान्न आदि के खानेवाली की गतियाँ बतलाई और अगम्यागमन का सेवन करनेवाले का वज्र पाप नया योनि भोगने पर भी नहीं छूटता इसलिये सदा इनसे बचते रहना मनुष्य का परम धर्म है। पृथ्वी, वायु, आकाश, तेज और तोय देही जनके शरीरों के मूल हैं और सृष्टिविधि में ये ही कारण हैं। पृथिवी आदि पञ्चभूतों से देह निर्मित है वह नश्वर और कृत्रिम है तथा भस्मीभूत हो जाता है। वृद्ध के अङ्गुष्ठ के प्रमाणवाला जीव पुरुषाकार में सूक्ष्म देह धारण कर नाना योनियों में जाता है। यह सूक्ष्म देह न शस्त्र से छिदता है न अग्नि से जलता है न जल में लोहित है। यही भोग योनियों में जाता हुआ प्रभु की कृपा से प्रभुशरण होकर भगवान् के रूप में एकाकार हो जाता है। भक्तों को चार प्रकार की मुक्तियाँ प्राप्त होती हैं उनका निरूपण किया और निष्काम भक्ति की सर्वत्र प्रशंसा की। तदनन्तर सत्यवान् को जिलाकर यमराज ने जाने की तैयारी की। सज्जन पुरुष का वियोग सदा ही दुःखदायी होता है दोनों ही इस सज्जन सङ्गम से प्रभावित हुए और विदा के समय दुःखी होकर रोने लगे। तब यमराज ने सावित्री को कहा कि लाख वर्ष तक भारत में कुशलपूर्वक जीवन बिताकर अन्त में गोलोक में जाओगी। अब तुम घर जाकर सावित्री का व्रत करो। चौदह वर्ष तक ज्येष्ठ मास की कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को यह सावित्री का मङ्गल व्रत है। भाद्र शुक्ल की अष्टमी को महालक्ष्मी का व्रत आठ वर्ष

तक लगातार करने से भगवान् में भक्ति होकर अन्त में उनके लोक की प्राप्ति हो है। प्रति मास प्रति मङ्गलवार को शुक्लपक्ष की षष्ठी को मङ्गल चण्डी के व्रत विधान है और इसी प्रकार आषाढ़ की संक्रान्ति में सर्वसिद्धि देनेवाली मन तथा कार्तिक शुक्लपक्ष में रासेश्वरी राधा का व्रत करना और प्रतिमास की शुक्ल की अष्टमी को विष्णुमाया भगवती दुर्गा का उपवास धन, सन्तान और सौभा को देनेवाला है। इसे तुम अवश्य करना इस प्रकार कह कर यमराज अपने लोक तथा सावित्री सत्यवान् के साथ अपने घर को चली गई। सावित्री के पिता पुत्रों की प्राप्त हुई और उसके श्वसुर को आँखों की ज्योति मिल गई वह धन्या पतिव्रता एक लाख वर्ष तक सुख से गृहस्थ जीवन बिताकर नित्य गोलोक में चली गई। सूर्य की अधिदेवी तथा सूर्य मन्त्रों की अधिष्ठात्री होने से उसका नाम सावित्री सार्थक हुआ।

३२ यमसावित्री संम्वादवर्णनम्

फिर सावित्री ने इन नरककुण्डों में न जाने का उपाय पूछा और कहा भौतिक देह के जलजाने के बाद मनुष्य कैसे और किस शरीर से शुभ और अ कर्मों का भोग भोगते हैं फिर दीर्घकाल तक भोग भोगने पर भी देह का नाश होता है आदि बातें मुझे संक्षेप से बतलाइये। सम्पूर्ण चारों वेद, धर्मसंहि धर्मों का सार, पुराण, इतिहास, पञ्चरात्र आदि में तथा वेदाङ्ग और १८ में सम्पूर्ण इष्टों का सार मङ्गलरूप कृष्णसेवन बतलाया है। यह भगवत्कीर्तन, भजन, ध्यान, मनुष्य का जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा, रोग, शोक और सन्ताप से छुट करवा देता है। यह सर्वमङ्गलरूप है, परम आनन्द का कारण है, भक्तिरूपी का यह अङ्कुर है और सम्पूर्ण कर्मवृक्ष को जड़मूल से छेदन करनेवाला है। कुण्ड, यमदूत, यम और यम के नौकरों को कृष्ण भक्त कभी नहीं देखते। तीन की सन्ध्या करनेवाले आचार में लगे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का मार्ग प्रश

३३ कुण्डानां मानलक्षणवर्णनम् २३५

भिन्न-भिन्न नरककुण्डों की लम्बाई चौड़ाई और गहराई का वर्णन।

३४ श्रीकृष्णगुणकीर्तनम् २४१

सावित्री ने जब कृष्णगुणकीर्तन के सम्बन्ध में यमराज से पूछा तो भगवान् के नामगुणकीर्तन का जो सुन्दर निरूपण किया वह पठनीय है। सावित्री ने अपनी कमी बतलाते हुए धर्मज्ञान से शून्य होने की बात कही और अज्ञान को मिटानेवाले कृष्णकीर्तन ज्ञान की पूरी कथा के लिये आग्रह किया। यम ने पूर्वपुरुषों की लम्बी सूची देकर कृष्णभक्तों का गुणानुवाद करते हुए इस शास्त्र के प्रवर्तकों का नाम निर्देश किया उन्होंने सूर्य से प्राप्त भुक्ति मुक्ति के कारण भगवान् कृष्ण के गुणानुवाद का सविस्तर वर्णन किया। भगवान् विष्णु सम्पूर्ण सृष्टि के मूल हैं पालनकर्ता हैं और संहारक हैं इनके आदेश से ही सृष्टि में सम्पूर्ण कार्यक्रम विधिविधान से चलता है। सृष्टि, स्थिति और लय भी उनके द्वारा होता है। भगवान् में ही सारा ब्रह्माण्ड समाया हुआ है।

३५ लक्ष्म्युपाख्यानम् २४६

नारदजी ने लक्ष्मीजी के उपाख्यान के लिये भगवान् नारायण से प्रार्थना की। तब भगवान् नारायण ने लक्ष्मीजी के उपाख्यान को विस्तार से बतलाया। सृष्टि के आरम्भ में श्रीकृष्ण के वामांश से रासमण्डल में इस भगवती का आविर्भाव हुआ। वैकुण्ठ में नारायण विष्णु चतुर्भुज और गोलोक में भगवान् श्रीकृष्ण द्विभुज राधा और गोप गोपियों के साथ आनन्द से विहार करते हैं। इन्हीं की कला समस्त संसार में स्त्रीमात्र में विराजमान हैं। सम्पूर्ण संसार में इस देवी की पूजा होती है। सर्व प्रथम क्षीर समुद्र में विष्णु ने इन्हें पूजा फिर

गन्धर्वादि तथा नागों ने पाताल में इनकी पूजाकी। भाद्रपद की शुक्लपक्ष की अष्ट
को ब्रह्मा ने एक पक्ष तक भक्ति से इनकी पूजा की। चैत्र, पौष और भाद्रपद
मङ्गलवार के दिन भगवान् विष्णु द्वारा निर्मित इस महालक्ष्मी देवी की पू
तीनों लोकों में प्रसिद्ध हो गई। पौष मास की संक्रान्ति में मनु ने इस भुव
पावनी की पूजा की जो अबतक भी पूजी जाती है और सद्यः फल देती है
राजेन्द्र मङ्गल ने इसे पूजा। केदार, नल, नील, सुबल सभी ने इसकी अ
लिये पूजा की। ध्रुव ने भी, जो उत्तानपाद का पुत्र था, इसे पूजा। कश्यप, द
मनु, विवस्वान्, प्रियव्रत, चन्द्र, कुबेर, वायु, यम, अग्नि, वरुण सबने अपने-अ
इच्छित फल पाने के लिये भगवती की साक्षात् पूजा की। इस प्रकार यह स
ऐश्वर्य, विभूति और सम्पत्ति को देनेवाली है।

२६ इन्द्रम्प्रतिदुर्वाससःशापः २

मुनीन्द्रसुरेन्द्रसम्वादः २

भगवती महालक्ष्मीजी पृथिवी पर सिन्धु कन्या किस प्रकार हुई इस
के उत्तर में नारायण भगवान् ने इन्द्र को दुर्वासा के द्वारा शाप देनेपर जब उ
श्री जाकर वैकुण्ठ में महालक्ष्मी में मिल गई तो देवता लोग दुःखित होकर ब्रह्म
के यहाँ गये और ब्रह्माजी के नेतृत्व में भगवान् नारायण की शरण में ज
उनसे अपनी कष्टकथा सुनाई, तब विष्णु की आज्ञा से देवराज इन्द्र की सम्
रूपिणी लक्ष्मी सिन्धु की कन्या हुई और क्षीरसागर के मन्थन के समय लक्ष्
वर पाकर लक्ष्मी को वहाँ देखा। दुर्वासा के शाप का कारण पूछने पर भ
नारायण ने कहा कि रंभा के साथ इन्द्र मद्यपान कर रमण करता था। दु
आये और प्रणाम करते हुए इन्द्रको पारिजात पुष्प से शुभाशीर्वाद दिया
प्रमादी इन्द्र ने यह पुष्प अपने हाथी के मस्तक पर धर दिया जिससे वह श

युक्त अन्यत्र चला गया इसी पर इन्द्रको शाप दिया। संसार के आवागमन से छुड़ाने का उपाय दुर्वासा ने इन्द्र को भगवान् विष्णु के मन्त्र की उपासना बताया। जन्म से लेकर मरण पर्यन्त सभी अवस्थाओं का वर्णन और सभी का स्वरूप वर्णन।

२७ हरिगुणश्रवणादिन्द्रस्यज्ञानप्राप्तिः २५७

भगवान् हरि के गुणों को सुनकर इन्द्र को स्वरूप का ज्ञान हुआ और वैराग्य में अपना मन लगाया और अमरावती में जाकर उसकी सारी दुर्दशा देखी। तब भगवान् देवगुरु बृहस्पति के पास आकर उसने सारी अवस्था सुनाई। बृहस्पति ने इन्द्र को सान्त्वना देते हुए पूर्वजन्म के सुकृत से सम्पत्ति और दुष्कृत से विपत्ति आती है। पहिये की धुरी के समान उत्थान पतन सभी के साथ रहता है। विना भोगे हुए कर्म करोड़ों जन्मतक भी क्षीण नहीं होते उनका भोग अवश्यम्भावी है।

मा भुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥१७॥

सामवेद की कौथुम शाखा में इसका प्रतिपादन श्रीकृष्ण भगवान् ने विस्तार से किया है। कालभेद, देशभेद, और पात्रभेद से कर्मों की न्यूनता और अधिकता होती रहती है; जैसे, सामान्य दिन में विप्र को दान देने से क्षेमफल होता है। अमावास्या, रवि की संक्रान्ति में उसीका सौगुना फल होता है। चातुर्मास्य की पौणमासी को अनन्त फल होता है। सूर्यग्रहण के समय उसी दान का करोड़गुना फल सूर्यग्रहण में उसका दशगुना फल होता है। सामान्य देश में दान का सामान्य फल विशेष देश में जैसे—गंगा देश में दश, सौ और अनन्त गुना फल होजाता है। सामान्य ब्राह्मण को देने से सामान्य फल होता व जितेन्द्रिय पण्डित को देने से लाखगुना फल होता है। जैसे—दण्ड, सूत्र, शराव, जल और चक्र से मिट्टी को लेकर कुम्भ (घड़ा) बनता है यही बात कर्म

पर लागू होती है। जो विपत्ति में भगवान् को भजता है उसे कोई भी भय नहीं विपत्ति भी सम्पत्ति का रूप लेलेती है।

३८ महालक्ष्म्युपाख्यान विष्णुभक्तस्य शुभकथनम् २५१
विष्णुभक्तिहीनस्य लक्ष्मीत्यागः २६१

सभी देवताओं के साथ भगवान् हरि कृष्णस्मरण करते हुए ब्रह्माजी के यहाँ गये और ब्रह्माजी ने सबका अभिवादन कर देवराज इन्द्र से उनके विशेष शुद्ध कुल की प्रशंसा करते हुए यह आपत्ति क्यों आई इसका कारण पूछा क्योंकि जनः पैतृकदोषेण दोषान्मातामहस्य च। गुरोर्दोषान्नीतिदोषैर्हरिद्वेषी भवेद्ध्रुवम्॥ शिवजी ने जिस पुष्प से भगवान् की पूजा की उस पुष्प को महर्षि दुर्वासा ने आपको दिया और आपने उसका अनादर किया। इसलिये दैव से आप वञ्चित होकर कष्टदशा को प्राप्त हुए हो। अब भगवान् श्रीलक्ष्मीपति के सिवा कोई आपकी रक्षा करनेवाला नहीं है अतः वहाँ जाओ। तब ब्रह्मा उन सब देवताओं के साथ इन्द्र को विष्णुलोक में, जहाँ लक्ष्मीजी के साथ वे विराजमान थे, ले गये और सारा वृत्तान्त अथ से इति तक भगवान् विष्णु को निवेदन किया। भगवान् विष्णु ने अभय करते हुए कहा कि जो कोई मेरे भक्त को रुष्ट करता है उसके घर पद्मा के साथ मैं नहीं रहता। जो मेरी भक्ति से दूर है, मेरे नाम को बेचता है और अतिथि सत्कार जहाँ नहीं होता उन गृहस्थों के यहाँ लक्ष्मी नहीं रहती। ब्राह्मण निन्दक, धर्मशून्य, भगवान् विष्णु की भक्ति से हीन मनुष्य से लक्ष्मी कोसों दूर रहती है। सूर्योदय में दो वार खानेवाला, दिनमें सोनेवाला और मैथुन करनेवाले के यहाँ मेरी लक्ष्मी नहीं टिकती। शिवपूजा, देवपूजा, अतिथिपूजा और दुर्गा की पूजा जहाँ होती है वहाँ लक्ष्मी स्थिर होकर निवास करती है। लक्ष्मी को भगवान् ने क्षीरसागर में जन्म लेने की आज्ञा दी और देवताओं ने क्षीरसागर को मन्थन कर चौदह रत्न समेत लक्ष्मीजी को प्राप्त किया।

३९ लक्ष्मीनाशात्पुनस्तत्प्राप्तये इन्द्रेण लक्ष्म्याः पूजनम् २६२

भगवान् हरि के गुणानुवाद सुनकर इन्द्र ने लक्ष्मीजी के ध्यान, स्तोत्र आदि के सम्बन्ध में प्रश्न किया। श्रीनारायण ने देवराज इन्द्र को पूजा प्रकार कहा उसने गणेश, दिनेश (सूर्य), अग्नि, विष्णु, शिव, पार्वती की पूजा की और महालक्ष्मी का आवाहन किया। उन्होंने सहस्रदल पद्म की कर्णिका में निवास करनेवाली महालक्ष्मी भगवती का ब्रह्माजी की आज्ञा से षोडश उपचारों से पूजन किया। इस मूल मन्त्र से भगवती का जप किया। "लक्ष्मीर्माया कामवाणी कमलवासिनी स्वाहा" इस वैदिक द्वादशाक्षर मन्त्रराज से भगवती को प्रसन्न करते ही वे साक्षात् उपस्थित हो गईं। इन्द्र ने गद्गद् अश्रुओं की धारा से महालक्ष्मीजी की सच्चे भाव से स्तुति की। इस देवराज इन्द्र के द्वारा किये गये सिद्ध स्तोत्र का जो तीन सन्ध्या तक प्रतिदिन पाठ करता है वह राजराजेश्वर कुबेर के समान धनी होता है। "पञ्चलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्" एक मास तक इस सिद्ध स्तोत्र का लगातार पाठ करनेवाला महासुखी राजेन्द्र होता है।

४० स्वाहोपाख्यानम् २६७

भगवान् नारायण से इन्द्र के द्वारा वेदोक्त स्वाहा के उपाख्यान पूछने पर उन्होंने कहा। सृष्टि के आदिकाल में देवताओं ने अपने आहार के लिये निवेदन किया। ब्रह्मा उन्हें भगवान् के पास ले गये। भगवान् यज्ञरूप में उपस्थित होकर सभी द्विजों के भक्तिपूर्वक दिये गये हविर्दान को ग्रहण किया। परन्तु वह यज्ञभाग देवताओं को नहीं मिला। फिर वे ब्रह्मा के पास आकर अपनी कष्टकथा सुनाने लगे। ब्रह्मा द्वारा प्रकृति की स्तुति। प्रसन्न हुई प्रकृति ने ब्रह्मा से कहा कि वर मांगो। ब्रह्मा ने कहा कि अग्नि में दाहिका शक्ति तुम्हारी ही है इसलिये तुम्हारे नाम से जो आहुति दे वह देवों को मिले यही प्रार्थना है। स्वाहा का निज अभिप्राय का

प्रगट करना। स्वाहा की पूजा करने का विधान एवं फलश्रुति। स्वाहा के षोड
नामों को पढ़ने से सर्वसिद्धि की प्राप्ति होती है।

४१ स्वधोपाख्यानम् २७

स्वधा के स्थान का कथन। सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा ने सप्त पितरों
उत्पन्न किया तथा उनके लिये श्राद्ध का अन्न एवं तर्पण का जल ही आहार बनाया
क्षुधित पित्रेश्वरों का ब्रह्मा के पास गमन और अपना दुःख प्रकट करना। ब्रह्
द्वारा मानसी कन्या का प्रकट होना। कन्या ने पित्रेश्वरों का दान कर ब्राह्म
के लिये उपदेश किया कि पित्रेश्वरों को स्वधा शब्द के उच्चारण से ही तृप्ति है
स्वधा की पूजा विधि। श्राद्ध समय स्वधा स्तोत्र को पढ़ने का फल। स्वधा स्तो
को सुनने से वेद पठन के समान फल।

४२. दक्षिणोपाख्यानम् २७

दक्षिणास्तोत्रम् २७

दक्षिणा के आख्यान का कथन। गोलोक में सुशीला नाम की गोपि
रहती थी। वह अत्यन्त सुन्दरी एवं गुणवती एवं श्रीकृष्ण को प्रिय थी। सुशी
को देख राधा का कुपित होना। दोनों के विरोध के भय से श्रीकृष्ण का अन्त
र्धान। राधा ने श्रीकृष्ण के वियोग में विलाप करते हुए कहा कि हे श्रीकृष्ण अ
कहाँ गये हैं। स्त्रियों के पति ही एकमात्र देव है जैसे—

पतिर्बन्धुः कुलस्त्रीणामधिदेवः सदागतिः।
परं सम्पत्स्वरूपश्च सुखरूपश्च मूर्तिमान्॥ इत्यादि।

दक्षिणा देवी का गोलोक से गमन। दक्षिणा की तपस्या एवं कमला
शरीर में प्रवेश। ब्रह्मा की प्रार्थना से दक्षिणा का प्रादुर्भाव। उससे किये क
का पूर्ण फल। कर्म कराकर दक्षिणा उसी वक्त दे देनी चाहिये, नहीं देने से मु
भर में दुगुनी हो जाती है। यज्ञकृत दक्षिणा स्तोत्र का वर्णन एवं फल कथन।

४३ षष्ठ्युत्पत्तिवर्णनम् २७८

षष्ठी का उपाख्यान का कथन। षष्ठी देवी की उत्पत्ति प्रकृति के छठे अंश से है। स्वायम्भुव मनु का पुत्र प्रियव्रत राजा था। वह तपस्या में ही लगा रहता था। ब्रह्मा की आज्ञा से राजा ने विवाह किया। राजा को पुत्रेष्टि यज्ञ करने से मृत पुत्र की प्राप्ति। उससे अन्य नारीगण एवं रानी को महा दुःख। तत्पश्चात् विमान का आगमन। राजा को देवी का दर्शन। राजा के द्वारा देवी की स्तुति। प्रसन्न हुई देवसेना द्वारा राजा को पुत्र प्राप्ति। राजा ने देवी की पूजा कर ब्राह्मणों को द्रव्यदान किया। प्रत्येक मास में शुक्ल षष्ठी में राजा द्वारा देवी की पूजा। षष्ठी देवी की स्तुति एवं फल कथन।

४४ मङ्गलचण्ड्युपाख्यानम् २८२

मङ्गलचण्डी का उपाख्यान भी भगवान् नारायण ने कहते हुए बतलाया कि मङ्गल नामक मनु की पूज्य अभीष्ट देवी होने से इसका नाम मङ्गलचण्डी हुआ। सर्व प्रथम भगवान् शङ्कर ने त्रिपुर के वध के अवसर पर विष्णु भगवान् की प्रेरणा से पूजा की। त्रिपुर ने शंकरजी के यान को आकाश से गिरा दिया, उस समय ब्रह्मा विष्णु के उपदेश से दुर्गा की आराधना की और भगवती दुर्गा ने अभय देकर मङ्गलचण्डी नाम से प्रसिद्ध होकर शंकर की सहायता की और विष्णु के दिये हुए अस्त्र से शंकर ने उस दैत्य को मार डाला। शंकरजी पर देवतावृन्द ने पुष्प वृष्टि की। शंकरजी द्वारा मङ्गलचण्डी का मूलमन्त्र चण्डी का स्तोत्र उसका फल कथन।

———

४५ **मनसादेव्युपाख्यानम्** २८

फिर कथाप्रसङ्ग से मनसा का उपाख्यान भी सुनाया। यह कश्यप
मानसी कन्या होने से मनसा नाम से विख्यात हुई। इसने मनसे भगवा
श्रीकृष्ण की तपस्या कर उन्हें प्रसन्न कर वाञ्छित वरदान प्राप्त किया।
नागलोक और पृथिवी में गौरी रूप में, नागेश्वरी और नागभगिनी के रूप
पूजा होती है। यही आस्तिक माता प्रसिद्ध है जो जरत्कारु मुनि की स्त्री थी
मनसा के बारह नामों का फल इससे सर्पों का भय नहीं रहता।

४६ **मनसापूजाविधानम्** २८

इन्द्रकृत मनसास्तोत्रम् २९

मनसादेवी का पूजा विधान। मनसा को पहले कश्यपजी ने जरत्का
मुनि को विना याचना किये ही दे दी। एक दिन सायंकाल पुष्कर तीर्थ में
के मूल में थक कर मनसा की गोद में सिर रखकर ही जरत्कारु सोगये।
लोप न हो इस भय से उसने अपने धर्मनिष्ठ पतिदेव को सन्ध्या के लिये जगा
इसपर जरत्कारु ने नाराज होकर पति का अप्रिय करनेवाली स्त्री को भला-बु
कहा। मनसा ने इसपर कहा कि सन्ध्या के लोप भय से ही आपको जगाया
मुझे आप क्षमा करें और स्वामी के चरणों में लोटकर विलाप करने लगी
जब मुनि सूर्य को शाप देने के लिये तैयार हुए तो स्वयं भगवान् सूर्य ने उपस्थि
होकर क्षमा याचना की और श्रीकृष्ण भक्ति की प्रशंसा कर उन्हें प्रसन्न करलि
अब मनसा को जरत्कारु ने छोड़ दिया परन्तु ब्रह्मा, शंकर और कश्यपजी
समझाने पर जरत्कारु ने, गर्भाधान होने तक मनसा के यहाँ रहना स्वीकार
लिया और योग द्वारा नाभिस्पर्श कर गर्भ धारण करवा दिया। जरत्कार
मनसा को वरदान दिया कि उसकी यह सन्तान तेजस्वी विष्णुभक्त होगी

प्रेम में विह्वल रहेगी यही जनमेजय के नाग यज्ञ में आस्तिक होकर नागों का त्राणकर्ता हुआ। मनसा का स्तोत्र।

४७ सुरभ्युपाख्यानम् २६३

नारद ने गोलोक से आई हुई सुरभी के विषय में पूछा तो नारायण भगवान् ने गोमात्र की अधिष्ठात्री गौओं की प्रधान यह सुरभी गोलोक में प्रधान हुई यह बतलाया। एक दिन राधिकानाथ को राधाजी के साथ क्षीरपान की इच्छा हुई। अपने वाम पार्श्व से लीला से ही भगवान् ने सुरभी वत्सयुक्त उत्पन्न की और सुदामा ने उसका दूध रत्नभाण्ड में दूह लिया वही भगवान् ने पी लिया और भाण्ड के उलट जाने से उसका क्षीरसरोवर प्रसिद्ध हो गया। वही भगवान् की कृपा से लक्षकोटि गायें हो गईं उनसे संसार धारण किया जाता है। उनका मूल मन्त्र पूजा और स्तोत्र।

४८ राधिकाख्यानम् २६५

प्राचीनकाल में गोलोक में रासमण्डल में मालती मणिका के वन में भगवान् श्रीकृष्ण रत्नसिंहासन में विराजमान थे। उन्हें रमण करने की इच्छा हुई। तब भगवान् के दो स्वरूप हुए दक्षिणाङ्ग में कृष्ण और वामाङ्ग में राधिकाजी का आविर्भाव हुआ। भगवती राधा सम्पूर्ण मुक्तियों को देनेवाली है। वही महालक्ष्मी और गृहलक्ष्मी रूप में सर्वत्र विराजमान है। वही राधा सुदामा के शाप से गोलोक से पृथिवी पर आगईं। वृषभानु के गृह में जन्म लिया उनकी माता का नाम कलावती थी।

४९ हरगौरीसम्वादे राधोपाख्यानम् २६८

भृत्य ने किस प्रकार राधा को शाप दिया इसपर भगवान् नें विस्तार से सारी कथा समझाई। भगवान् गोलोक में राधिकाजी के साथ रास क्रीड़ा में

लगे हुए थे। उसी समय सुरत के आनन्द में राधिका को चार दूतियों ने जगा
और क्रोधित हो राधिका ने हरि को छोड़ दिया। श्रीकृष्ण भी उसी सम
तिरोधान हो गये और मर्त्यलोक में सरिद्रूप से अवतीर्ण हुए। जब श्रीकृष्ण
आठ गोपों के साथ अपने घर आये तो उन्होंने राधिका को नहीं देखा औ
अन्तःपुर में गये। वहाँ पर श्रीकृष्ण को राधिकाजी ने फटकारा और बदले
सुदामा ने उसी समय राधा की भर्त्सना की। तब राधा ने सुदामा को दै
होने का शाप दिया। आगे शंखचूड़ रूप में तब तुलसी के पति के रूप में सुदा
हुआ और वृषभानु के यहाँ राधा ने जन्म लिया। भगवान् श्रीकृष्ण ने पृथ्
के भार को हलका करने के लिये अवतार लेने पर वृन्दावन में सुन्दर रास द्वा
राधा की आह्लादिनी शक्ति का अलौकिक चमत्कार संसार को दिखाया।

५० सुयज्ञोपाख्यानम् ३०

पार्वतीजी के प्रश्न करने पर कि सुयज्ञ नामक राजा कौन था उस
भगवान् श्रीकृष्ण की ह्लादिन्नी शक्ति राधा को विप्र शाप से शप्त होकर भी प्रा
किया जिनके दर्शनों के लिये भगवान् ब्रह्मा को भी ६० हजार वर्ष तक पुष्करक्षे
में उनकी चरणकमलों की रेणु में तप करना पड़ा था। हे शंकरजी आपलो
भी जिनके दर्शन नहीं कर सकते उनको इस महालक्ष्मी का दर्शन कैसे हुआ
भगवान् शंकरजी ने स्वायम्भुव मनु और शतरूपा से आरम्भ कर उत्तानपा
उसके पुत्र ध्रुव और उसका पुत्र उत्कल जिसने पुष्कर में हजारों राजसूय य
कराये उसीने सम्पूर्ण धन रत्न आदि प्रसन्न होकर ब्राह्मणों को दे दिये इस शोभ
यज्ञ को देखकर सुरसंसद् में सुयज्ञ को उच्च स्थान दिलाया। वही सुयज्ञ रा
अन्नदाता, रत्नदाता और सम्पूर्ण सम्पत्तियों को देनेवाला तथा दशलाख गायों
सींग पर रत्न बांधा उन्हें सामग्री से सजाकर दक्षिणा समेत ब्राह्मणों को देता था
उसे इन बड़े भारी दानों को देने पर भी तृप्ति नहीं होती थी। इस प्रकार धर्मजीव

बिताते हुए उसके पास एक दिन मलिन वस्त्र पहने कण्ठ, ओष्ठ और तालु जिसके तृषा से व्याकुल होनेसे सूख गये हैं, ऐसे ब्राह्मणदेव आये और प्रसन्न चित्त से उन्हों ने सुयज्ञ को आशीर्वाद दिया। राजा ने उसे प्रणाम अवश्य किया परन्तु अभिवादन के लिये थोड़ासा भी खड़ा नहीं हुआ न सभासद ही खड़े हुए उलटे हँसे। इसपर मुनिदेवगण को नमस्कार कर उस द्विजराज ने क्रोध से राजा को शाप दिया कि हे पामर! यहाँ से दूर जाओ और राज्य से च्युत हो जाओ। साथ ही गलत्कुष्ठवाली बुद्धि हो तथा अस्थिर चित्त होओ। जैसे ही उसने सभासदों को, जो हँसे थे उनको शाप देना चाहा तो सबने परिहार किया और ब्राह्मण देवता शान्त हो गये। फिर राजा ने अपनी ओर से क्रोध शान्त करने की प्रार्थना की और सभा से जानेवाले उस ब्राह्मण को सभी मुनियों ने समझाने का प्रयत्न किया।

५१ नृपमुनिसम्वाद ३०४

ब्राह्मण को सनत्कुमार ने कहा कि राजा आपके शाप से भ्रष्टश्री हो गया है। आप आशुतोष हैं उसपर कृपा कीजिये। आप अतिथि रूप में आये। आपका राजा के द्वारा स्वागत होना चाहिये। पुलस्त्य ने राजा का दोष बताकर उसे क्षमा करनेको कहा। पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, मरीचि, कश्यप, प्रचेत्, दुर्वासा ने अतिथि, ब्राह्मण, देवता, गुरु आदि को अभिवादन न करनेवाले का अपराध क्षमा योग्य नहीं होता ऐसा कहा। फिर भी आप हम सब के कहने से इसका अपराध क्षमा करें और आतिथ्य ग्रहण करें। राजा ने गोघ्न, स्त्रीघ्न, कृतघ्न, गुरुस्त्री-गामियों और ब्रह्मघ्न लोगों को क्या दोष लगता है इस तरह प्रश्न किया। इसके लिये वशिष्ठ ने गोहत्यारे को एक वर्ष तक तीर्थों में घूमकर और जौ के ही अन्न से अपना गुजारा करे और हाथ से जल पीये ऐसा बताया। सौ गायों को दक्षिणा समेत दान करने से उस पाप से छुटकारा हो जाता है। शुक्राचार्य ने गोहत्या से

दुगुना पाप स्त्रीहत्या में कहा है। बृहस्पति ने स्त्रीहत्या से दुगुना पाप ब्रह्मह में कहा। कृतघ्न उससे चारगुना पापी है। फिर राजा ने कृतघ्नों के भेद पू ऋष्य शृङ्ग ने एक प्रकार के कृतघ्न सामवेद के अनुसार बतलाये फिर कात्या सनन्द सनातन ने कृतघ्नों के सम्बन्ध में विस्तार से समझाया। शूद्रान्न भोज उनके शव जलाने, और शूद्र स्त्री गमन के दोष पूछे तब पराशर, जरत्का सारी बातें विस्तार से बताकर उपरोक्त दोषों से सदा बचने को कहा। भरद्वा और विभाण्डक ने शूद्रों का शव दाह करनेवाले और शूद्रों के यहां पितृश्राद्ध भोजन करनेवालों को कृतघ्न बतलाया है। उन्हें देव और पितृकार्यों को करने अधिकार नहीं रहता।

५२ हरगौरीसंवादे कर्मविपाकवर्णनम् ३०

पार्वतीजी ने कृतघ्नों के अन्य-अन्य कर्मफलों के सम्बन्ध में पूछा, महेश्वर ने नारायण, नारद, देवल, जैगीषव्य, वाल्मीकि, आस्तिक आदि महर्षि ने कृतघ्न पुरुषों के कर्म विपाक बताकर कभी भी कृतघ्न न बनने को कहा अं राजा से ब्राह्मण को प्रणाम करने के लिये कहा और घर जाकर तपस्या कर आनन्द से ब्रह्मशाप से छूटकर कृतकृत्य हो जाओगे। यह कह सब बिदा हो ग

५३ सुतपः सुयज्ञसम्वादवर्णनम् ३१

पार्वतीजी के महेश्वर को इसके बाद क्या हुआ ऐसे पूछने पर महेश्वर ने क कि निन्दाग्रस्त राजा वशिष्ठजी के द्वारा प्रेरित होकर ब्राह्मण के पैरों पर क्षमा याच के लिये दण्डवत् गिर गया और ब्राह्मण ने क्रोध को त्यागकर आशीर्वाद दिय इसपर राजा ने आंखों में आँसू भरकर हाथ जोड़कर ब्राह्मण से उसके विप का सारा हाल पूछा और कहा कि आप अपना राज्य, कोष, अपने नौ चाकर पुत्र और स्त्री को अपने अधिकार में कर लीजिये और मुझे अपना नौ

रख लीजिये। ब्रह्मा के पुत्र मरीचि और उसके पुत्र कश्यप हुए। कश्यप के पुत्रों ने देवत्व प्राप्त किया। उनमें महाज्ञानी त्वष्टा हुए जिन्हों ने दिव्य हजार वर्षों तक पुष्कर में तपस्या की। उन्होंने ब्राह्मणार्थ देवदेव भगवान् हरि की पूजा की। भगवान् से वर पाकर उनके तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। इसका नाम विश्वरूप रखा, विश्वरूप अतीव कीर्तिशाली थे। उसके विरूप मेरे पितृपाद हुए उनमें सुतपा नामवाला वैरागी मैं हुआ। मेरे गुरुदेव महादेव हैं, जिनके अभीष्ट देव सर्वात्मा श्रीकृष्ण प्रकृति से परे हैं। मुझे तो उनके चरणकमलों की चिन्ता है किसी सम्पति की परवाह मैं नहीं करता। मुझे सभी मुक्तियाँ, ब्रह्मत्व या अमरत्व उन भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में भक्ति के विना मिले तो मैं उन्हें सहर्ष छोड़ दूँगा। संसार के बड़े-से-बड़े अधिकार मुझे जलविम्ब के समान मिथ्या मालूम होते हैं। मुनियों का आपके यहाँ आना सुनकर उनसे विष्णु भक्ति का आनन्द लूटने को मैं आया था। मुझे शाप न देकर तेरा हित ही साधन किया गया है। हे राजन् अब विशेष विलम्ब मत करो, घर के सभा उत्तरदायित्व वेटे को सौंपकर बाहर हो जाओ और भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों में ध्यान लगाओ क्योंकि वही परम तत्व है वाकी तो ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्त मिथ्या है। भगवान् की ही माया से ब्रह्मा, विष्णु और महेश सृष्टि को रचते, पालते और संहार करते हैं। समय पर वर्षा होती है काल, अग्नि आदि पाक करते हैं। प्रति ब्रह्माण्ड में सृष्टि की यह क्रिया चालू है। भगवान् श्रीकृष्ण के लोमकूपों में ही ब्रह्माण्डों के ब्रह्मादि समाये हुए हैं। महान् विराट् क्षुद्र विराट् सभी भगवान् कृष्ण की अनुगामिनी प्रकृति के आधार से चलते हैं, वही सब की बीजरूपा है। काल की अखण्ड साधना से ही वे भगवान् श्रीकृष्ण में लीन होते हैं। इस प्रकार सभी कालभीत होकर आविर्भूत और तिरोभूत होते हैं। इसी भांति महेश द्वारा दिये गये सारे दुर्लभ महा ज्ञान को बतलाया।

———

राजा ने महाविष्णु का आधार और क्षुद्र विराट् ब्रह्मा और प्रकृति, इन्द्र, सूर्य और चन्द्रमा की आयु का मान पूछा और कहा कि सम्पूर्ण विश्वों के कौनसा लोक है उसे मुझे समझाइये। सम्पूर्ण विश्वों का गोलोक आकाश के स व्यापक सदा डिम्ब रूप श्रीकृष्ण की इच्छा से समुद्भूत श्रीकृष्ण के मुख विन्दु से परिपूर्ण यह गोलोक महाविष्णु का मूल है। यह राधेश्वर श्रीकृष्ण षोडशांश कहा गया है। विष्णु से ऊपर नित्य वैकुण्ठ है यह भी आकाश समान निःसीम है। यहाँ नारायण भगवान् चतुर्भुज रूप में निवास करते गोलोक गोलोक है और सुन्दर-सुन्दर रत्नमाणिक्य से जड़े गृह महलों से शो है भगवान् के पार्षद, गोप गोपियाँ वहां पर रहते हैं। शिशुरूप में गोप वेषधारी भगवान् श्रीकृष्ण अपनी रासेश्वरी राधिकाजी के साथ रहते हैं। प्रकार वैकुण्ठ और गोलोक का वर्णन कर दण्ड, मुहूर्त, घड़ी, दिन, सप्ताह, मास, वर्ष, उत्तरायण और दक्षिणायन, इनका निरूपण किया गया। फिर कृत त्रेता, द्वापर और कलियुगों के परिमाण वतलाये। मन्वन्तर आदि का व किया। आद्यमनु ब्रह्माजी के पुत्र मनु हुए शतरूपा उनकी धर्मपत्नी वह सब गु से युक्त हुआ। उसने बड़े-बड़े अश्वमेध, नरमेध और गोमेध यज्ञ किये भगवान् शंकर दुर्लभ कृष्ण मन्त्र को प्राप्त कर श्रीकृष्ण का दास्य पाकर गोलो चले गये। अपने पुत्र स्वायम्भुव के इस प्रकार मुक्त होने पर ब्रह्माजी बहुत प्र हुए। उसके प्रियव्रत हुआ प्रियव्रत के बाद दो मनु विष्णुभक्ति परायण इसके पाँचवां मनु रैवत छठा चाक्षुष मनु, सातवां परमभागवत सूर्य का पुत्र श्राद्ध हुआ। आठवां सूर्यपुत्र सावर्णि हुआ, नवम दक्षसावर्णि हुआ, दशम ब्रह्मसाव हुआ, ग्यारहवां धर्मसावर्णि और वारहवां रुद्रसावर्णि, तेरहवां देवसावर्णि चौदहवां चन्द्रसावर्णि हुआ। जवतक मनु और इन्द्रों की आयु है

ब्रह्मा का दिन उतने ही समय तक ब्रह्मा की रात्रि है। ब्रह्मा का दिन क्षुद्रकल्प कहा जाता है। ब्रह्मा ने रात बीतने पर फिर सृष्टि की रचना की इस ब्रह्मनिशा को क्षुद्रप्रलय कहा जाता है। ऐसे ३० दिन रात तक ब्रह्मा का मास कहा जाता है। कालरात्रि का वर्णन पहले आया है। १२ मास का एक ब्रह्मा का वर्ष और १५ वर्ष के बाद फिर प्रलय होता है यही मोहरात्रि वेदों में कही गई है। ब्रह्मा के निपात के बाद महाकल्प होता है वही महारात्रि कही जाती है। प्रकृति का निमेषकाल भी यही होता है निमेष के अन्त में श्रीकृष्ण की इच्छा से सृष्टि का निर्माण होता है। श्रीकृष्ण निमेष रहित हैं और श्रीकृष्ण में ही सारी प्रकृति आकर युगों के बाद लीन होती है तब उसे प्राकृतिक लय कहते हैं। सम्पूर्ण प्राणियों का संहार कर वह स्वयं कृष्ण के वक्षस्थल में लीन हो जाती है वही मूल प्रकृति और ईश्वरी है इसे ही दुर्गा, नारायणी और सनातनी कहते हैं। इसीमें भी सबकुछ समाया है यह ईश्वर में समाई है। सभी क्षुद्र वैष्णवमय हैं विष्णु में लीन हैं महाविष्णु प्रकृति में और वही परमात्मा में लीन है। प्रकृति योगनिद्रारूप में श्रीकृष्ण के नेत्रों में इस इच्छा से अधिष्ठान करने लगी। प्रकृति का एक दिन का जितना काल है उतने समय तक वृन्दावन में श्रीकृष्ण की निद्रा होती है यही लयकाल है। उनके जागने पर सर्व सृष्टि होती है उनका वन्दन, स्मरण, ध्यान, अर्चन, कीर्तन और उनके गुणों का स्मरण महापातक नाशन है। इसके बाद यज्ञ के द्वारा भगवान् शिव का प्राकृतलय के समय में लीन होने पर भी मृत्युञ्जय नाम कैसे हुआ यह पूछने पर सुतपा ने सारा सृष्टिक्रम विस्तार से बतलाया।

ब्रह्मा के वय के अन्त में मृत्युकन्या जलबिम्ब के समान नष्ट हो गई यह सब लोकों की संहर्त्री है और ब्रह्मादिको अपने में समेट लेती है। भगवान् शंकर ने मृत्युकन्या को जीता न कि शम्भु को मृत्यु ने। पुण्य वृन्दावन में कृष्ण ने प्रलयकाल में अपने वामांश से उत्पन्न राधिका में गर्भाधान किया। ब्रह्मा के उम्रपर्यन्त राधा

ने गर्भ धारण किया तब गोलोक में उस डिम्ब को जन्म दिया फिर दुःखी हो
से उस डिम्ब को विश्वगोलोक में भेजा अपने पुत्र को इस प्रकार छोड़के
बार-बार महादेवी राधा रोने लगी। श्रीकृष्ण ने उसे कई प्रकार योग
समझाया। उस डिम्ब से सबका आधार महाविराट् हुआ। इस प्रकार स
सृष्टि का वर्णन सुनकर सुयज्ञ राजा कृतकृत्य हुआ और भगवान् शंकर की शर
जाने के लिये गुरुजी के विषय में पूछने लगा। भगवान् कृष्ण की भक्ति से ही श
भगवान् की प्राप्ति हो जाती है। इसके बाद राजा को सुतपा ने राधाजी
पूजा विधान, स्तोत्र, कवच, मन्त्र और सामवेदोक्त ध्यान बतलाया। इसे
तपस्या के लिये भेज दिया। सब को विलाप करते छोड़ राजा वन में तप
चला गया। एक सौ दिव्य वर्ष तक उसने परम मन्त्र का जप करते हुए
तपस्या की। तब रथ में विराजती हुई परमेश्वरी को देखा उनके दर्शनमा
ही वह निष्पाप हो गया। सुतपा मनुष्य का शरीर छोड़कर दिव्य मूर्ति धारण
देवीजी के विमान से ही गोलोक चला गया। उसने वहाँ सभी अलौकिक दि
मूर्तिसम्पन्न गोप गोपीवृन्द से घिरे हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र परब्रह्म को दे
उन्हें देख राजा ने तुरन्त रथ से उतरकर अश्रु गद्गद् नेत्र से प्रणाम किया
परमात्मा ने अपना दास्य प्रदान किया तथा इच्छित वर से राजा कृतकृ
गया। श्रीराधामाधव भगवान् का स्मरण करनेवाला सदा ही उनका भक्त हो
आनन्द लाभ करता है।

५५ राधिकोपाख्याने राधापूजास्तोत्रम्

भगवान् शंकरजी ने पार्वतीजी के पूछने पर बताया कि श्रीकृष्ण
मेरे रहते राधा मन्त्र को ही क्यों ग्रहण किया। इसका कारण यह था कि
मन्त्र से अति शीघ्र सिद्धि मिल जाती है। इस प्रकार राधिका मन्त्र की
देकर ध्यान, पूजा, जप का प्रकार बताकर भगवान् शंकर ने राधाजी की

कही। फिर श्रीकृष्ण और राधिका के वार्तालाप के रूप में श्रीकृष्ण द्वारा राधाजी के रूप, गुण और प्रभाव का दिव्य वर्णन। इस राधा गुणाख्यान के द्वारा सभी दक्षकन्या परमात्मा को मिलीं व सावित्री ब्रह्मा को। इसका प्रतिदिन पाठ करनेवाला पुत्रार्थी पुत्र पाता है और रोगी रोगमुक्त हो जाता है। कार्तिक की पूर्णिमा को राधा की पूजा कर पढ़नेवाले को अचल लक्ष्मी और राज्यश्री मिलती है। स्त्री सुननेवाली स्वामी के सौभाग्य को पाती है। इस स्तोत्र को भक्ति से सुननेवालों को बन्धन से छुटकारा होता है और अन्त में गोलोक में परमपद प्राप्त करता है।

५६ राधाकवचवर्णनम् ३२९

भगवती पार्वती ने राधापूजा विधान सुनकर शंकरजी से राधाकवच के विषय में पूछा और भगवान् शंकर ने कवच की महिमा बतलाकर उसके पाठ का फल बताया। जगन्मङ्गल इस कवच का प्रजापति ऋषि है। रासेश्वरी देवी स्वयं गायत्री देवी हैं श्रीकृष्णभक्ति सम्प्राप्ति का विनियोग है। इस कवच को सब प्रकार से गोपनीय रखना चाहिये। सभी को भगवती राधा के स्तोत्र का जप करने से सबसे उच्च पद प्राप्त होता है।

५७ दुर्गोपाख्यानम् ३३२

भगवती राधा के १६ नामों का विस्तार से वर्णन। इन १६ नामों की प्रथम सृष्टि के आदि में गोलोक में रासमण्डल में पूजा की गई। फिर मधुकैटभ से डरकर ब्रह्मा ने, फिर त्रिपुरारि भगवान् शंकर ने त्रिपुर से प्रेरित होकर फिर दुर्वासा के शाप से भ्रष्टश्री होकर महेन्द्र ने पूजा की और भगवती ने सम्पूर्ण आधिदैविक, भौतिक एवं दैहिक पापतापों से संसार का उद्धार किया। दूसरे कल्पों में सुरथ राजा और मेधस के शिष्य समाधि वैश्य ने वेदोक्त प्रकार से राधाकवच

के द्वारा भगवती की मृण्मयी मूर्ति बनाकर पूजा की। राजा और वैश्य
यथेच्छित वर दिया। राजा अपने खोये हुए राज्य पाकर राजपाट करने
और वैश्य अपना शरीर त्यागकर गोलोक में भगवती दुर्गा के वर से
गया। वह नाना भोग भोगकर दूसरे कल्प में सावर्णि मनु हुआ।

५८ दुर्गोपाख्याने तारोपाख्यानम्

सुरथ, समाधि और मेधस ऋषि के सम्बन्ध में नारद के पूछने
नारायण ने अत्रि के पुत्र चन्द्रमा से बुध तारा में उत्पन्न हुए। बुध के पुत्र
और चैत्र का सुरथ हुआ। नारद ने बृहस्पतिजी की पत्नी तारा में चन्द्रमा
कैसे बुध हुए इस व्यतिक्रम का कारण पूछा। इस प्रकार कामयौवनो
चन्द्रमा द्वारा आसक्त होकर तारा के साथ सम्भोग बलात्कार से ही
बताया। तारा ने बहुत रोका परन्तु लम्पट अपने दुराग्रह से नहीं माना
शुक्र ने चन्द्रमा को सत्यमार्ग बताया और विप्रपत्नीगमन में महापातक बतलाया
फिर शुक्र ने चन्द्रमा को अपने तपोबल से शुद्ध किया। बहुतसे महापातकों
का चन्द्रमा के गुरुपत्नी के साथ अनुगमन करने के महापातकों का वर्णन। शुक्र
द्वारा चन्द्र को शुद्ध करने पर तारा को समझाबुझाकर बृहस्पति के पास भेजा

५६ बृहस्पतेस्तारान्वेषणाय शिवप्रेषणम्

तारा के नदी से स्नान करके आने में विलम्ब होते देख बृहस्पतिजी
बहुत अधिक चिन्ता हुई उन्होंने अपने शिष्य को ताराको खोजने के लिये
नदी के किनारे भेजा। चन्द्र के इस दुःसाहसपूर्ण निन्दित कर्म की सूचना
बृहस्पति को मिली तो वे मूर्छित हो गये और फिर चेतना पाकर अपने
उद्गार शिष्यों को कहने लगे।

स्त्री विना घर वन के समान है। जिस घर में सती स्त्री प्रिय बोलने

पतिव्रता न हो वह घर वन है। जिसकी पतिसाध्वी पतिव्रता को दैवने हर लिया उसका घर वन के समान है।

यस्यमातागृहेनास्ति गृहणी वा सुशासिता। अरण्यंतेनगन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम्
प्रियाहीनं गृहं यस्य पूर्णं द्रविणबन्धुभिः। अरण्यंतेनगन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम्॥
भार्याशून्यावनसमाः सभार्याश्च गृहा गृहाः। गृहिणी च गृहं प्रोक्तं न गृहंगृहमुच्यते

अशुचिः स्त्रीविहीनश्च यथा मन्दो हुताशनः।
प्रभाहीनो यथा सूर्यः शोभाहीनो यथा शशी॥
शक्तिहीनो यथा जीवो यथात्मा च तनुं विना।
विना ऽऽधारं यथाऽऽधेयो यथेशः प्रकृतिम्विना॥

न च शक्तो यथा यज्ञः फलदां दक्षिणाम्विना। कर्मणांचफलं दातुं सामग्रीमूलमेवच

विनास्वर्णं स्वणकारो यथाशक्तः स्वकर्मणि।
भार्याः मूलाः क्रियाः सर्वाः भार्यामूलागृहास्तथा॥

भार्या मूलं सुखंसर्वं गृहस्थानां गृहे सदा। भार्यामूलः सदा हर्षो भार्यामूलश्चमङ्गलम्
भार्यामूलश्चसंसारो भार्यामूलश्च सौरभम्। यथा रथश्च रथिनां गृहिणांच्च तथा गृहम्

यथा जलं विना पद्मं पद्मं शोभा विना यथा।
तथैव च गृहसुखं गृहिणां गृहिणीम्विना॥

गृह की लक्ष्मी न रहने से संसार में सबकुछ सूना है क्योंकि देव, पितर और सभी माङ्गलिककार्यों में उसकी आवश्यकता रहती है। इस पर बृहस्पति ने जी को अपना भाव कहा और इन्द्र ने तुरन्त तारा को लानेकी बात कहकर उसके लिये प्रयत्न करने लगे। वे दोनों ब्रह्मा के पास गये और ब्रह्मा ने उन्हें गुरुरूप में उपदेश दिया और तारा के गर्भ को शुद्ध करने के लिये सनत्कुमार भगवान् ने उसका व्रत करवाया। इससे प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण ने तारा के सामने आकर इच्छित वर प्रदान किया।

शिवजी के पास जाकर बृहस्पति ने क्या कहा इसका उत्तर नाराय दिया कि शंकर के पास जाते ही बृहस्पति का अभिवादन किया गया और आसन पर बैठाकर सारी बातें पूछी गईं । शंकर ने उनके शोक का कारण कहा दैवदोष से तपस्याहीन हो गई कि सन्ध्याहीन हो गये ? क्या भगवान् श्री में भक्ति नहीं रही क्या अतिथिसेवा नहीं हुई ? आपके शिष्य इन्द्र देवरा और गुरु भगवान् वशिष्ठ हैं। सन्तजन पर प्रशंसक होते हैं ।

पुत्रेशशंसितोये च समृद्धे च पराक्रमे । ऐश्वर्ये वा प्रतापे च प्रजाभूमिधनेषु

वचनेषु च बुद्धौ च स्वभावे च चरित्रतः ।
आचारे व्यवहारे च ज्ञायते हृदयं नृणाम् ॥२१॥
यादृग्येषां च हृदयं तादृक् तेषां च मङ्गलम् ।
यादृग्येषां पूर्वपुण्यं तादृक् तेषां च मानसम् ॥२२॥

अतः आप इसका कारण बतलाइये । बृहस्पति ने कर्मवश की बात क अपना आत्मनिवेदन किया । इसपर शंकर ने वैष्णवभक्तों का कष्ट स्वयं श्री दूर करते हैं बता भगवान् श्रीकृष्ण के भक्तों की प्रशंसा की। भगवान् शंकर श्रीकृष्णभक्त बृहस्पति को लक्ष्मी माया का कामबीज प्रदान। बृहस्पति भगवान् श्रीकृष्ण में मन लगाने की बात कहना। इन्द्र के द्वारा भगवान् के यहां जाकर सारी बात कहकर तारा को प्राप्त करने का उपाय ।

६१ ब्रह्मणः शुक्रगृहेगमनम्

गुरुपत्नी के लिये शुक्राचार्य के यहाँ ब्रह्मा का जाना। शुक्र ने ब्रह्म आते देखकर उनकी स्तुति की और अभिवादनपूर्वक सत्कार किया और ब्र आने का कारण पूछा। ब्रह्मा ने शुक्र से गुरुपत्नी तारा को चन्द्रमा द्वारा हरने की कही और उसका पक्ष भी शुक्राचार्य ले रहे हैं। अतः मैं देवताओं की ओर से कहने आया हूं कि या तो तारा को दो या कामी चन्द्र को छोड़ो।

शङ्करजी को छोड़कर सभी देववृन्द को खुला आह्वान किया कि वे युद्ध करें। ब्रह्मा ने फिर कहा कि भगवती काली और शिव के पार्षद वीरभद्रादि तथा कालाग्नि रुद्र तथा राधा कवच कण्ठवाले श्रीविष्णु के युद्ध में आते ही तुम दैत्यों में कौन उनके सामने टिक सकेगा।

प्रह्लाद ने ब्रह्माजी को विनय से प्रत्युत्तर दिया कि अवश्य ही भगवान् विष्णु मधुकैटभ और हिरण्यकशिपु को मारनेवाले हैं फिर भी वह परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण की ही कला हैं। वही सबके अन्तरात्मा अपने सुदर्शनचक्र से हम सभी की रक्षा करते हैं। उनसे तो कोई भी बलवान् नहीं कहा जासकता। मैं श्रीकृष्ण की शरण में होकर सभी को युद्ध के लिये आह्वान करता हूं। भगवान् की कृपा का ही सारा बल है। यदि मेरे पिता मरे तो वे विष्णु की निन्दा से। शंखचूड़ निर्बन्ध (अभिमान से) मधुकैटभ झूठे दर्प से। त्रिपुर तो हमारा सेवक था फिर भी शंकर प्रेरित वह मरा था। तब ब्रह्मा ने दोनों पक्षों को युद्ध से शक्ति, बल और सैन्य का दुरुपयोग बतलाकर दैत्यराज प्रह्लाद से तारा की भिक्षा मांगी और विमुख भिक्षुक के जाने पर गृहस्थ भी पापों का भागी होता है यह कहा। फिर सनत्कुमार, सनन्दन, सनक और ऋषियों ने भी बृहस्पति की स्त्री तारा को लौटाने की धर्मसङ्गत मांग की। इसपर प्रह्लाद ने शुक्राचार्य से ही वह कार्य हो सकता है, यह बताकर उन्हीं के पास जानेको ब्रह्मादि देवगण और ऋषि मुनियों को सत्परामर्श दिया। तब सब शुक्रजी से प्रार्थना करने लगे और उन्होंने तारा तथा चन्द्र को लौटा दिया। प्रह्लाद सभी ब्रह्मादि देवगण व मुनिवृन्द को प्रणाम कर घर लौट आया। इधर चन्द्रमा तथा तारा दोनों ही ब्रह्माजी के चरणों पर गिर पड़े। चन्द्रमा को अपनी भूल स्वीकार करने पर ब्रह्मा ने क्षमापूर्वक गोद में उठा लिया और कृपालु ब्रह्माजी ने कहा हे तारे अब डरो मत तुम सौभाग्ययुक्त बनोगी क्योंकि प्रायश्चित्त ही दुर्बलों का जो बलीजन से डरी गई एकमात्र उपाय है।

दुर्वला वलिनाग्रस्ता निष्कामात्प्रच्युता भवेत् ।
प्रायश्चित्तेन शुद्धा सा न स्त्री जारेण दुःष्यति ॥
सकामा कामतो जारं भजते स्वसुखेन च ।
प्रायश्चित्तान्न शुद्धा सा स्वामिना परिवर्जिता ॥

उन्होंने उसके गर्भ की स्थिति किस से हुई यह पूछा तो तारा ने चन्द्र को उसका कारण वतलाया । इसके वाद तारा ने सुन्दर कुमार को जन्म दि और चन्द्रमा उसे लेकर ब्रह्माजी को प्रणाम कर चला गया । ब्रह्माजी तारा देवगुरु बृहस्पतिजी को देकर तथा देवगण को अभय दान कर अपने भवन सि के तट पर चले गये ।

एक वार वुध ने युवक होने पर घृताची के गर्भ से उत्पन्न कुबेर की कन्य चित्रा को नन्दनवन में देखा । यह बारह वर्ष की यौवन के उद्गम अवस्था थी । उस चन्द्रमा के पुत्र वुध ने उसे गान्धर्व विधि से ग्रहण कर एकान्तस्थान उसमें वीर्याधान कर दिया । उसके चैत्र नामक पुत्र हुआ जो धर्मात्मा, प्रताप दानी हुआ । चैत्र को राज़ाधिरथ उसके सुरथ हुआ इसी सुरथ ने वैश्यसमा के साथ भगवती दुर्गा की सरिता के किनारे पूजा की थी । यह वैश्य धर्मात्म जयी और क्रिया कुशल था परन्तु दुर्दैव से धन के लोभ में आकर स्त्री पुत्रा सभी ने इसे घर के वाहर निकाला । भगवती दुर्गा के ध्यान से यह फिर समृद्धि शाली हुआ । राजा को मनुत्व और निष्कण्टक राज्य मिला ।

६२ राज्ञः सुरथस्य वैश्यसमाधेश्च विवरणम् ३५

राज़ा को मेधसं मुनि से ज्ञान प्राप्ति और वैश्य को मुक्ति कैसे मि नारदजी के इस प्रश्न के उत्तर में नारायण ने कहा कि ध्रुव का पौत्र उत्कल पुत्र नन्दि महा प्रतापी था । उसने सुरथ राजा के देशों पर अधिकार लिया । जब सुरथ अकेला रह गया तो वह रात्रि में घोड़े पर चढ़कर

जङ्गल में निकल गया। पुष्पभद्रा नदी के तट पर उसने वश्य को देखा और उनमें गहरी मित्रता हो गई। पुष्कर क्षेत्र में वैश्य के साथ राजा मेधस ऋषि के आश्रम में गया। वहां अपने आश्रम में शिष्यवृन्द को उन्होंने दुर्लभ ब्रह्मतत्त्व समझाते हुए देखा। राजा सुरथ और वैश्य समाधि ने मुनिको प्रणाम किया। मुनि ने उनको शुभाशीर्वादपूर्वक अभिवादन किया और उनको कुशल प्रश्न पूछा तो राजा ने अपना राज्य निष्कासन का वृत्तान्त वतलाया और राज्य प्राप्ति का उपाय पूछा और वैश्य के सम्बन्ध में वतलाया कि वह वैश्य धन के लोभी स्त्री पुत्रादि से निकाला गया है। क्योंकि प्रतिदिन अपने उपार्जित धन में से वह अपने स्त्री पुत्रादिकों के मना करने पर भी खूब रत्न, मणिमाणिक्य प्रतिदिन ब्राह्मणों को दिया करता था। जब उन वेटे, पोते, भाई वन्धुओं ने इसे खोजकर घर जाने को आग्रह किया तो यह ज्ञान पाकर ऊँचा वैराग्य का अभ्यास करने का दृढ़ निश्चय कर भगवान् में भक्ति करने का उपाय ढूँढ़ रहा है। वाद में इसके पुत्र भी अपने पिता के वियोग में शोक से दुःखी होकर वन में जाकर वैरागी हो गये। अव इसे निष्काम भगवान् का दासत्व मिले ऐसा उपाय वतलाइये। मेधस ने भगवती कृपामयी कृष्ण की विष्णुमाया का चमत्कारपूर्ण प्रभाव वताकर उन्हीं की कृपा से कृष्णभक्ति का आनन्द लाभ हो सकता है यह सिद्धान्त कहा। नाना जन्मों के वाद शंकर की भक्ति से विष्णु भक्ति का और विष्णुभक्ति से निर्गुण कृष्ण की भक्ति के सवल मार्ग का रहस्यपूर्ण वर्णन कर श्रीमेधस ने कृष्णभक्त से ही कृष्ण मन्त्र को लेकर अपना मार्ग प्रशस्त करने को कहा। भगवान् की भक्ति दो प्रकार की है एक विवेचना और दूसरी आवरणी। प्रथम भक्त को दी जाती है और दूसरी आवरणी से सारा जगत् लीला नाटक के सूत्रधार से संचालित होकर अपना भाग ग्रहण करता है। मैं भी भगवान् शंकर से कृष्णभक्ति का ज्ञान लेकर अपना जन्म सफल करने में लगी हूं। जाओ भगवती की आराधना करो। नदी तीर पर जाकर वही तुम्हें कामनांपूर्ण

आवरणी बुद्धि देगी जिससे सब ठीक हो जायगा। निष्काम वैश्य को भगवती विवेचना शक्ति देगी जिससे उसे भगवती के चरणों का सहज ही लाभ होगा। इसपर उन दोनों ने दुर्गास्तोत्र और कवच द्वारा भगवती को प्रसन्न किया। वैश्य को मुक्ति और राजा को मनु का पद तथा इच्छित ऐश्वर्य मिला।

६३ सुरथसमाधिमेधससम्वादे प्रकृतिवैश्यसम्वादः ३५८

राजा को कैसे प्रकृति की भक्ति का लाभ हुआ और वैश्य को किस पूजा-विधान, मन्त्र, जप, स्तोत्र, और कवच से हुआ इसके विषय में जिज्ञासा करने पर नारायण ने कहा कि राजा और वैश्य दोनों को सुमेधस ने ध्यान, स्तोत्र, कवच का उपदेश किया। उसकी ही पुष्कर में एक वर्ष तक तीन काल उन दोनों ने साधना की। भगवती ने प्रसन्न होकर उन्हें यथेच्छ वरदान दिया। वैश्य को चेतना देकर जब भगवती ने वर मांगने को कहा तो उसने भगवती चरण में रहकर कभी नाश न होनेवाले सम्पूर्ण वस्तुओं का सार वर मांगा। प्रकृति ने भगवान की नवधा भक्ति का वर्णन कर उसकी साधना करनेवाले सफल मुनीश्वर देवगण का परिगणन किया और भगवान् कृष्ण की भक्ति का उपदेश दिया। "कृष्ण" इस नाम का पुष्कर में दशलाख के जप का आदेश दिया जिसे पूर्ण कर वैश्य भगवान् कृष्ण का परमपद पाकर उनका दास बना।

६४ राज्ञः सुरथस्य दुर्गापूजनम् २६१

फिर नारायण ने राजा के द्वारा भगवती के पूजन का विस्तार से वर्णन किया। सुरथ ने स्नान, आचमन और न्यासत्रय कर (कर, अङ्गअङ्गाङ्ग, न्यास) भूतशुद्धि की तथा प्राणायाम कर शंखशोधन किया। फिर भगवती की मिट्टी की मूर्ति बनाकर उनका आवाहन किया। फिर देवी के दक्षिण भाग में कमलालय की स्थापना की और गणेश,, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव, पार्वती छओं देवों की पूजा

विधिविधान से की। फिर मूल प्रकृति ईश्वरी का सुन्दर ध्यान किया। इसे भक्तों को सुरथवैश्य की पूजा के अनुसार ही सदा कर आनन्द लूटना चाहिये। स्तोत्र का विधान पूजा तीन प्रकार की है। सात्विकी, राजसी और तामसी। वैष्णवों की सात्विकी, शाक्तादि की राजसी व अदीक्षित और अन्य सज्जन लोगों की तामसी पूजा है। "दुर्गा" यह नामजप मात्र से ही कष्टों का बिनाश हो जाता है। पूजा षोडश उपचार से की जानी चाहिये। इसी प्रकार छओं देवताओं की, फिर जगदम्बिका, अष्टनायिका, अष्टदलकमल में स्थापित कर आराधना करे। इसके वाद महाभैरव, असिताङ्ग भैरव, ससभैरव, कालभैरव, क्रोधभैरव, ताम्रचूड़ और चन्द्रचूड़ की पूजा करे। फिर नवशक्ति जैसे वैष्णवी, ब्रह्माणी, माहेश्वरी, रौद्री, नारसिंही, वाराही इन्द्राणी कार्तिकी तथा सर्वमङ्गला की पूजा कर फिर शंकर, कार्तिकेय, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, वरुण और देवी की दासी तथा वटुक और चतुःषष्टि योगिनी की विधिविधान से पूजा करे। कवच को गले में वांधकर पठन करे। फिर वलिदान विधान कर भगवती को प्रसन्न करे। वलिदान के वाद भगवती को प्रणामादि कर ब्राह्मण को दक्षिणा देवे।

६५ दुर्गोपाख्याने दानकथनम् ३६६

श्रीनारायण ने नारदजी द्वारा स्तोत्र, कवच, पूजा के फल को जानने की इच्छा पर आर्द्रा में देवी को वोधन कर मूल से प्रवेश करे और श्रवण में विसर्जन करे, यह कहा। भगवती के बोधनोत्सव का आर्द्रायुक्त नवमी को यदि कोई करता है तो उसे शतवार्षिकी पूजा का फल मिलता है। सुरथ की पूजा से भगवती सन्तुष्ट हुई और राजा से यथेच्छ वर मांगने को कहा। उसे अभीष्ट राज्य और शत्रुनाश होने का वर देकर अन्त में ज्ञानरूप कृष्णभक्ति का उपदेश किया। कृष्ण नाम के गुण प्रभाव का वर्णन कर भगवती अन्तर्धान कर गई। राजा भी अपनी आराध्या को प्रणाम कर राज्य पाकर घर चला गया।

६६ श्रीकृष्णकृत दुर्गास्तोत्रम् ३७१

प्रकृति के कवच स्तोत्र के सम्बन्ध में नारदजी द्वारा पूछने पर श्रीनारायण ने जब-जब श्रीकृष्ण ने गोलोक रासमण्डल में राधा की स्तुति की तथा मधुकैटभ युद्ध में विष्णु ने फिर त्रिपुरारि शंकर ने एवं वृत्रासुरवध के समय देवराज इन्द्र ने एवं मनुष्यों, देवतावृन्द और सुरथादि राजाओं ने कल्प-कल्प में आराधना की उस स्तोत्र को बताथा। इसकी फलश्रुति सर्वत्र विजय ही प्रकृति की साधना का फल और उनके श्रीचरणों में भक्ति द्वारा भक्त का उद्धार बतलाया गया।

६७ प्रकृतिकवचापरनामक ब्रह्माण्डमोहन कवचम् ३७१

नारदजी के अनुरोध से श्रीनारायण ने प्रकृति कवच अथवा ब्रह्माण्डमोहन कवच का उपदेश किया। सिद्धकवच करने के लिये इसका पांच लाख जप करना आवश्यक है। गणपति मूलप्रकृति के ही पुत्र हैं उनके आविर्भाव के भगवान् श्रीकृष्ण ही श्वांस से मूल कारण है। ब्रह्मवैवर्तप्रकृतिखण्ड को सुनकर नानाप्रकार से ब्राह्मण भोजन, दान और जपतप करानेवालों को अनन्त फल और पुत्रपौत्र-लक्ष्मी की अनन्तकाल तक प्राप्ति तथा अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण में निश्चला भक्ति होकर गोलोक में परमपद की प्राप्ति होती है।

॥ शुभम्भूयात् ॥

श्रीगणेशाय नमः।

अथ तृतीयं गणपतिखण्डम्

श्रीकृष्ण परब्रह्म की कृपा से गणेशजननी भगवती पार्वतीजी की असीम अनुकम्पा से गणेश आविर्भाव के वृत्तान्त की विषयसूची का वर्णन प्रस्तुत है—

श्री नारदजी ने प्रकृतिखण्ड के अमृत समुद्रमय आख्यान में खूब स्नान कर अपनी हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करते हुए गणेशखण्ड के लिये श्रीमन्नारायण से सादर निवेदन किया। उन्होंने गणेश के भगवती पार्वती के गर्भ से जन्म को लेकर प्रश्न किया। उनका प्रादुर्भाव किस देव के अंश से हुआ वह योनि सम्भव है कि अयोनि सम्भव? उनका तेज, पराक्रम, तपस्या, ज्ञान और निर्मल यश कैसा है? सभी नारायण, ब्रह्मा, शिवशंकर आदि के विद्यमान रहते हुए उनकी पूजा क्यों प्रथम विहित है? इनका जन्म पुराणों में सारपूर्ण और रहस्यमय गाया गया है। यह हाथी के मुखवाले और एकदन्त क्यों हैं आदि प्रश्नों की झड़ी लगादी। भगवान् नारायण ने कहना आरम्भ किया कि सभी दैत्यों का संहार कर जब दक्षकन्या भगवती ने अपने स्वामी की निन्दा को सहन न कर दक्ष यज्ञ में देह छोड़ दिया तो योग से वह हिमालय के यहां कन्या रूप में उत्पन्न हुईं। विवाहयोग्य अवस्था में हिमालय ने उनका विवाह भगवान् शंकर से कर दिया। भगवान् शंकर और भगवती पार्वती नर्मदा के तट पर सुन्दर पुष्प उद्यान में देवों के हजार वर्ष पर्यन्त शृङ्गारपूर्ण रतिलीला में मग्न हो गये।

दोनों ही एक दूसरे के अङ्गस्पर्श से मूर्छित होगये। उस एकान्त स्थान में उनकी यह मनोमुग्धकारिणी सम्भोगलीला देखकर देवगण को चिन्ता हुई। वे लोग ब्रह्माजी को नेता बनाकर नारायण के पास गये और उनसे सारी बातें ब्रह्माजी के द्वारा कहलाई। शंकर भगवान् और भगवती पार्वती के इस सम्भोग से जो सन्तान होगी उसके भविष्य के लिये भी उन्होंने नारायण से पूछा। भगवान् नारायण ने कहा कि आपलोग मेरी शरण आये हैं आप निर्भय रहिये। आप सब मिलकर एक उपाय कीजिये कि शंकर का वीर्य भूमि में गिरे, नहीं तो पार्वतीजी के पेट में गर्भाधान होने से वह सन्तान देव और असुर दोनों के लिये ही घातक होगी। तब देवगण नर्मदा किनारे शंकर पार्वती को विघ्न कर जगाने के लिये गये तथा ब्रह्माजी अपने स्थान पर लौट गये। देवराज इन्द्र ने कुबेर को, कुबेर ने वरुण को, वरुण ने वायु को और वायु ने यम को, यमने अग्नि को, अग्नि ने सूर्य को, सूर्य ने चन्द्रमा को और चन्द्रमा ने ईशान को रति में भङ्ग डालने के लिये परस्पर कहा परन्तु किसी की हिम्मत न हुई। तब देवराज इन्द्र ने थोड़ा शिर टेढ़ा कर महादेवजी को कहा—हे योगीश्वर महादेव आपको प्रणाम है क्या करते हैं ? इसी प्रकार सूर्य, चन्द्र और पवन ने बारी-बारी से उन्हें उद्बोधन करने का प्रयत्न किया परन्तु पार्वतीजी के डर से सम्भोग अवस्था में उठने का प्रयत्न शंकरजी न कर सके। जब फिर भय से व्याकुल देवगण को स्तुति करने को उद्यत देखा तो उन्होंने पार्वतीजी को छोड़कर अलग होने का प्रयत्न किया उसी बीच में उनका वीर्य भूमि पर गिर गया उससे स्कन्द हुए। इस मनोहर कथा का प्रसङ्ग स्कन्द जन्म के प्रकरण में आयेगा।

२ क्रीडाविरतेन शिवेन देवदर्शनम् ३७५

श्री नारायण ने कथा प्रसङ्ग का क्रम जारी रखते हुए कहा कि महादेवजी ने रति से उठकर अपने सामने देवगण को देखा और उन्हें यह परामर्श दिया कि

आप सब यहां से पार्वतीजी क्रोधित न हो जांय इसलिये भाग जाइये। जब पार्वतीजी उठी तो अखिलब्रह्माण्ड के संहार करनेवाले भगवान् शंकरजी कांपने लगे। अपने सामने देवगण को न देखकर उन्होंने अपने क्रोध को स्तम्भित कर लिया और बोलीं कि आज से देवतागण व्यर्थवीर्य हो जांय। भगवती क्रोध से आंख लाल करती हुई लज्जितसी भूमि खोदने की चेष्टा करने लगीं। भगवान् ने डरते-डरते पार्वतीजी को छाती से लगाकर बैठाया और इस प्रकार मधुर वचन बोले—हे मेरी सौभाग्यरूपे प्राणाधिष्ठात्रीदेवते पार्वती रुष्ट क्यों हैं। मुझ निरपराध पर प्रसन्न होओ तुम्हें क्या इष्ट है कहो। मैं तुम्हारे प्रताप से ही शिव हूं नहीं तो शव तुल्य हूं तुम ही प्रकृति, बुद्धि, क्षमा, दया, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति, क्षान्ति, क्षुधा, छाया, निद्रा, तन्द्रा एवं सम्पूर्ण प्राणियों का आधार सर्वस्व और बीजस्वरूपिणी हो, अब मुझे अपने क्रोध से दग्ध हुए को जिलाओ। तब भगवती ने क्रोधयुक्त होने पर भी मनोहारी वचन कहे—हे भगवन् आप सम्पूर्ण प्राणियों में स्थित हैं आप सर्वज्ञ को मैं क्या कहूं। सम्पूर्ण विभव आदि के सुख को एक ओर रख दीजिये और अपने पति के सम्भोग सुख को एक ओर तो स्त्री के लिये अपने पतिदेव के साथ रति सुख ही अधिक प्रिय होगा। इससे भङ्ग होने से स्त्री को अत्यन्त पीड़ा होती है। उसके बराबर स्त्री के लिये बड़ा दुःख कोई नहीं है।

कन्तानां कान्तविच्छेदः शोकः परमदारुणः। कृष्णपक्षे यथा चन्द्रः क्षीयमाणो दिने दिने
तथा कान्तं विना कान्ता क्षीणा कान्त क्षणे क्षणे ॥२८॥

कान्ता रमणियों के लिये पति का विछोह परम दारुण शोक का कारण होता है। जैसे कृष्णपक्ष में चन्द्रमा की कला दिन-दिन घटती जाती है वैसे ही स्त्री की कला पति के विना क्षण-क्षण क्षीण हो जाती है।

चिन्ताज्वरश्चसर्वेषामुपतापश्च वाससाम्।
साध्वीनां कांतविच्छेदस्तुरगानाञ्च मैथुनम् ॥२९॥

रतिभङ्गो दुःखमेकम् द्वितीयं वीर्यपातनम्। दुःखातिरेकदुःखञ्च तृतीयमनपत्यता॥३

आपके रहते मुझे रतिभङ्ग, वीर्यपतन और पुत्र न होने के तीन-तीन दुःख हों इससे अधिक दुःख संसार में मेरे लिये और क्या होसकता है।

त्रैलोक्य के स्वामी आपको पति पाकर भी मेरे सन्तान न हो, जिस के रतिसुख से प्राप्त सन्तान न हो उसका जन्म व्यर्थ है। सद्वंश में सत्पुत्र ही गृहस्थ का सब कुछ है कुपुत्र तो कुल का अङ्गार है, नाश करनेवाला है। स्वामी अपने अंश से अपनी स्त्री के गर्भ से जन्म लेता है। साध्वी स्त्री माता के समान हितकारिणी है। असाध्वी वैरी के समान सन्ताप देनेवाली है। "मुखदुष्टा योनिदुष्टा चैवाऽसाध्वयति हि स्मृता" अब आप ही बताइये मैं क्या उपाय करूँ इसपर शंकरजी ने हँसकर पार्वतीजी को सान्त्वना देते हुए कहा—

३ पार्वतीम्प्रति हरिव्रतकरणाय शिवस्योपदेशः ३७

महादेवजी ने कार्यसिद्धि के लिये उपाय बतलाया। उन्होंने पुण्यक नामक व्रत को भगवान् हरि की आराधना करते हुए करनेका परामर्श दिया यह वाञ्छाकल्पतरु है, सबका सार है, सुखदेने वाला और पुत्रदाता है, सम्पत्ति का दाता भी यही है। इसलि इसको पालन करो तुम्हें व्रत के आराध्य कृष्ण अवश्य वाञ्छित फल देंगे। अब तुम हरि मन्त्र को लो पितरों के मुक्ति कारण इस व्रत को करते हुए इष्टसिद्धि पाओगी। यह कहकर उन्होंने शीघ्र गङ्गा के तटपर जाकर वड़े प्रेम से भगवान् श्रीकृष्ण के स्तोत्रयुक्त कवच और पूजाविधि के नियमों को बताया।

भगवती श्रीपार्वती ने सम्पूर्ण व्रतविधान सुनकर इसका विस्तार से वर्णन जानना चाहा। पिता अपनी कन्या को कौमारावस्था में सब प्रकार से भरण-पोषण कर योग्य बना देता है। युवावस्था में पति उसकी शक्ति का ह्रास नहीं होने देता और वृद्धावस्था में पुत्र उसकी सेवाकर अपना जन्म सफल करते हैं। सुन्दर पति को देकर कन्यापिता धन्य होता है। पति गृहस्थ में उसे सब प्रकार सुखीकर वृद्धावस्था में पुत्रों को उसका भार सौंपकर कर्तव्यपालन करता है। तीन भाईयों की बहन भाग्यवती है, उससे कम भाग्यशालिनी दो भाई वाली, उससे कम एक भाई वाली और एक भी न होनेपर तो वह बेचारी अधमा है। मुझे पुत्ररत्न की आवश्यकता है आप कृपाकर उसकी व्यवस्था कीजिये। तब शंकरजी ने पुण्यक व्रत का आरम्भ माघ शुक्ल त्रयोदशी को करने का विधान कहा। प्रातःकाल स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर स्वस्तिवाचन के साथ घटस्थापन किया जाय। पुरोहित को वरण कर षोडशोपचार से भगवान् श्रीकृष्ण का पूजन हो। इसका विधान साङ्गोपाङ्ग होना चाहिये। थोड़ीसी भी त्रुटि होने से अङ्गहानि होती है तो फल में भी हानि सम्भव है। नाना द्रव्यों से भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की पूजा का नाना फल सङ्कल्प में श्रीकृष्ण प्रीत्यर्थ कहना चाहिये। पुष्पाञ्जलि के बाद सौ प्रणाम करे और छ मास तक हविष्य अन्न खावे। एक पक्ष तक हवि जल का पान करे। रात्रि में कुशासन पर बैठकर जागरण करे आठ तरह के मैथुनों को छोड़ दे। व्रत की समाप्ति पर पूर्ण सामग्री सजाकर तिल होम कर ब्राह्मण भोजन और दक्षिणा देवे। इस व्रत का यही फल है कि भगवान् में दृढ़ अचल भक्ति होती है और भगवान् हरि के समान ही सर्वगुणनिधान पुत्र उत्पन्न होता है और व्रत करनेवाली स्त्री को सौन्दर्य, स्वामी का सौभाग्य, ऐश्वर्य और विपुल धन की प्राप्ति होती है। अब महेश्वरी तुम व्रत करो तुम्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी।

६

५ . व्रतमाहात्म्यकथा ३

व्रतविधान को सुनकर पार्वतीजी की उत्कण्ठा व्रतमाहात्म्य को सुनने सम्बन्ध में हुई। महादेवजी ने कथा आरम्भ की। प्राचीन समय में शत ने जो मनु की पत्नी थी वह पुत्र न होने से अत्यन्त दुखित होकर ब्रह्माजी के जा बन्ध्या के पुत्र होने का सफल उपाय पूछा।

तज्जन्मनिष्फलं ब्रह्मन्नैश्वर्य्यंधनमेव च। किञ्चिन्न शोभते गेहे विना पुत्रेण पुत्रिणा

पुत्र के विना सब सूना है। पुत्र सुखदेनेवाला, मोक्षदाता व प्रीतिदाता अपुत्र का सुख कोई नहीं देखना चाहता। स्वयं वह भी लज्जित होता है। ब्रह्म ने उसे माघ शुक्ल त्रयोदशी को सुपुण्यक व्रत करने का आदेश किया। एक वर्ष तक लगातार करना चाहिये और इसकी समाप्ति बताई।

६ पार्वत्याव्रतारम्भोद्योगः ३

शिवस्य विष्णुस्समीपे वरप्रार्थनम् ३

व्रताज्ञाग्रहणम् ३

नारदजी द्वारा व्रत के आरम्भ का विधान पूछने पर नारायण भगवा दिव्य कथा और व्रत का विधान कहा। जब भगवान् शंकर साक्षात् तप करने चले गये तो भगवती पार्वती ने शंकरजी की आज्ञा से पुण्यक व्रत आरम्भ किया। इस अवसर पर ब्रह्माजी विष्णु आदि देवगण सनक, सन व सनत्कुमार आदि बड़े-बड़े ऋषि महर्षि उपस्थित हुए। उस समय बड़ी सभा जुटी और उसमें नाना प्रकार के गीत, नृत्यवादित्रों से शंकरजी ने स स्वागत किया। ब्रह्माजी की प्रेरणा से शङ्करजी ने हाथ जोड़कर भगवती पार्वती पुण्यक व्रत करने की इच्छा की बात कही। उन्होंने अपने रतिभङ्ग और पार्व

के शोक, क्रोधयुक्त वचनों को ब्रह्मांजी से कहा और पुत्राभिलाषा होने से उसे पूर्ण करने का उपाय जानना चाहा, साथ ही स्त्री स्वभाव को लेकर अपना मन्तव्य रक्खा ।

दुर्निवार्य्यश्च सर्वेश स्त्रीस्वभावश्च चापलः ।
दुस्त्यजं योगिभिः सिद्धैरस्माभिश्च तपस्विभिः ॥२४॥

स्त्रीस्वभाव अत्यन्त चपल होता है वह किसी के समझाये नहीं ठीक होता इतना होनेपर भी स्त्रीरूप के वश में योगी लोग सिद्धगण और हम तपस्वी भी हैं। यह मोह का कारण है, सम्पूर्ण माया का पिटारा कामवर्द्धन का कारण कामदेव का ब्रह्मास्त्र, मोक्ष के द्वार को बन्द करने का किवाड़ और हरिभक्ति को रोकनेवाला यह है। बैराग्य नाश का बीज है, रागादि को बढ़ाता है। साहसों का समूह, दोषों का घर, अविश्वासों का क्षेत्र और स्वयं मूर्तिमान् कपट है। अहङ्कार का आश्रय सदा ही मुख में अमृत लगे हुए विषकुम्भ के समान यह रहती हैं। सभी के लिये असाध्य है, दुस्साध्य कलह के अङ्कुर का बीज है। अतः आपलोग पार्वतीजी के लिये परिणाम में सुखावह कोई पुत्र प्राप्ति का सुन्दर उपाय बता दीजिये। इसपर भगवान् विष्णु ने सुपुण्यक व्रत का माहात्म्य बतलाया और श्रीकृष्णभक्ति का अमोघ रहस्य कहकर श्रीकृष्ण भक्तों का मार्ग सदैव निष्कण्टक बतलाया और भगवती पार्वती के लिये इस व्रत को करने का विधान बतलाकर, उसके प्रभाव से गोलोकनाथ श्रीकृष्ण स्वयं पार्वती के गर्भ से उत्पन्न होंगे यही गणेश नाम से प्रसिद्ध हो जायेंगे यह कहा। गजानन, एकदन्त आदि नामों की कथा।

---

७ . हरेरादेशात् व्रतविधानम्

व्रतान्ते पुरोहितेन स्वामिदक्षिणायाचनम्

देवान्प्रति नारायणवाक्यम्

पार्वतीकृत श्रीनारायणस्तोत्रम्

भगवान् विष्णु के आदेश से शङ्करजी ने पार्वतीजी को व्रत का विधान बताया। उन्होंने सुन्दर वेषभूषा पहनकर शुभ दिन में रत्नकलशादि की स्थापना मुनिवृन्द की विधिविधान से पूजन कर पुरोहित, आचार्य, दिक्पाल, देव, मनुष्य एवं ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि की पूजा कर स्वस्तिवाचन के साथ भगवान् श्रीकृष्ण का मङ्गल घट में आवाहन किया और षोडश (सोलहों) उपचारों भक्तिपूर्वक पूजा की। इस व्रत में जो उपकरण (सामग्री) देने की थी उसे सती पार्वती ने मन्त्र सहित प्रदान की। तिल और घृत की तीन लाख आहुति से हवन किया। देवता, अतिथि और ब्राह्मणों की सम्पूर्ण साधनों से पूजा यह क्रम एक वर्ष तक प्रतिदिन चलता रहा। एक वर्ष के बाद समाप्ति पर पुरोहित ने भगवती पार्वती से पति को दक्षिणा में मांगा। भगवती इसपर होकर गिर पड़ी। तब शङ्करजी ने उन्हें दक्षिणा न देने पर फलहानि का बताया और धर्म, देवता, मुनिवृन्द ने दक्षिणा के विषय में पार्वती को तब भगवती ने पति को दक्षिणारूप में माँगने पर आपत्ति उठाई कि पति के से स्त्री के पास फिर रह क्या जायगा।

भर्तुर्वंशश्चतनयः केवलं भर्तृमूलकः। यत्र मूलं भवेद् भ्रष्टं तद्वाणिज्यश्च निष्फल

इस प्रकार जब पार्वतीजी एवं धर्म, देवता और मुनिगणों का दक्षिणा विषय में विचार चल रहा था तो भगवान् चतुर्भुज श्रीकृष्ण रथ से वहां उपस्थित हुए। उन्हें देववृन्द ने प्रणाम किया और उन्होंने देववृन्द को सृष्टि का उत्पत्ति, स्थिति और लय का कारण बताया। सम्पूर्ण प्राणिमात्र का आधार

को बताकर गोलोकनाथ द्विभुज और वैकुण्ठनाथ चतुर्भुज विष्णुरूप का महत्त्व समझाया और पार्वतीजी को अपने प्राणनाथ शङ्करजी को देकर फिर उचित मूल्य द्वारा उन्हें पुनः प्राप्त करने का उपाय कहा। गौएँ विष्णु की देहरूपा हैं शिवजी विष्णु के साक्षात् शरीर हैं अतः आप गोमूल्य देकर स्वामी को ग्रहण करें। पार्वतीजी ने वैसा ही किया और एक लाख गौओं को बदले में देकर शङ्करजी को फिर मांगा। इसपर सनत्कुमार ने ना किया इससे पार्वती को कष्ट हुआ। उन्होंने शङ्कर का ध्यान किया और सामने महन्तेजः पुञ्ज भगवान् का रूप प्रकट हुआ। उसकी क्रमशः विष्णु, ब्रह्मा, महादेव, धर्म, देवता, मुनिगण, सरस्वती, सावित्री, लक्ष्मी, हिमालय और पार्वतीजी ने भक्तिभाव से स्तुति की। पार्वती ने भगवान् शंकर के तीन जन्म में पति होने के विषय को लेकर इस जन्म में भी सौभाग्य से उनके पति होने एवं पुत्र न होने का प्रकरण कहकर स्तुति की। उन्होंने भगवान् से उनके समान ही पुत्ररत्न की प्राप्ति हो यह कामना की। इस पार्वतीकृत स्तोत्र को संयत होकर सुननेवाले को भगवान् विष्णु के समान पुत्ररत्न की प्राप्ति होती है। एक वर्ष तक हविष्य भोजन कर इस व्रत को करनेवाले को पुण्यक व्रत का अवश्य ही फल मिलता है।

८ स्तवप्रीतेन कृष्णेन पार्वत्यै निजरूपप्रदर्शनं वरप्रदानम् ३९९

वृद्धविप्रातिथिरूपेण विष्णोरागमनम् ४०१

गणेशोत्पत्तिः ४०३

भगवती पार्वती के स्तवन से प्रसन्न होकर देवाधिदेव श्रीकृष्ण ने अपना दुर्लभ अनुपम सौन्दर्य सौकुमार्यपूर्ण रूप दिखाया उनके साथ चारों ओर गोप एवं गोपिका बैठे हैं और राधा उनके पास विराजमान हैं। उस रूप को देख मुग्ध होकर ऐसे ही सुन्दर पुत्र की अभिलाषा उन्होंने की। भगवान् 'तथास्तु'

कहकर अन्तर्धान करगये। उन्होंने फिर सबको यथाविधि सन्तुष्ट किया कर
प्रभूतदान से सबको तृप्त किया। स्वयं शङ्करजी के साथ ब्राह्मणों को भो
दक्षिणा से राजीकर आप प्रसाद पाकर सुन्दर शय्या पर पार्वतीजी सो
उस रतिलीला के अन्त में वीर्यपतन काल में विष्णु वृद्ध ब्राह्मण का वेष धा
आ पहुंचे और सब तरह से शङ्कर को तथा पार्वती को उद्बोधन दिया। इस
पार्वती और शङ्करजी बीच में ही उठकर वस्त्र पहनकर उस रतिभवन के द्वार
खड़े ब्राह्मण के पास गये और उसे आने का कारण पूछा। शङ्करजी ने
नामपन्था पूछा और पार्वतीजी ने अपने द्वार पर आये हुए वृद्ध अतिथि
सत्कार कर अतिथि पूजन का फल बतलाते हुए अपनेको धन्य कहा।

अपूजितोऽतिथिर्यस्य भवनाद्विनिवर्तते।
पितृदेवाग्नयः पश्चाद् गुरवो यान्त्यपूजिताः ॥ ६॥
यनि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
तानिसर्वाणि लभते नाऽभ्यच्च्यातिथिमीप्सितम् ॥

ब्राह्मण ने भूख-प्यास से पीड़ित अपनेको बतलाकर आहार पाने की बल
इच्छा प्रगट की। ब्राह्मण ने पांच प्रकार के पिता बतलाये।

विद्यादाताऽन्नदाता च भयत्राता च जन्मदः।
कन्यादाता च वेदोक्ता नराणां पितरः स्मृताः ॥
गुरुपत्नी गर्भधात्री स्तनदात्री पितुः श्वसा।
श्वसा मातुः सपत्नी च पुत्रभार्य्यान्नदायिका ॥
भृत्यः शिष्यश्च पोष्यश्च वीर्यजः शरणागतः।
धर्मपुत्राश्च चत्वारो वीर्यजो धनभागिति ॥ ४॥

मैं बुड्ढा ब्राह्मण आपके शरण में आया हूं मेरा अब अन्न से उप
कीजिये। और उसने भगवद्भक्ति की प्रशंसा कर उनके चरणों की भक्ति मां
ब्राह्मण ने कर्म के भोगादि से लेकर भगवत्स्मरण एवं भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म की प्र

करते हुए हरिभक्ति एवं विष्णु मन्त्र की अपूर्व प्रशंसा की और भगवान् की भक्ति में एकमात्र कारण ही उसने पार्वतीजी को बतलाया और उनके पुत्र गणेश को साक्षात्कृष्ण का ही रूप कहा। उनकी उत्पत्ति श्रीकृष्ण भगवान् के अंश से हुई थी। इसके पूर्व ही वह ब्राह्मण अन्तर्धान कर गया और उनके रूप माधुर्य का सुन्दर वर्णन किया।

९ हरौ तिरोहिते पार्वत्या ब्राह्मणान्वेषणम् ४०४

पार्वत्या शिवेन च गणेशदर्शनम् ४०५

वृद्ध ब्राह्मण के रूप में श्रीविष्णु के द्वारा बिना पूजा लिये ही चले जानेपर भगवती पार्वती ने उनकी बहुत खोज की पर कहीं पता न चला. इसपर आकाशवाणी हुई कि हे पार्वति! आप शान्त होइये और शय्या पर अपने घर में लेटे हुए सुपुत्र को देखिये। यह तुम्हारे द्वारा किये गये पुण्यक व्रत का फल है और वह ब्राह्मण भूखा नहीं स्वयं साक्षात् विष्णु थे। इस पर पार्वतीजी अपने भवन में लौट आईं और अपने पुत्र को उमा-उमा कहकर स्तन के लिये रोते हुए देखा। भगवती पार्वती शङ्करजी के पास गईं और उनसे गणेशजन्म का सारा वृत्तान्त कहा। शङ्करजी अपने पुत्र को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और पुत्रप्राप्ति की बहुत प्रकार से प्रशंसा की। भगवती पार्वती ने उस बालक को गोद में लेकर स्तन पान कराया।

सर्वेभ्यो बहुविधदानम् ४०६

विष्णुप्रभृतिभिर्देवैराशीर्वादप्रयोगः

पुत्र प्राप्ति के उत्सव पर भगवती पार्वती और शङ्करजी ने अधिकारी ब्राह्मण और याचक वर्ग को प्रचुर मात्रा में दान दिया। इसी प्रकार हिमालय ने भी अपने नाती के जन्म के उपलक्ष्य में खूब दान दिया। सभी गणेशजी की मङ्गल

कामना करते हुए लौटे और सभी देववृन्द ने इस उत्सव का अमित आ
लूटा। सभी देवगण, विष्णु, ब्रह्मा, महादेव, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री, हिमा
मेनका, वसुन्धरा, पृथ्वी और भगवती पार्वती ने मंगलाशासनपूर्वक शुभाशी
दिया एवं ब्राह्मण वन्दीजन ने मङ्गल कामना की। गणेशजन्म का इस सुमङ्ग
ध्याय के पढ़नेवाले का सदा मङ्गल होता है। इसके पाठ करनेवाले की
मङ्गल कामना पूर्ण होती है। यह मङ्गलाध्याय जिस किसी के यहाँ हो
उसका मङ्गल होता है। यात्रा में पुण्याह के दिन इसको मन लगाकर सुनने
को सब अभीष्ट मिलते हैं।

११ गणेशदर्शनार्थ शनैश्चरागमनम्

शनिपार्वतीसम्वादः

जब गणेशजन्म के उपलक्ष्य में शङ्करजी के यहां देवगण आनन्दपूर्वक उत्सा
मना रहे थे उसी समय महायोगी सूर्यपुत्र शनैश्चर वहां पहुंच गये। श्या
शनैश्चर अहर्निश भगवान् कृष्ण के नाम में लगे हुए सभी देवगण को प्रणाम
उनकी आज्ञा से शङ्करजी के भवन में श्रीगणेश को देखने गये। द्वार पर हा
त्रिशूलधारी विशालाक्ष को देखकर उससे अन्दर जाने की आज्ञा मां
विशालाक्ष ने पार्वतीजीकी आज्ञा से शनैश्चर को जाने दिया। अन्दर
गणेशजी की मङ्गल कामना करते हुए आशीर्वाद देकर नीचा शिरकर वह
बैठ गये। जब पार्वतीजी ने नीचे शिर करने का कारण पूछा तो कर्म की ग
वर्णन करते हुए शनैश्चर ने अपनी स्त्री चित्ररथ की पुत्री के द्वारा उसके ऋतु
होनेपर न जानेपर जो शाप दिया उसीके कारण किसीको देखने से वह ना
जाता है यह कहा। यद्यपि बाद में उसे मनाया भी गया परन्तु वह शा
लौटा न सकी।

पार्वतीजी ने हँसी में टालते हुए शनि से बालक को देखने के लिये जोर दिया। शनैश्चर ने ज्यों ही अपनी दक्षिण आँख के कोण से बालक के शिर को देखा वैसे ही उसका शिर अलग होगया और गोलोक में श्रीकृष्ण के यहाँ चला गया। इस दुर्घटना से पार्वतीजी को बड़ा भारी खेद और शोक हुआ। सभी देवगण को इस अघटित घटना से विस्मय हुआ। सभी लोग मूर्छित हो गये। इसपर भगवान् विष्णु ने गरुड़ पर चढ़कर पुष्पभद्रानदी के किनारे एक वन में हथिनी के साथ सोये हुए गजेन्द्र को देखा। अपने सुदर्शनचक्र से उसका शिर छेदकर गरुड़ के ऊपर चढ़कर वे पार्वती के यहां जाने लगे। इधर वह हस्तिनी बच्चों के साथ अपने पति के अङ्ग विच्छेद से क्रोधित होकर विलाप करने और रोने-धोने लगी। इनसे विष्णु ने उसको दूसरे हाथी का सिर लगा दिया और उसको कल्प पर्यन्त आनन्द से जीवन विताने का वरदान दिया। कैलास पर आकर पार्वतीजी को जगाकर शिशुको गोद में रख उसके हाथी का शिर लगा दिया और बालक को आध्यात्मिक ज्ञान दिया। विष्णु भगवान् द्वारा कर्म के शुभाशुभ फलों के भोगों का वर्णन करते हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द की कलाओं का महत्त्वपूर्ण वर्णन और उन्हीं के कलाअंश होने से गणेशजी की प्रशंसा। ब्रह्मा, विष्णु और देवगण सभी ने गणेशजी को भूरि-भूरि आशीर्वाद दिये। शङ्करजी ने मृतजीवित बालक की शान्ति करने के लिये ब्राह्मणों को खूब दान दिया। हिमालय ने भी इसी प्रकार ब्राह्मणभोजनादि से सब मङ्गल साधन कराये। श्रीविष्णु ने इस अवसर पर वेदों और पुराणों का पाठ करवाया। स्त्रीसुलभ स्वभाववश पार्वतीजी ने क्रुद्ध होकर शनैश्चर को शाप दिया कि जाओ तुम अङ्गहीन बन जाओ। इसपर सूर्य, कश्यप और यम रुष्ट होकर सभा से

उठकर चले गये। जब ब्रह्मा उन्हें मनाने गये तो कश्यप ने कहा कि शनि वे
बालक की माता के अनुरोध करने पर देखने से कोई दोष नहीं। सूर्य ने अ
पुत्र के अङ्गहीन होने की बातपर शनि को निरपराध कहकर बदले में गणेशजी
अङ्गहीन होने का शाप दिया। यमने कहा कि यह कहां का न्याय है कि देखने
आज्ञा देने पर और सारी बात जानने पर भी शनि को शाप दिया गया।
भी शाप देते हैं मारनेवाले को मारने में क्या कोई अधर्म है ? ब्रह्माजी ने बीच
कर उन्हें समझाया कि स्त्री के चपल स्वभाव से यह सब हुआ आप लोग क्षमा
और पार्वती को कहा कि अपने बालक को देखने की आज्ञा देकर निर्दोष अतिथि
आपने क्यों शाप दिया ? ब्रह्माजी के समझाने-बुझाने पर पार्वतीजी ने श
छुड़ाने का और वर देने का उपक्रम किया। इसपर शनि को ग्रहराज होने, चिरंजी
और हरिभक्तिपरायण होने का वरदान दिया गया। शाप के अमोघ होने
थोड़ा-थोड़ा खञ्ज होओगे यह कहा। इस प्रकार आपसकी समझौते की भाव
से आनन्द छा गया और शनि विदा हो गये।

१३ विष्णुकृतं गणेशस्तोत्रं ४१

विष्णुकृतं गणेशकवचम् ४१

विष्णु भगवान् ने शुभ समय में देवगणों के साथ बालक गणेश की पूजा
और सबसे प्रथम देवगण में उनकी पूजा होने एवं सर्वपूज्य होने का वर
दिया। भगवान् विष्णु ने विघ्नेश, गणेश, हेरम्ब, गजानन, लम्बोदर, एक
शूर्पकर्ण और विनायक आदि नाम निकाले तथा खूब शुभाशीर्वाद दिये।
सिद्धासन, ब्रह्मा ने कमण्डलु, शङ्कर ने योगपट्ट और दुर्लभतत्त्वज्ञान,
रत्नसिंहासन, सूर्य ने मणिकुण्डल, वरुण आदि देवताओं ने नाना आभूषण
पृथिवी ने वाहन के लिये मूषक दिया। सभी ने भक्ति से पूजा की और देवग

वेदमन्त्रों से गणेशजी को स्नान कराया और गणेशमन्त्र से हिमालय ने पूजा की और दान दिया। तब विष्णु ने गणेशजी का स्तोत्र और कवच पाठ किया। इनके पठन करने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है।

१४ कार्तिकेय प्रवृत्तिप्राप्तिः ४२०

प्रथम आदि सर्ग में जो रतिसङ्गम भगवती पार्वती एवं शंकरजी ने किया उससे प्राप्त शङ्कर के अमोघ वीर्य के विषय में पार्वतीजी ने विष्णु भगवान् से जिज्ञासा की और विष्ण भगवान् ने देववृन्द को उस वीर्य की खोजकरने को विशेष जोर दिया। सभी देवगण ने उस वीर्य के हरनेवाले को भला बुरा कहा। इसपर विष्णु ने कहा कि जब देवताओं ने उसे नहीं लिया तो फिर किसने लिया? तब धर्म ने कहा वह पृथ्वी पर गिरा; पृथ्वी ने कहा मैंने उसे धारण न कर सकने के कारण अग्नि में डाल दिया। अग्नि ने भी अपनी असमर्थता बतलाकर उसे शरों के वन में डाल दिया। वायु ने उस वीर्य से सुन्दर बालक होने की बात कही। चन्द्र ने कृत्तिकागण द्वारा उसके पालन-पोषण की बात प्रकट की और उसका कार्तिक नाम का रहस्य बतलाया। इसपर पार्वती ने प्रसन्न होकर अति मात्रा में दान दिया।

१५ शिवदूतैः कृत्तिकाभवनगमनम् कार्तिकतादिसंवादश्च ४२३

पार्वतीजी के साथ शङ्कर ने कार्तिक के जन्म की बात सुनकर अपने महाबलशाली वीरभद्र, विशालाक्ष आदि पार्षदों को कृत्तिकागण के भवन को घेरने के लिये भेजा। इसपर कृतिकागण डर गईं और कार्तिक को सारा वृत्तान्त कहा गया। नन्दिकेश्वर ने कार्तिक को कहा कि गणेशजन्म के मङ्गलोत्सव और वहां परतुम्हारे प्रकरण को लेकर खोजने की आज्ञा देने पर क्रमशः कृत्तिका स्थान में तुम्हारा ठीक ठिकाना बताया गया अतः अब तुम हमारे साथ चलो। कृतिकागण

को लेकर विष्णु देवताओं के साथ तुम्हारा अभिषेक करेंगे और तुम्हें तारक
को मारने के लिये सब प्रकार के शस्त्रास्त्र देंगे। अतः महत्त्वपूर्ण जीवनवाले
पुरुष कहीं एकान्त में थोड़े ही रहते हैं ऐसा समझकर हमारे साथ
इसपर कार्तिक ने पूर्व जन्मों की सारी कथा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण
प्रकृतीश्वरी साक्षात् पार्वतीजी को अपनी माता कहा क्योंकि उसके स्वामी भग
शङ्कर के वीर्य से मेरा जन्म हुआ है और कृत्तिकागण का मैं पोष्यपुत्र हूं
उनके स्तनपान से हीं मैं पालपोसा गया हूं। हे नन्दिकेश्वर ! मैं शैलकन्या पा
के गर्भ से उत्पन्न नहीं हूं। वह मेरी धर्म-माता हैं और ये सर्वसम्मत मातायें
स्तनदात्री, गर्भदात्री, भक्ष्यदात्री गुरुप्रिया। अभीष्टदेवपत्नी च पितुः पत्नी च कन्
सगर्भकन्या भगिनी पुत्रपत्नी प्रियाप्रसूः। मातुर्माता पितुर्माता सोदरस्य प्रिया
मातुः पितुश्चभगिनी मातुलानी तथैव च। जनानां वेदविहिता मातरः षोडश

ये कृत्तिका कोई छोटी माया नहीं हैं। ये ब्रह्माजी की कन्या हैं
महाविभूति सम्पन्न हैं। ये तीनों लोकों में पूजित हैं। जब विष्णु ने तुम्हें
है तो मैं शङ्करजी का पुत्र हूं आओ चलें देवगण के दर्शन करें।

१६ कार्तिकगमनम्

कार्तिक ने कृत्तिकागण को सारी अच्छी तरह से सान्त्वना देकर
शङ्करजी के यहां जाने के लिये आज्ञा मांगी और सम्पूर्ण जगत् दैवाधीन
उन्हें भगवान् कृष्ण के भोजन करने की बातें कही। यह जगत् जलबुद्बु
समान अनित्य हैं। मूर्ख लोग माया से सबकुछ करते रहते हैं। जब
विदा होने की तैयारी करने लगे तो सुन्दर रथ वहां आगया और कृत्तिका
दुःखी हृदय से अपना प्रेम का भाव प्रगट किया और अपने पुत्र के गमन
से मूर्छित होकर गिर पड़ीं। कार्तिक ने उन्हें आध्यात्मिक ज्ञान की
समझाकर रथपर सवार होकर यात्रा की। मार्ग में पूर्ण पूर्णकलश, द्विज,

सफेद धान्य, दर्पण, दधि, घृत, मधु, लाज, फूल, दूब, अक्षत आदि शुभशकुन के पदार्थ मिले। कैलास पहुंचने पर भगवती पार्वती को उनके मङ्गलाशासन के लिये प्रचुर सज्जा करते हुए देखा। सभी को उपस्थित देख पार्वती के सामनें रथ से उतर कर कार्तिक ने प्रणाम किया और क्रमशः सबको दण्डवत् प्रणाम के साथ अभिवादन किया। सभी ने कार्तिक को शुभाशीर्वाद से वर्द्धापन किया।

१७ कुमाराभिषेकः ४२८

अब विष्णु ने शुभलग्न में रत्नसिंहासन पर कार्तिक को बिठाकर वेदमन्त्र से अभिषिक्त तीर्थों के जल से स्नान कराया। ब्रह्मा ने उसे प्रज्ञा एवं सन्ध्यामन्त्र, विष्णुमन्त्र और कवच, स्तोत्रादि वेदों ने दिये शङ्करजी ने पाशुपत संहारास्त्र आदि दिये। अन्य सभी देवतागण ने उन्हें अपने-अपने विशेष आयुध दिये और कार्तिक का अभिषेक कर अपने-अपने घर चले गये। समय आने पर भगवान् शङ्कर ने स्कन्दकार्तिक और गणेश का विवाह कर दिया। इस प्रकार संक्षेप में, कार्तिक के मिलने से सारे देवगणों में आनन्द और उत्साह की लहर दौड़ गई।

१८ विघ्नेशविघ्नकथनम् ४३०

नारदजी ने भगवान् विघ्ननाशक गणेशजी के मस्तक छेदन के विघ्न को लेकर प्रश्न किया। इसपर पुराने इतिहास से भगवान् नारायण ने उनका समाधान किया। उन्होंने कहा कि पुराकल्प में एक बार शङ्करजी ने अपने भक्त माली और सुमाली के मारने सूर्य के ऊपर शूल से प्रहार किया। इसपर वह मूर्छित होकर रथ से गिर पड़ा। उसे इस अवस्था में कश्यपजी ने देखा और अपनी गोद में लेकर शोक से अतीव विलाप किया। अपने विष्प्रभ पुत्र की हीन अवस्था देखकर कश्यपजी ने शङ्करजी को शाप दिया कि जैसे मेरे पुत्र को छाती प्रहार कर उसे छिन्न किया है वैसे ही तुम्हारे पुत्र का भी शिर छिन्न होगा।

जब आशुतोष भगवान् शङ्कर का क्रोध शान्त हो गया तो उन्होंने ब्रह्मज्ञान पुष्
सूर्य को उसी क्षण जिला दिया। सूर्य भगवान् चेतना पाकर उठे और कश्यप भा
एवं शङ्करजी को सामने देखकर भक्ति से प्रणाम किया और शङ्कर को क्रो
गये शाप का वर्णन सुनकर सूर्य ने अपने पिता को भला-बुरा कहा और उन्ह
सूर्य को आशीर्वाद देकर अपने-अपने स्थान को चले गये। माली और सुमा
के कोढ़ निकल आई उन्हें ब्रह्मा ने सूर्य की प्रार्थना करने की बात कही
सूर्य कवच के पाठ से स्वस्थ होने का रहस्य कहा। वे दोनों पुष्कर जाकर त्रि
स्नान कर सूर्य के मन्त्र का जप करते रहे। सूर्य को भक्ति से सन्तुष्ट कर
पूर्व स्वरूप मिल गया और वे आनन्दपूर्वक जीवन बिताने लगे।

१९ भास्करपूजनं स्तोत्रञ्च

नारद ने सूर्य पूजा का स्तोत्र, कवच आदि को विस्तार से बताने के
जो प्रश्न किया उसके उत्तर में ब्रह्माजी द्वारा सूर्य कवच के पारायण की
का विस्तार से वर्णन बताया। इसे बृहस्पति ने इन्द्र को हजार भग होने
प्रीतिपूर्वक साधन करनेको बतलाया था। इस कवच का अनन्त फल सभी
से छुटकारा और इष्टसिद्धि की प्राप्ति होती है।

२० गजमुखयोजनहेतुकथनम्

फिर नारदजी ने गणेशजी के हाथी के मुह को लगाने के विषय में
इसपर श्रीनारायण ने पाद्मकल्प का पुरातन इतिहास समझाया। एक
पुष्पभद्रानदी के किनारे, महेन्द्र देवराज बैठे थे। उस समय रम्भा को
सजी-सजाई देखकर उनको कामविकार हो गया और उसने इन्द्रिय चपल
रम्भा को बुलाया और कई प्रकार के फुसलानेवाले चाटुकारी वाक्यों से
आकृष्ट करने का प्रयत्न किया। इसपर रम्भा ने कामी को भ्रमर के समान

पुष्पको छोड़कर दूसरे पुष्प पर बैठने की वृत्तिवाला कहकर फिर अपना मनका भाव कहा। इन्द्र ने कामशास्त्रानुसार उसके साथ रति की। इस प्रकार वह काममत्त इन्द्र सुख से दिन बिताने लगा। एक दिन दुर्वासा संयोग से आगये उन्होंने भगवान् विष्णु के यहां से लाये गये पुष्प को इन्द्र को उपहार देकर पुष्प धारण का माहात्म्य कहा। देवराज ने उपेक्षा करके इस पुष्प को रम्भा को दे दिया। रम्भा ने इसे हाथी के मस्तक पर रख दिया। जब रम्भा ने देवराज को भ्रष्टश्री देखा तो वह देवगण के यहां स्वर्ग में चली गई। देवराज को छोड़कर वह महाबली हाथी उसे फूल को फेंककर जंगल में चला गया हां पर एक हथिनी के साथ कामोन्मत्त होकर खूब आनन्द से रमण किया और उसके सन्तान फैलने लगी। भगवान् विष्णु ने उस पुष्प के प्रभाव से उसका मस्तक गणेश के मस्तक के स्थान पर लगाया। यही मस्तक का रहस्य है।

२१ शक्रलक्ष्मीप्राप्ति ४३८

नारद ने ब्रह्माजी के शाप से देवता कैसे लक्ष्मी हीन हो गये और फिर से उन्हें लक्ष्मी प्राप्त हो गई इसके लिये पूछा इसपर श्रीनारायण ने कहा कि म्भा से पराभूत वह इन्द्र जब अमरावती आया तो वहां सब प्रकार से दैत्यग्रस्त न्धुहीन और वैरिगग से घिरी हुई पुरी को देखकर उसे अत्यन्त दुःख हुआ। अपने दूत से नगरी की सारी दुर्दशा सुनकर वह बृहस्पतिजी के पास गया। हां से वह इन्द्र के साथ ब्रह्माजी की सभा में चले गये और ब्रह्माजी की स्तुति र अपने आने का सारा वृत्तान्त कहा। इसपर ब्रह्माजी ने अपने प्रपौत्र म्बन्ध का स्मरण कराकर इन्द्र के दुराचार सम्बन्धी दुष्कृत्यों को फल समेत हा और श्रीहीनता का कारण दुर्वासा द्वारा दिये गये भगवान् विष्णु के पुष्प के हार को गजेन्द्र के सिरपर उपेक्षा बुद्धि से डालना ही बताया और परस्त्री मन से मनुष्य को सदा ही दरिद्र होना पड़ता है। इसका उपाय उन्होंने

भगवान् नारायण का भक्तिभाव से भजन बताया। ब्रह्माजी ने उसे नारायण को कवच दिया। उसने देवगुरु बृहस्पतिजी के साथ देवतागण को लेकर उस मन्त्र और कवच का पुष्कर में जप किया। उसने एक वर्ष तक निराहार रहकर साधना की। इसपर प्रसन्न होकर भगवान् श्रीहरि साक्षात् प्रगट होगये और इन्द्र को इच्छानुसार वर दिया, साथ ही लक्ष्मीस्तोत्र, कवच और ऐश्वर्यवर्धन मन्त्र दिया। इन्द्र ने क्षीरसागर में जाकर उस लक्ष्मीस्तोत्र और कवच का विधि विधान से पाठ कर लक्ष्मीजी की फिर कृपा प्राप्त की। और अमरावती पर अधिकार किये हुए दैत्यों को हरा कर देवगण को अपने-अपने स्थान पर फिर प्रतिष्ठित कर दिया।

२२ लक्ष्मीस्तोत्रं कवचञ्च ४३

श्रीनारायण ने कहा पुष्कर में तपस्या करते हुए इन्द्र के सामने साक्षात् हरि प्रगट हुए और इच्छित वर मांगने को कहा। इन्द्र ने लक्ष्मी प्राप्ति का वर मांगा। इसपर भगवान् ने इन्द्र को महालक्ष्मी कवच और लक्ष्मी स्तोत्र दिया और वे अन्तर्धान हो गये और इन्द्र लक्ष्मीजी को प्रसन्न करने के लिये देवगण के साथ श्रीविष्णु की आज्ञा से क्षीरसागर के तटपर चले गये।

२३ महालक्ष्मीचरितम् ४४

इन्द्र ने महालक्ष्मी के कवच को सद्रत्नगुटिका में रखकर अपने गले में बांधकर मनसे दिव्यस्तवन का स्मरण करते हुए भगवती को प्रसन्न करने में मन लगाया। देवगण भी अति दीन भाव से आंखों में आंसू लाकर और विनीत होकर जगद्धात्री की पूजा में लगे। भगवती प्रसन्न होकर प्रगट हुईं और ब्राह्मण यदि उनके पास रहने की आज्ञा दें तो रहने का आश्वासन दिया। इसपर सभी ब्राह्मण वहां उपस्थित हो गये। इनमें अङ्गिरा, प्रचेता, क्रतु, भृगु, पुलह

मरीचि, और अत्रि आदि प्रमुख हैं। इन्होंने ईश्वरी लक्ष्मी की पूजा विधिविधान से की और लक्ष्मीजी से देवभवन तथा मर्त्यलोक में जाने की प्रार्थना की। इसके बाद महालक्ष्मीजी ने पुण्यवान्, सुनीति को जाननेवाले गृहस्थ और राजा लोगों के पास रहने की बात कहकर जिनके पास वह नहीं रहतीं उन व्यक्तियों और स्थानों की विस्तार से गणना की। इसपर देवता, ऋषियों एवं मुनिगण ने भगवती को प्रणाम किया। फिर देवगण को निश्चल लक्ष्मी की प्राप्ति हो गई।

२४ गणेशस्य एकदन्तत्व विवरणम् ४४४

नारदजी ने भगवान् नारायण से गणेशजी के एकदन्त होने के सम्बन्ध में पूछा। भगवान् ने कहा एक वार कार्तवीर्य जङ्गल में शिकार खेलने के लिये गया। वहां बहुत मृगों की शिकार कर वह बहुत थक गया। दिन बीतने पर सन्ध्या के समय वह जमदग्नि ऋषि के आश्रम के निकट अपनी सेना के साथ ठहर गया। प्रातःकाल उठकर स्नान, सन्ध्या से निवृत्त होकर उसने दत्तात्रेय द्वारा दिये गये मन्त्र का जाप किया। मुनि ने राजा को शुष्क औष्ठ, कण्ठ, तालुवाला देखकर प्रेम से कुशल पूछा। राजा ने सादर विनम्र प्रणाम किया और ऋषि ने उन्हें शुभाशीर्वाद से वर्द्धापन किया। राजा ने अपने अनशन का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। राजा को मुनि ने निमन्त्रण दिया और कामधेनु से आकर सारी बातें कह दीं। माता कामधेनु से सान्त्वना पाकर जमदग्नि प्रसन्न हुए। उस कामधेनु ने सम्पूर्ण भोज्य सामग्री और पाकपात्र दिये। महर्षि ने परिपक्व फल, मिष्टान्न, दुग्ध, घृत, शर्करा, मोदक, ताम्बूलादि, सम्पूर्ण सामग्री से राजा को सेना सहित भोजन कराया। इसपर विस्मित होकर राजा ने पूछा कि मेरे से असाध्य इतनी विशाल सामग्रियां कहां से आईं। इसपर उसके सचिव ने कपिला गौ का ही सारा महत्त्व बतलाया। इसपर लोभी राजा ने महर्षि जमदग्नि से उस कामधेनु को मांगा। कर्म की विचित्र गति है पुण्य कर्म से

पुण्यगति और पापकर्म से दुर्गति होती है। कर्म में बन्धे जीव की गति औ विस्तार का कोई पता नहीं। अतः सज्जन पुरुष सदा ही कर्म का क्षय किया करते हैं

सा विद्या तत्तपोज्ञानं स गुरुः स च बान्धवः।
सा माता स पितापुत्रस्तत्क्षयं कारयेत्तु यः॥

इस कर्मभोग के रोग को कृष्णभक्ति रसायन से भक्त वैद्य ही शमन करत है। भगवती जगद्धात्री महामाया ही इसमें प्रधान है। कार्तवीर्य माया से मोहि होकर महर्षि जमदग्नि से कामधेनु को मांगने के लिये बड़ी अनुनय विनय कर लगे। मुनि ने बहुत टालमटोल की। अन्त में राजा ने हठ से कामधेनु को लाने लिये नौकर को भेजा। महर्षि ने कपिला के पास जाकर अपना दुःख कहा इसपर कामधेनु ने कहा कि यदि राजी होकर आप राजा को मुझे देंगें तो मैं सह जाऊँगी नहीं तो कभी भी नहीं जाऊँगी। आप सन्तोष करें। यह कहक कामधेनु ने कई शस्त्र अस्त्र और बड़ी सेना रच डाली। उसके शरीर से क कोटि नाना भील जातियां उत्पन्न हुई। मुनि को अब निर्भय रहने का आश्वास दिया। इस सब तैयारी का पता राजा के नौकरों ने उसे तत्काल दिया इस उसे बड़ी चिन्ता हुई।

२५ जमदग्नि कार्तिवीर्यार्जुनयुद्धम् ४४

महर्षि जमदग्नि के पास दुःखित हृदय से कार्तवीर्य ने अपना दूत भेजा मुझ अतिथि को चाहे तो आप युद्ध दें चाहे अपनी कामधेनु। मुनि ने कहा कामधेनु को बलात् राजा मांगता है तो मैं उसे युद्ध ही देना चाहता हूं। युद्ध पूरी तैयारी के बाद राजा ने महर्षि को प्रणाम किया और तुमुल युद्ध हुआ राजा मूर्छित होकर गिरपड़ा, तब कृपानिधि महर्षि ने अपनी सारी सेना को स लिया और कमण्डलुजल से शरीर को छिड़क कर आशीर्वाद दिया कि जा

जय हो। फिर राजा ने प्रणाम कर महर्षि से आशीर्वाद लिया और राजा को स्नान, भोजन कराकर जाने के लिये कहा। ब्राह्मण स्वभाव से ही कोमल होते हैं। दूसरे लोग छूरे की धारा के समान असाध्यवद्दाष्य। राजा नहीं माना और अपने हठ को फिर से दोहराया "या तो युद्ध करो या कामधेनु दो।"

२६ पुनः जमदग्नि कार्तवीर्यार्जुनयुद्धम् ४४६

महर्षि ने राजा की हठ भरी वातों को सुनकर उसे नीतियुक्त वचन कहे। हे राजन् देखो तुम्हारा कितना आतिथ्य किया गया। जब तुम युद्ध में मूर्छित होगये तो तुम्हें आशीर्वाद देकर चेतना दी। इसपर भी युद्ध करने की वात को राजा ने वार-वार दोहराया। युद्ध आरम्भ हुआ। कपिला कामधेनु के प्रताप से महर्षि ने राजा को मूर्छित कर दिया। फिर क्रमशः राजा ने अग्निवाण, वरुणास्त्र, गान्धर्व, नागास्त्र, गारुड़ास्त्र, माहेश्वर, वैष्णव, जृंभणास्त्र एवं नारायणास्त्रों का प्रयोग किया जिनका समुचित उत्तर उन-उन शस्त्रों के प्रतिकार के अस्त्रों को काम में लेकर मुनि ने दिया। राजा फिर मूर्छित होकर गिर गया। इसपर मुनि ने दया कर उसे चेतना प्रदान की। उठते ही राजा ने अपनी शूल को लेकर मुनि के ऊपर आक्रमण किया पर मुनि ने उसे बीच में ही काट दिया। ब्रह्माजी ने आकर बीचबचाव किया और उनके कहने से वह घर लौट गया।

२७ ससैन्यस्य राज्ञः मुनितपोवने पुनर्गमनम् ४५१

घर से लौटकर फिर जमदग्नि के आश्रम में पूरी सेना की तैयारी कर राजा गया। इस विशाल सेना की सामग्री को देखकर महर्षि जमदग्नि के आश्रम के लोग मूर्छित हो गये और राजा बल से धेनु को लेकर घर जाने को तैयार होगया। महर्षि ने वाणों का एक ऐसा जाल बिछाया कि सारी सेना बिंध गई। राजा वार-वार मूर्छित हुआ परन्तु मुनि ने उसे नहीं मारा परन्तु उस दुष्टात्मा ने अपने

सब शस्त्रों की सामर्थ्य की परीक्षा कर फिर अन्त में शक्तिबाण का उपयोग किया। उसने मुनि की छाती को पार कर अपने स्थान में हरि के पास शरण ली और मूर्छित होकर मुनि के वहीं प्राणपखेरू उड़ गये वह ब्रह्मलोक में चले गये राजा ने ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त कर अपनी राजधानी की ओर प्रस्थान किया उधर कपिला भी तात! तात!! कहती हुई गोलोक चली गई और वहां श्रीकृष्ण को यह सारी घटना उसने कह सुनाई। कामधेनु को कृष्ण ने ब्रह्माजी को दिया ब्रह्माजी ने भृगु को, और भृगु ने प्रसन्न होकर पुष्करक्षेत्र में जमदग्नि को दिया इधर रेणुका ने पति को स्वर्गत सुनकर महर्षि जमदग्नि के शव के पास जाकर अ गोद में लेकर विलाप किया और मूर्छित हो गई। रेणुका ने अपने पुत्र परशुराम को याद किया। योग के प्रभाव से परशुराम ने पुष्कर से आकर बहुत विलाप किया और सुन्दर चिता तैयार की। रेणुका ने राम को छाती से लगाया और कपोल तथा शिर में चुम्बन कर जोर-जोर से रुदन किया और परशुराम को तपस्या करने के लिये कहा। परशुरामजी ने माता की आज्ञा को अनसुनी क २१ बार पृथ्वी को क्षत्रियों से शून्य कर दूँगा यह प्रतिज्ञा की। इस पर भी आततायी लोगों को मारने की वेद आज्ञा देते हैं। इससे प्रसन्न होने माता से कहा।

पितुः शासनहन्तारं पितुर्वधविधायकम्। यो न हन्ति महामूढो रौरवं स व्रजेद्ध्रुवं
अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहा। क्षेत्रदारापहारी च पितृबन्धुविहिंसकः॥
सततं मन्दकारी च निन्दकः कटुवाचकः। एकादशैते पापिष्ठा वधार्हा वेदसम्मताः
द्विजानां द्रविणादानं स्थानान्निर्वासनं सति। वपनं ताडनञ्चैव धर्म्ममाहुर्म्मनीषिण

रोते हुए परशुरामजी को रेणुका ने ज्ञान दिया और कर्मबन्धन के लि भगवद्भक्ति को ही एक मात्र उपाय बतलाया।

---

२८ ## भृगुरेणुकासम्वादः ४५४

रेणुका ने भृगु से कहा कि ऋतुधर्म का आज चतुर्थ दिवस है अतः तुम अकस्मात् ही पूर्व पुण्यों के प्रताप से उपस्थित हो गये हो अतः मेरे स्वामी के साथ सती होने की व्यवस्था के सम्बन्ध में निर्णय दो। इसपर भृगुजी ने चतुर्थदिवस पति के लिये शुद्ध कहा गया है न कि दैव और पितृकार्यों के लिये। इसलिये महर्षि के साथ सती होकर स्वर्गयात्रा करने की प्रार्थना की।

स पुत्रो भक्तिदाता यः स्नाचस्त्रीयाऽनुगच्छति।
सबन्धुर्दानदाता यः स शिष्यो गुरुमर्चयेत्॥
सोऽभीष्टदेवो यो रक्षेत् स राजा पालयेत्प्रजाः।
स च स्वामी प्रियाधर्मे मतिं दातुमिहेश्वरः॥
स गुरुर्धर्मदाता यो हरिभक्तिप्रदायकः। एते प्रशंस्या वेदेषु पुराणेषु च निश्चितम्॥

फिर भृगु से रेणुका ने स्वामी के साथ जाने योग्य और न जाने योग्य स्त्रियों के लिये पूछा। इसपर भृगु ने बालक पुत्रवाली, गर्भिणी, अऋतुमती, रजस्वला, कुलटा, गलित व्याधिवाली पतिसेवाहीन, कटु बोलनेवाली अभक्त स्त्री अयोग्य है तथा दूसरी सब पति को प्राप्त करती हैं। कृष्णभक्त पति के पीछे साध्वी उसे प्राप्त करती है। फिर रेणुका ने भृगुजी के धर्मयुक्त वचन अपने जीवन में पालने के लिये कहा और पति के साथ सती होकर ब्रह्मलोक को गई। तब फिर ब्रह्माजी के यहाँ जाकर परशुरामजी ने कार्त्तवीर्य की दुष्टता और पिताजीकी स्वर्गगति का वर्णन किया और अपनी प्रतिज्ञा कह सुनाई। ब्रह्माजी ने प्रकृतिगत जन्म-मरण के इस अनादि प्रवाह में इस प्रतिज्ञा को बाधक कहकर शिवजी के पास जाकर उपाय पूछने को कहा।

---

२९ परशुरामस्य शिवसमीपेगमनम् तपस्यीद्योगंश्च ४५१

परशुराम ब्रह्माजी से आज्ञा लेकर शिवलोक को गये। वहां द्वार पर दो भयानक आकृतिवाले द्वारपालों को उन्होंने देखकर मनमें डरते हुए कहा कि मेरे साथ कार्तवीर्य का सहज वैर पिताजी के द्वारा अच्छा व्यवहार करने पर भी उन्हें मारने के कारण हो गया है। इसपर ब्रह्माजी ने मुझे भगवान् शंकरजी के दर्शनों के लिये कहा है मुझे शिवजी से मिलने का अवसर दो। शङ्करजी ने परशुरामजी को लिवालाने की आज्ञा दी और उनने शङ्करजी की सभा में पार्षद गण, कार्तिकेय, गणेश, माता पार्वती आदि को देखकर विनम्र भाव से प्रणाम किया और भगवान् की भक्तिभाव से स्तुति की। भगवान् शङ्कर बहुत प्रसन्न हुए और परशुरामजी को आशीर्वाद प्रदान किया।

३० शिवशिवासमीपे परशुरामस्य वरप्रार्थनम् ४६१

पार्वती एवं शङ्करजी के यहां जानेपर शङ्करजी ने परशुराम को आने का कारण पूछा। परशुराम ने पिता के असामयिक दारुण मृत्यु का आदि से अन्त तक वर्णन कर कार्तवीर्य की कृतघ्नता की निन्दा की और २१ वार निःक्षत्रिय भूमि को करने की अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा कहकर अपनी रक्षा करने और शरण में आने की बात कही। शङ्कर पार्वती दोनों ही इस विषय को सुनकर हक्के-बक्के रह गये और परशुराम को हर सम्भव उपाय से समझाया। परन्तु परशुराम ने मरने की कड़ी धमकी दी और अपने निस्तार का उपाय पूछा। इसपर शङ्करजी ने पार्वती और भद्रकाली को समझाकर उनके निर्देश से भृगु को त्रैलोक्यविजय नामक कवच, पूजाविधान, मन्त्र, और सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र चलाने की विद्या सिखाई। परशुराम ने दीर्घकालतक विद्यायें सीखकर, और तीर्थ में मन्त्रसिद्धि कर शङ्कर को प्रणाम कर अपने स्थान की ओर गमन किया।

३१ तुष्टेन शिवेन स्वकवचादिदानम् ४६४

शङ्कर ने प्रसन्न होकर जो कवच दिया उसके सम्बन्ध में नारदजी ने विस्तार से पूछा। इसपर श्रीनारायण ने त्रैलोक्यविजय कवच का अविकल विधान पाठ और सिद्धि विधान कहा। इसको सिद्ध करनेवाला जीवन्मुक्त हो जाता है। कवच की अद्वितीय फलश्रुति।

३२ परशुरामाय स्तोत्रमन्त्रपूजाप्रदानम् ४६७

परशुराम ने इसके बाद स्तोत्र, मन्त्र और पूजाविधान पूछा। इसपर शङ्करजी ने "ॐ श्रीं नमः श्रीकृष्णाय परिपूर्णतमाय च" यह सोलह अक्षरों का मन्त्र बताया। इसकी पांच लाख संख्या जपने से सिद्धि होजाती है साथ ही इसके जप का दशांश हवन, उसका दशांश अभिषेक, उसका दशांश तर्पण और उसका दशांश मार्जन करना आवश्यक है। भगवान् श्रीकृष्ण की राधा सहित सम्पूर्ण देवगण ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर के साथ पूजा की गई। गणेश, दिनेश, अग्नि, पार्वती, विष्णु एवं शिव की पूजा कर सामवेदोक्त स्तोत्र बताया। इसको कहकर उन्होंने पुष्करराज में जाकर तपस्या करने को आदेश दिया। जिससे मन्त्रसिद्धि के साथ सम्पूर्ण वाञ्छित मिलेगा।

३३ परशुरामस्य तपश्चरणम् ४७२

परशुराम पुष्कर तीर्थ में गये और भगवती दुर्गा एवं काली समेत शङ्करजी को प्रणाम कर इस मन्त्रराज को भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए प्राणायामादि से मन और शरीर को संयम कर सिद्ध किया। इसपर श्रीकृष्ण प्रसन्न होकर प्रगट हुए। परशुराम ने तब २१ बार पृथ्वी को क्षत्रियविहीन करूँ यह वर मांगा और श्रीकृष्ण भगवान् के चरणारविन्द में भक्ति मांगी। 'तथास्तु' कहकर श्रीकृष्ण

अन्तर्धान हो गये। उसी समय भगवान् को ज्योंही भक्तिपूर्वक प्रणाम कर रहे थे कि उनका दहिना अङ्ग फड़कने लगा। मङ्गलसूचक सुस्वप्न आये और समय की प्रतीक्षा कर कार्तवीर्य से युद्ध करनेकी वह तैयारी करने लगे। जाते समय उन्हें मङ्गलकारी शुभ शकुन हुए। रात्रि में भी जयसूचक मङ्गलमय स्वप्नों के दर्शन होने से उन्हें अपनी विजय के लिये मनमें दृढ़ विश्वास हो गया।

३४ परशुरामस्य राजसमीपे दूतप्रेषणम् ४७८

नर्मदा के किनारे अपने भाई-बन्धुओं के साथ आकर परशुराम ने अपना दूत युद्ध के आह्वान के लिये और २१ बार बिना क्षत्रियों की पृथ्वी बना देने की प्रतिज्ञा को बताने के लिये राजा के पास भेजा। युद्ध का आमन्त्रण मानकर ज्योंही राजा तैयारी कर जाने लगा तो उसकी स्त्री ने रोका। इसपर कार्तवीर्य ने अपनी आशंकामूल भीति को रानी से कहकर अपने दुःस्वप्नों की बातें विस्तार से कही। इसपर उसकी स्त्री मनोरमा ने युद्ध न करने के लिये अपने पति कार्तवीर्य को समझाया। विप्र के साथ विरोध न कर सदा विनम्रभाव से झुकने में ही अपना सब का हित है। सती स्त्रियों के लिये सौ पुत्रों से भी अधिक प्रिय पति ही वेदों में साक्षात् भगवान् हरि ने बतलाया है। कार्तवीर्य ने अपनी स्त्री को बार-बार न रोकने के लिये समझाया और काल की विचित्र गति कहकर अपनी मृत्यु जब परशुराम के हाथ में ही लिखी है तो फिर टालनेवाला कौन है। इस प्रकार सान्त्वना देकर अपनी अक्षौहिणी सेना को लेकर कार्तवीर्यार्जुन ने गले से गले मिलकर स्त्री से युद्ध के लिये विदा मांगी।

३५ राज्ञो युद्धयात्रा ४७९

राजा के जाने के पहले ही मनोरमा ने अपने शरीर को योगमाया से षट्चक्र भेदन कर परब्रह्म में अपनेको मिला लिया। राजा ने उस सर्व

को मृत देखकर वहुत विलाप किया परन्तु अव क्या होसकता था। इसपर आकाशवाणी हुई और उसने घोषणा की कि हे राजन् स्थिर रहो रोदन मत करो। दत्तात्रेय तुम्हारे गुरु हैं तुम ज्ञानी जनमें श्रेष्ठ हो यह संसार जल के बुलबुलों के समान है। वह मनोरमा कमलालय के यहां चली गई अव तुम भी शीघ्र ही युद्ध में जाकर वैकुण्ठ का मार्ग ग्रहण करो। इसपर शोक को छोड़कर राजा ने अपनी प्राणप्यारी मनोरमा के लिये चन्दनकाष्ठ की चिता बनाई और अपने पुत्र से उस का दाह संस्कार करवाया और और्ध्वदेहिक क्रियां के बाद मनोरमा के पुण्य से ब्राह्मणादि को प्रचुर धनधान्य प्रदान किया। राजा दुःखी हृदय से युद्धभूमि में गया परन्तु मार्ग में उसे अशुभ शकुन होते चले गये। युद्धक्षेत्र में जाकर राजा ने भृगु एवं परशुराम को प्रणाम किया और राजा को भृगु ने स्वर्ग जाओ यह आशीर्वाद दिया। फिर रथ पर चढ़कर ब्राह्मणों को उसने युद्ध करने के पहले प्रचुर मात्रा में दान दिया। परशुराम ने कार्तवीर्य से उसके इस दुष्टाचरण का कारण पूछा। इसपर राजा ने ब्राह्मण, मुनि, योगी, भक्त चारों वर्णों की परिभाषा बताकर कामधेनु के प्रति आकर्षण ही राजसी राजा के लोभ का और महर्षि जमदग्नि की मृत्यु का कारण वना। इसके बाद युद्ध में कार्तवीर्य मारा गया और उससे शिव कवच लिया। शिवकवच का वर्णन।

३६ सुचन्द्रण नृपतिना सह रामस्ययुद्धम् ४०६

मत्स्यराज के बाद कार्तवीर्य ने नाना देशों के राजाओं को लड़ने के लिये भेजा परन्तु सभी परशुराम के सामने हतवीर्य हो गये। तीन रात तक राजाओं के साथ युद्ध किया और बारह अक्षौहिणी सेना को अपने फरशे से मार गिराया। अब सूर्यवंशी राजा सुचन्द्र इन राजाओं का मरा देख अपने एक लाख राजाओं के साथ आया। उसे भी परशुराम ने सेना समेत फरशे से मौत के घाट उतारा। परन्तु सुचन्द्र के गले में कालीकवच होने से उसकी रक्षा साक्षात् भगवती काली

महामाया ने की। इसपर परशुरामजी को आश्चर्य हुआ। ब्रह्मा ने आक
परशुरामजी से सारी बात कही और दशाक्षरी महाविद्या को सुचन्द्र से मांग
के लिये कहा तब ही कार्य में सिद्धि हो सकती है अन्यथा नहीं।

३७. कालीकवचम् ४८

नारदजी ने भद्रकाली के कवच के सम्बन्ध में पूछा। श्रीनारायण
विस्तार से श्रीकालीकवच का विधान समझाया।

३८ सुचन्द्रं पतितंदृष्ट्वाऽपरैः राजभिः सह रामयुद्धम् ४९

रामेणपाशुपतास्त्रग्रहणम् ४९

विष्णुना रामाय लक्ष्मीकवचकथनम् ४९

सुचन्द्र युद्ध में पराजित होकर मारा गया तब राजाओं ने परशुराम
युद्ध किया। सुचन्द्र के पुत्र पुष्कराक्ष से जब युद्ध हो रहा था तो परशुराम
भाइयों ने शूल फेंका तो वह फूल की मालिका बनाई। ऐसे ही विचित्र चमत्का
उसने दिखाये। तब अन्त में शङ्कर भगवान् की साधना से परशुराम ने पाशु
अस्त्र धारण किया परन्तु भगवान् नारायण ने बीच में ही विप्र का वेष धर
पुष्कराक्ष को मारने और कार्तवीर्य पर जय पाने के लिये लक्ष्मीकवच की साध
की बात कही। परशुराम ने नारायण से परिचय पूछकर पुष्कराक्ष और उस
पुत्र के पास से कवच लाने के लिये याचना की। विष्णु भगवान् स्वयं उन
पास गये और दोनों पितापुत्र से उस कवच को मांग लिया। नारद के पूछने
श्रीनारायण ने बताया कि इस कवच को सनत्कुमार ने पुष्कराक्ष को दिया
यह मन्त्र दश अक्षरों का है। फिर लक्ष्मी कवच का पाठ परशुराम को दि
जिससे वह विजयी बने।

श्रीनारदजी के द्वारा दुर्गाकवच के विषय में पूछने पर श्रीनारायण ने ब्रह्माण्डविजय दुर्गा कवच का अविकल वर्णन किया।

उन दोनों कवचों को लेकर सहस्राक्ष और उसके पुत्र को परशुराम ने एक सप्ताह तक युद्ध कर मार दिया। अब कार्तवीर्य स्वयं युद्ध में आ उपस्थित हुआ। जब आमने-सामने दोनों आये तो रथ से उतरकर राजा ने परशुराम को प्रणाम किया। परशुराम ने समयोचित आशीर्वाद दिया कि जाओ सकुशल स्वर्ग में रहो। अब भयङ्कर युद्ध हुआ और परशुराम राम के भी इसमें दांत खट्टे होगये। एकाएक आकाशवाणी हुई कि कार्तवीर्य के पास कृष्णकवच है। शम्भु उसे मांग कर परशुराम को देसकते हैं। इसपर शंकरजी ने जाकर कार्तवर्य से मांगकर कृष्णकवच परशुरामजी को दिया। देवगण अपने-अपने स्थानों को चले गये और परशुरामजी ने कार्तवीर्य को फिर युद्ध के लिये बुलाया और कालभेद से जय तथा विजय और पराजय होने की बात कही। इस प्रकार प्रणाम कर कार्तवीर्य ने कालभगवान् की सारी विडम्बना कह सुनाई और श्रीकृष्ण की प्राणाधिष्ठात्री प्रकृति माहेश्वरी की विस्तार से लीला गाई। इसके बाद कार्तवीर्य रथपर चढ़कर युद्ध के लिये तैयार हुआ और ब्रह्मास्त्र से परशुरामजी द्वारा मारा गया। उन्होंने इस प्रकार २१ बार पृथ्वी को क्षत्रियविहीन बना दिया। इसपर प्रसन्न होकर सारे देवगण ने पुष्पवृष्टि की और ब्रह्माजी ने आकर कण्व-शास्त्रोक्त सदुपदेश कहा। उन्होंने पिता, माताऔर गुरुजन की भूरि-भूरि प्रशंसा की और भगवान् में भक्ति कर श्री गुरुचरणों की शरण में होने का आदेश दिया।

४१ भार्गवस्य कैलाशगमनम् ५०

कैलाशवर्णनम् ५०

अब अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर परशुराम कैलाश पर भगवान् परम गुरु शि को नमस्कार करने गये वहां पर माता पार्वती, गणेश, और कार्तिकेय सब देखा सबसे बातचीत कर ज्योंही परशुराम जाने लगे तो गणेश ने उन्हें रोक और भगवान् शंकर अभी निद्रित है उनके जागने पर उनसे आज्ञा लेकर मैं साथ ही चलूंगा इसलिये कुछ समय तक ठहरने की सलाह दी। इसपर परशुराम ने बृहस्पति समान युक्तियुक्त वचन कहा।

४२ गणेश्वरसमीपे रामस्य शिवशिवादिदर्शनप्रार्थनम्

तयोः कथोपकथनञ्च ५०

ज्ञाननिरूपणम् ५०

जिन भगवान् शंकर के प्रसाद से मैंने २१ बार पृथ्वी को क्षत्रियों से शून कर दिया और महावीर कार्तवीर्य तथा सुचन्द्र को मारा उनके दर्शन औ माताजी के दर्शनों से कृतकृत्य हो मैं शीघ्र ही घरपर जाऊँगा। जि महादेवाधिदेव जगद्गुरु शंकरजी ने नानाविद्या और दुर्लभ शास्त्रों को पढ़ा परम गुरु शंकरजी के दर्शन करने की इच्छा है। इसके उत्तर में श्रीगणेश कहा हे भ्रातः! कुछ क्षण ठहरो। एकान्त में स्त्रीयुक्त पुरुष को न देखे। उन रङ्ग में भङ्ग करनेवाला कालसूत्रनामक नरक में जबतक सूर्य, चन्द्रमा की स्थि है तबतक रहता है। विशेष रूप से माता, पिता, गुरु और राजा को सुरत में बिलकुल न देखे। ऐसा करनेवाले का सात जन्म तक स्त्री विच्छेद होता है।

श्रोणीवक्षःस्थलंवक्त्रं यः पश्यति परस्त्रियाः।
कामतोऽपि विमूढश्च सोऽन्धो भवति निश्चितः ॥

इसपर भृगुनन्दन परशुरामजी ने कहा हे गणेश निर्विकार बालक का अपने माता-पिता के पास जानेका कोई डर नहीं। ये पार्वती परमेश्वर केवल तुम्हारे ही नहीं सारे जगत् के माता-पिता हैं। अतः बालक से माता-पिता को क्या संकोच है ? फिर हँसकर परशुरामजी ने अन्तःपुर में जाने की इच्छा प्रकट की। अब गणेशजी भी कुछ शान्त हो गये। उन्हों ने कहा कि अज्ञानी मनुष्य ज्ञानवान् से ही ज्ञान पाता है और पिता, भाई के मुख से भाग्यशाली ही ज्ञान सुनता है परन्तु मुझ मन्दबुद्धि का भी हे भ्रातः निवेदन सुनो जो निर्गुण है, वह निर्लिप्त हैं। शक्तियों से वह संयुत नहीं है, परन्तु परमशक्तिस्वरूप आनन्दकन्द सच्चिदानन्द जब अपनी ज्योति से प्रकृति में अपना वीर्य छोड़ते हैं तो डिम्ब होता है, वह दिव्य लाख वर्ष तक रहकर परब्रह्म के निःश्वास से वायु फिर मुख, विन्दु और उससे सहसा जल होजाता है और उसमें डिम्ब एक लाख वर्ष तक डिम्ब रहकर फिर सारे विश्वों का आधार महा विराट् उत्पन्न होता है। उस कृष्ण के गात्रलोम के समान संख्यावाले ब्रह्माण्ड हैं उन सब में प्रत्येक ब्रह्मा, विष्णु, शिव और देवगण हैं। अपने स्वांशकला से भगवान् हरि नानारूपधारी होते हैं। उन्ही की पञ्चप्रकृतियां स्त्रीमात्र में सर्वत्रव्याप्त हैं। राधा, पद्मा, सावित्री, दुर्गादेवी तथा सरस्वतीरूप में विराजमान हैं, क्या उनकी लज्जा कहीं चली जाती है ? इस प्रकार परमप्रभु श्रीकृष्ण के गुणानुवाद को कहकर श्री परशुराम से कुछ ठहरने को कहा।

४३ गमनव्याघाते रामस्य गणेशेन सह वाग्युद्धम् ५०८
गणेशं प्रति परशुनिक्षेपायोद्योगः ५०६

इसी बीच में परशुराम ने जाने की शीघ्रता की, परन्तु श्रीगणेश ने उन्हें रोका और दोनों का वाग्युद्ध हुआ। इसपर गणेश पर अपने फरशे से आक्रमण करने की पूरी तैयारी की परन्तु कार्तिकेय के बीच में पड़ने से कुछ सुलह हो गई

और गणेशजी ने योगप्रभाव से सारे ब्रह्माण्डों का परशुराम को दर्शन करा दिया। स्तम्भित परशुराम को वैकुण्ठ, गोलोक सब की लीलायें दिखाईं पड़ीं। वहां पर परशुराम का क्षत्रियनाश के समय किये गये भ्रूणहत्यादि पापों से छुटकारा किया गया और फिर उन्हें चेतना दिलाकर उनका स्तम्भन दूर किया। अब परशुराम ने गुरुदत्त कवच और स्तोत्रों का पारायण अभीष्टदेव श्रीकृष्ण, जगद्गुरु शम्भु का स्मरण करते हुए किया। गणेश ने इस प्रकार वार करते हुए फरशेको अपने बायें दांत में लगाया वह अव्यर्थ अस्त्र उनके दांत को समूल उखाड़ लाया। वह दांत लहू समेत शब्द के साथ गिरा और सभी लोग त्राहि-त्राहि करने लगे। इस कोलाहल से भगवती पार्वती और शंकरजी बाहर आगये। और गणेश के दांत को देखकर पार्वती जी ने स्कन्द से इसका कारण पूछा।

४४ गणेशदन्तभङ्गं दृष्ट्वा रामम्प्रति गौर्याः उपालम्भः ५१

पार्वतीजी ने गणेशजी के दांत को टूटा देखकर और परशुराम को इसके लिये उत्तरदायी जानकर उन्हें उलाहना दिया कि फरशे की परीक्षा क्षत्रियों पर कर क्या अब घरवालों पर इसे चलाने का दुःसाहस करते हो। शंकरजी से अमोघ अस्त्र पाकर क्या तुम्हें इतना अभिमान हो गया ? यह कहकर शोकाकुल पार्वती क्रोध से परशुराम को मारने को तैयार हो गईं। इसपर परशुराम ने गुरुदेव श्रीकृष्ण को मन से प्रणाम कर स्मरण किया और एक सुन्दर सुकुमार बालक कोटि सूर्य के प्रकाशवाला उन सब के सामने उपस्थित हुआ। शंकरजी एवं पार्वतीजी ने उन्हें प्रणाम किया। सबको ही बालक शुभाशीर्वाद दिया। शंकरजी ने काण्व शाखोक्त स्तोत्र से उनकी पूजा की और उन्हें अतिथिरूप में पाकर अपने को धन्य समझा। तब भगवान् ने अपना परिचय दिया कि श्वेतद्वीप से आया हूं और श्रीकृष्णभक्ति विहीन की निन्दा कर कृष्णभक्तों का गणन किया और गुरुतत्त्व की प्रशंसा की। श्रीकृष्ण ने परशुराम और गणेश के विवाद को

दैवी घटना बताकर उन्हें शान्त किया। तदनन्तर गणेश महिमा और गणेश के आठ नामों का पूर्ण निर्वचन।

४५ गौरीम्बोधयित्वा रामम्प्रतिस्तवादिकरणे विष्णोरुपदेशः ५१५

दुर्गास्तोत्रम् ५१७

पार्वती को इस प्रकार समझाकर विष्णु ने परशुराम को समझाया। हे राम! तुमने गणेशजी का फरशे से दांत उखाड़कर अपराध किया है अतः काण्वशाखोक्त स्तोत्र से दुर्गाजी का और मेरे कहे हुए स्तोत्र से गणपतिजी का तुम पूजन करो। यही भगवती सब की आधार शक्ति हैं इनको प्रसन्न करना ही इष्ट है। यह कहकर विष्णु अपने लोक में चले गये और परशुराम ने गङ्गाजी में स्नान कर विष्णुदत्त स्तोत्र से गणेश और दुर्गाजी की पूजा की। दुर्गास्तोत्र का निरूपण उसके महत्त्व का वर्णन।

४६ गणेशाय तुलसीदाननिषेधकथनम् ४२०

तुलसी गणेशसम्वादः ५२१

दुर्गाजी, गणेश और शंकरजी की स्तुति कर परशुरामजी जाने को तैयार हुए इसपर नारदजी ने गणेश के तुलसी नैवेद्य का भोग क्यों नहीं लगता यह पूछा तब श्रीनारायण ने ब्रह्मकल्प का वृत्तान्त सुनाया। तीर्थों में एक बार यात्रा करती हुई तुलसी ने युवक गणेशजी को गङ्गातीर पर देखा। उसने सकाम होकर गणेश से गजानन, लम्बोदर और गजवक्त्र होने का कारण पूछा और गणेशजी की हँसी करने लगी और उनके तर्जनी के अग्रभाग को तोड़ने लगी। इसपर जब गणेश का ध्यान भङ्ग हुआ तो तुलसी से उन्होंने पूछा कि हे वत्से! तुम कौन हो तुमने तपस्वीगण का ध्यान भङ्ग करने में क्या पाप नहीं समझा? इसपर श्रीगणेश को तुलसी ने अपने स्वामी बनने की प्रार्थना की। इसपर श्रीगणेश ने विवाह कर

स्त्री के साथ जीवन बिताने में दुःख व क्लेश बतलाये और इसे संसार में बन्धन का कारण बतलाया। इसपर तुलसी ने उसे शाप दिया कि जाओ तुम्हारा दारग्रह (विवाह) होगा और गणेश ने तुलसी को शाप दिया कि हे देवि! तुम असुरग्रस्ता बनोगी। इसके बाद महान् लोगों के शाप से वृक्ष बनोगी। इसे सुनकर तुलसी रोने लगी। इसपर कृपा कर यह कहा कि पुष्पों की सारभूता भगवान् कृष्ण की परमप्रिया तुम बनोगी और श्रीकृष्णपूजा में तुम्हारा प्रमुख स्थान रहेगा। यह कहकर गणेश तपस्या के लिये बदरिकाश्रम चले गये। तुलसी ने दुःखी हृदय से एक लाख वर्ष तक तप किया फिर गणेश के शाप से शंखचूड़ की स्त्री बनी। फिर जब वह असुर शंकरजी के त्रिशूल से मर गया तब उनकी कला के अंश से यह नारायणप्रिया वृक्ष बन गई। इस प्रकार तुलसी गणेशजी के नहीं चढ़ती। यह संक्षेप से गणेशखण्ड का इतिहास है। इसको सुननेवाले को राजसूययज्ञ का फल मिलता है और सभी कामनायें पूरी होजाती हैं।

॥ इति तृतीयं श्रीगणेशखण्डम् ॥

शुभमभूयात्।

श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीमन्महर्षि वेदव्यास प्रणीतम् ।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराणम् ।

तत्रादौ प्रथमं ब्रह्मखण्डं प्रारभ्यते ।

प्रथमोऽध्यायः ।

श्रीपुराणावयवाय नमः ।

तत्रादौ मङ्गलाचरणम् ।

गणेशब्रह्मेशसुरेशशेषाः सुराश्च सर्वे मनवो मुनीन्द्राः ॥
सरस्वतीश्रीगिरिजादिकाश्च नमन्ति देवाः प्रणमामि तं विभुम् ॥
स्थूलात् स्थूलतमां तनुं दधतं विराजं, विश्वानि लोमविवरेषु महान्तमाद्यम् ॥
सृष्ट्योन्मुखः स्वकलयापि ससर्ज सूक्ष्मां नित्यां समेत्य हृदि यस्तमजं भजामि ॥

ध्यायन्ते ध्याननिष्ठाः सुरनरमनवो योगिनो योगरूढाः,
सन्तः स्वप्नेऽपि सन्तं कतिकतिजनिभिर्यं न पश्यन्ति तप्त्वा ॥
ध्याये स्वेच्छामयं तं त्रिगुणपरमहो निर्विकारं निरीहं,
भक्तध्यानैकहेतो निरुपमरुचिरश्यामरूपं दधानम् ॥

वन्दे कृष्णं गुणातीतं परं ब्रह्माच्युतं यतः। आविर्बभूवुः प्रकृतिब्रह्मविष्णुशिवादयः॥
अमृतपरमपूर्वं भारतीकामधेनुं श्रुतिगणकृतवत्सो व्यासदेवो दुदोह॥
अतिरुचिरपुराणं ब्रह्मवैवर्त्तमेतत् पिबत पिबत मुग्धा दुग्धमक्षय्यमिष्टम्॥

ओं नमो भगवते वासुदेवाय।

ओं नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत्॥

ओं भारते नैमिषारण्ये ऋषयः शौनकादयः।
नित्यां नैमित्तिकीं कृत्वा क्रियामूषुः कुशासने॥ १॥

एतस्मिन्नन्तरे सौतिमागच्छन्तं यदृच्छया। प्रणतं सुविनीतं तं विलोक्य ददुरासनम्॥
तंसम्पूज्यातिथिंभक्त्याशौनकोमुनिपुङ्गवः। पप्रच्छकुशलं शान्तं शान्तः पौराणिकं मुदा॥
वर्त्मायासविनिर्मुक्तं वसन्तं सुस्थिरासने। सस्मितं सर्वतत्वज्ञं पुराणानां पुराणवित्॥
परं कृष्णकथोपेतं पुराणं श्रुतिसुन्दरम्। मङ्गलं मङ्गलार्हञ्च सर्वदा मङ्गलालयम्॥
सर्वमङ्गलवीजञ्च सर्वदा मङ्गलप्रदम्। सर्वामङ्गलविघ्नघ्नं सर्वसम्पत्करं वरम्॥ ६॥
हरिभक्तिप्रदं शश्वत् सुखदं मोक्षदं भवेत्। तत्वज्ञानप्रदं दारपुत्रपौत्रविवर्द्धनम्॥ ७॥
पप्रच्छ सुविनीतञ्च विनीतो मुनिसंसदि। यथाकाशे तारकाणां द्विजराजो विराजते॥

शौनक उवाच।

प्रस्थानं भवतः कुत्र कुत आयासि ते शिवम्। किमस्माकंपुण्यदिनंवत्स ! त्वद्दर्शनेन॥
वयमेव कलौ भीता विशिष्टज्ञानवर्जिताः। मुमुक्षवो भवे मग्नास्तद्धेतुस्त्वमिहागतः॥
भवान् साधुर्महाभागः पुराणेषु पुराणवित्। सर्वेषु च पुराणेषु निष्णातोऽतिकृपानिधिः॥

श्रीकृष्णे निश्चला भक्तिर्यतो भवति शाश्वती।
तत् कथ्यतां महाभाग ! पुराणं ज्ञानवर्द्धनम्॥ १२॥

गरीयसी या मोक्षाच्च कर्ममूलनिकृन्तनी। संसारसन्निबद्धानां निगडच्छेदकर्त्तनी॥
भवदावाग्निदग्धानांपीयूषवृष्टिवर्षिणी। सुखदानन्ददा सौते ! शश्वच्चेतःसिजीविनाम्॥
यत्रादौ सर्ववीजञ्चपरब्रह्मनिरूपणम्। तस्य सृष्ट्योन्मुखस्यापिसृष्टेस्तुकीर्त्तनं परम्॥
साकारंवानिराकारंपरमात्मस्वरूपकम्। किमाकारञ्च तद्ब्रह्म तद्ध्यानं किञ्च भावनम्॥

ध्यायन्ते वैष्णवाः किम्वा किम्वा सन्तश्च योगिनः ।
मतं प्रधानं केषां वा गूढं वेदे निरूपितम् ॥ १७ ॥

प्रकृतेश्च य आकारो यत्र वत्स ! निरूपितः । गुणानां लक्षणं यत्र महदादेश्च निर्णयः ॥
गोलोकवर्णनं यत्र यत्र वैकुण्ठवर्णनम् । वर्णनं शिवलोकस्य यत्रान्यत् स्वर्गवर्णनम् ॥
अंशानाञ्चकलानाञ्चयत्रसौते ! निरूपणम् । के प्राकृताःकाप्रकृतिःकआत्मा प्रकृतेःपरः ॥
निगूढं जन्मयेषांचादेवानांदेवयोषिताम् । समुत्पत्तिः समुद्राणां शैलानां सरितामपि ॥

के वांशाः प्रकृतेश्चापि कलाः का वा कलाकलाः ।
तासाञ्च चरितं ध्यानं पूजास्तोत्रादिकं शुभम् ॥ २२ ॥

दुर्गासरस्वतीलक्ष्मीसावित्रीणाञ्च वर्णनम् । यत्रैव राधिकाख्यानमत्यपूर्वं सुधोपमम् ॥
जीवकर्मविपाकश्च नरकाणाञ्च वर्णनम् । कर्मणां खण्डनं यत्र यत्र तेभ्यो विमोक्षणम्

येषाञ्च जीविनां यत् यत् स्थानं यत्र शुभाशुभम् ।
जीवितां कर्मणो यस्मात् यासु यासु च योनिषु ॥ २५ ॥
जीविनां कर्मणो यस्मात् यो यो रोगो भवेदिह ।
मोक्षणं कर्मणो यस्मात्तेषाञ्च तन्निरूपय ॥ २६ ॥

नसातुलसीकालीगङ्गापृथ्वीवसुन्धरा । आसां यत्र शुभाख्यानमन्यासामपि यत्र वै ॥
शालग्रामशिलानाञ्च दानानाञ्चनिरूपणम् । अपूर्वं यत्र वा सौते ! धर्माधर्मनिरूपणम् ॥
णेश्वरस्य चरितं यत्र तज्जन्म कर्म च । कवचस्तोत्रमन्त्राणां गूढानां यत्र वर्णनम् ॥
दपूर्वसुपाख्यानमश्रुतं परमाद्भुतम् । कृत्वा मनसि तत् सर्वं साम्प्रतं वक्तुमर्हसि ॥३०॥
त्र जन्मभ्रमो विश्वे पुण्यक्षेत्रे च भारते । परिपूर्णतमस्यापि कृष्णस्य परमात्मनः ॥
न्म कस्यगृहेलब्धंपुण्येपुण्यवतो मुने । सुतं प्रसूता का धन्या मान्यापुण्यवतीसती ॥
विर्भूय च तद्गेहे क्व गतः केन हेतुना । गत्वा किं कृतवांस्तत्र कथं वा पुनरागतः ॥

भारावतरणं केन प्रार्थितो गोश्चकार सः ।
विधाय किं वा सेतुञ्च गोलोकं गतवान् पुनः ॥ ३४ ॥

दिदमन्यदाख्यानं पुराणं श्रुतिदुर्लभम् । दुर्विज्ञेयं मुनीनाञ्च मनोनिर्मलकारणम् ॥३५॥

स्वज्ञानाद् यन्मया पृष्टमपृष्टं वा शुभाशुभम्। सद्यो वैराग्यजननं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि
शिष्यपृष्टमपृष्टं वा व्याख्यानं कुरुते च यः।
स सद्गुरुः सतां श्रेष्ठो योग्यायोग्ये च यः समः॥ ३७॥
सौतिरुवाच।
सर्वं कुशलमस्माकं त्वत्पादपद्मदर्शनात्। सिद्धक्षेत्रादागतोऽहं यामि नारायणाश्रमम्
दृष्ट्वा विप्रसमूहञ्च नमस्कर्त्तुमिहागतः। द्रष्टुञ्च नैमिषारण्यं पुण्यदञ्चापि भारते॥३
देवं विप्रं गुरुं दृष्ट्वा न नमेद् यस्तु संभ्रमात्।
स कालसूत्रं व्रजति यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥ ४०॥
हरिर्ब्राह्मणरूपेण शश्वद् भ्रमति भारते। सुकृती प्रणमेत् पुण्यात् ब्राह्मणं हरिरूपिणम्
भगवन्! यत्त्वया पृष्टं ज्ञातं सर्वमभीप्सितम्। सारभूतं पुराणेषु ब्रह्मवैवर्त्तमुत्तमम्
पुराणोपपुराणानां वेदानां भ्रमभञ्जनम्। हरिभक्तिप्रदं सर्वतत्वज्ञानविवर्द्धनम्॥ ४३
कामिनां कामदञ्चेदं मुमुक्षूणाञ्च मोक्षदम्। भक्तिप्रदं वैष्णवानां कल्पवृक्षस्वरूपम्
ब्रह्मखण्डे सर्वबीजपरब्रह्मनिरूपणम्। ध्यायन्ते योगिनः सन्तो वैष्णवा यत् परात्पर
वैष्णवा योगिनः सन्तो न च भिन्नाश्च शौनक।
स्वज्ञानपरिपाकेन भवन्ति जीविनः क्रमात्॥ ४६॥
सन्तो भवन्ति सत्सङ्गाद् योगिसङ्गेन योगिनः।
वैष्णवा भक्तसङ्गेन क्रमात् सद्योगिनः पराः॥ ४७॥
यत्रोद्भवश्च देवानां देवीनां सर्वजीविनाम्। ततः प्रकृतिखण्डे च देवीनां चरितं शु
जीवकर्मविपाकश्च शालग्रामनिरूपणम्। तासाञ्च कवचस्तोत्रमन्त्रपूजानिरूपणम्
प्रकृतेर्लक्षणं तत्र कलांशानां निरूपणम्। कीर्त्तेरुत्कीर्त्तनं तासां प्रभावश्च निरूपित
सुकृतीनां दुष्कृतीनां यद् यत् स्थानं शुभाशुभम्।
वर्णनं नरकाणाञ्च रोगाणां मोक्षणं ततः॥ ५१॥
ततो गणेशखण्डे च तज्जन्म परिकीर्त्तितम्। अतीवापूर्वचरितं श्रुतिवेदसुदुर्लभम्
गणेशभृगुसंवादसर्वतत्वनिरूपणम्। निगूढकवचस्तोत्रमन्त्रतन्त्रनिरूपणम्॥ ५३

श्रीकृष्णजन्मखण्डश्च कीर्त्तितश्च ततः परम्। भारते पुण्यक्षेत्रे च श्रीकृष्णजन्म कर्म च
भुवो भारावतरणं क्रीड़ाकौतुकमङ्गलम्। सतां सेतुविधानश्च जन्मखण्डे निरूपितम्॥
इदं ते कथितं विप्र! पुराणप्रवरं वरम्। चतुःखण्डपरिमितं सर्वधर्मनिरूपितम्॥ ५६ ॥
सर्वेषामीप्सिततमं सर्वाशापूर्णकारणम्। ब्रह्मवैवर्त्तकं नाम सर्वाभीष्टफलप्रदम्॥ ५७ ॥
सारभूतं पुराणेषु केवलं वेदसम्मितम्। विवृतं ब्रह्मकात्स्न्र्यञ्च कृष्णेन यत्र शौनक!॥
ब्रह्मवैवर्त्तकं तेन प्रवदन्ति पुराविदः। इदं पुराणसूत्रञ्च पुरा दत्तञ्च ब्रह्मणे॥ ५९ ॥
निरामये च गोलोके कृष्णेन परमात्मना। महातीर्थे पुष्करे च दत्तं धर्माय ब्रह्मणा॥
धर्मेण दत्तं पुत्राय प्रीत्या नारायणाय च। नारायणर्षिर्भगवान् प्रददौ नारदाय च॥६१
नारदो व्यासदेवाय प्रददौ जाह्नवीतटे। व्यासः पुराणसूत्रं तत् संव्यस्य विपुलं महत्॥
मह्यं ददौ सिद्धक्षेत्रे पुण्यदे सुमनोहरम्। मयेदं कथितं ब्रह्मन्! तत् समग्रं निशामय॥
अष्टादशसहस्रन्तु व्यासेनेदं पुराणकम्। पुराणकात्स्न्र्ये श्रवणे यत् फलं लभते नरः।
तत् फलं लभते नूनमध्यायश्रवणेन च॥ ६४॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डेऽनुक्रमणिका
नाम प्रथमोऽध्यायः।

द्वितीयोऽध्यायः।

परब्रह्मनिरूपणम्

शौनकउवाच।

किमपूर्वं श्रुतं सौते! परमाद्भुतमीप्सितम्। सर्वं कथय संव्यस्य ब्रह्मखण्डमनुत्तमम्॥१

सौतिरुवाच।

वन्देगुरोःपादपद्मंव्यासस्यामिततेजसः। हरिंदेवान् द्विजान्सत्वांधर्मान्वक्ष्येसनातनान्
यत् श्रुतं व्यासवक्त्रेण ब्रह्मखण्डमनुत्तमम्। अज्ञानान्धतमोध्वंसि ज्ञानवर्त्मप्रदीपकम्॥

ज्योतिःसमूहं प्रलये पुरासीत् केवलं द्विज ! । सूर्य्यकोटिप्रभं नित्यमसंख्यविश्वकार
स्वेच्छामयस्य च विभोस्तज्ज्योतिरुज्ज्वलं महत् ।
ज्योतिरभ्यन्तरे लोकत्रयमेव मनोहरम् ॥ ५ ॥
तेषामुपरि गोलोकं नित्यमीश्वरवद् द्विज । त्रिकोटियोजनायामविस्तीर्णं मण्डला
तेजःस्वरूपं सुमहद्रत्नभूमिमयं परम् । अदृश्यं योगिभिः स्वप्ने दृश्यं गम्यञ्च वैष्णवै
योगेन धृतमीशेन चान्तरीक्षस्थितं वरम् । आधिव्याधिजरामृत्युशोकभीतिविवर्जित
सद्रत्नरचितासंख्यमन्दिरैः परिशोभितम् । लये कृष्णयुतं सृष्टौ गोपगोपीभिरावृतम्
तदधो दक्षिणे सव्ये पञ्चाशत्कोटियोजनात् ।
वैकुण्ठं शिवलोकञ्च तत्समं सुमनोहरम् ॥ १० ॥
कोटियोजनविस्तीर्णं वैकुण्ठं मण्डलाकृति ।
लये शून्यञ्च सृष्टौ च लक्ष्मीनारायणान्वितम् ॥ ११ ॥
चतुर्भुजैः पार्षदैश्च जरामृत्य्वादिवर्जितम् । सव्येचशिवलोकञ्च कोटियोजनविस्
लये शून्यञ्च सृष्टौ च सपार्षदशिवान्वितम् । गोलोकाभ्यन्तरे ज्योतिरतीवसुमनोह
परमाह्लादकं शश्वत् परमानन्दकारणम् । ध्यायन्ते योगिनः शाश्वद् योगेन ज्ञानच
तदेवानन्दजनकं निराकारं परात्परम् । तज्ज्योतिरन्तरे रूपमतीवसुमनोहरम् ॥ १
नवीननीरदश्यामं रक्तपङ्कजलोचनम् । शारदीयपार्वणेन्दुशोभातिलोचनाननम् ॥ १
कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाम मनोरमम् । द्विभुजं मुरलीहस्तं सस्मितं पीतवासस
सद्रत्नभूषणौघैः भूषितं भक्तवत्सलम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् ॥
श्रीवत्सवक्षःसंभ्राजत्कौस्तुभेन विराजितम् । सद्रत्नसाररचितकिरीटमुकुटोज्ज्वल
रत्नसिंहासनस्थञ्च वनमालाविभूषितम् । तमेव परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् ॥ २
स्वेच्छामयं सर्ववीजं सर्वाधारं परात्परम् । किशोरवयसं शश्वद्गोपवेशविधायक
कोटिपूर्णेन्दुशोभाढ्यं भक्तानुग्रहकातरम् । निरीहं निर्विकारञ्च परिपूर्णतमं विभु
रासमण्डलमध्यस्थं शान्तं रासेश्वरं वरम् । मङ्गल्यं मङ्गलार्हञ्च मङ्गलं मङ्गलप्रद
परमानन्दवीजञ्च सत्यमक्षरमव्ययम् । सर्वसिद्धीश्वरं सर्वसिद्धिरूपञ्च सिद्धिदम् ॥

प्रकृतेः परमीशानं निर्गुणं नित्यविग्रहम्। आद्यं पुरुषमव्यक्तं पुरुहूतं पुरुष्टुतम्॥ २५॥
सत्यं स्वतन्त्रमेकञ्च परमात्मस्वरूपकम्।
ध्यायन्ते वैष्णवाः शान्ताः शान्तं तत् परमायणम्॥ २६॥
एवं रूपं परं बिभ्रद्भगवानेक एव सः। दिग्भिश्च नभसा सार्द्धं शून्यं विश्वं ददर्श ह॥
इतिश्री ब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे परब्रह्मनिरूपणं नाम द्वितीयोऽध्यायः।

तृतीयोऽध्यायः।

सृष्टिनिरूपणम्

सौतिरुवाच।

दृष्ट्वा शून्यमयं विश्वं गोलोकञ्च भयङ्करम्। निर्जन्तु निर्जलं घोरं निर्वातं तमसावृतम्
वृक्षशैलसमुद्रादिविहीनं विकृताकृतम्। निर्मूर्त्तिकञ्च निर्धातु निःशस्यं निस्तृणं द्विज॥
आलोच्य मनसा सर्वमेक एवासहायवान्। स्वेच्छया स्रष्टुमारेभे सृष्टिं स्वेच्छामयःप्रभुः
आविर्बभूवुः सर्वादौ पुंसो दक्षिणपार्श्वतः। भवकारणरूपाश्च मूर्त्तिमन्तस्त्रयो गुणाः
ततो महानहङ्कारः पञ्चतन्मात्र एव च। रूपरसगन्धस्पर्शशब्दाश्चैवेतिसञ्ज्ञकाः॥ ५॥
आविर्बभूव तत्पश्चात् स्वयं नारायणः प्रभुः। श्यामो युवा पीतवासा वनमालीचतुर्भुजः
शङ्खचक्रगदापद्मधरः स्मेरमुखाम्बुजः। रत्नभूषणभूषाढ्यः शार्ङ्गी कौस्तुभभूषणः॥ ७॥
श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः। शारदेन्दुप्रभाजुष्टमुखेन्दुसुमनोहरः॥
कामदेवप्रभाजुष्टरूपलावण्यसुन्दरः। श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं पुटाञ्जलिः॥ ९॥

नारायण उवाच।

वरं वरेण्यं वरदं वरार्हं वरकारणम्। कारणं कारणानाञ्च कर्म तत्कर्मकारणम्॥ १०॥
तपस्तत्फलदं शश्वत्तपस्विनाञ्च तापसम्। वन्दे नवघनश्यामं स्वात्मारामं मनोहरम्।

निष्कामं कामरूपञ्च कामघ्नं कामकारणम्। सर्वं सर्वेश्वरं सर्वबीजरूपमनुत्तमम्।
वेदरूपं वेदबीजं वेदोक्तफलदं फलम्। वेदज्ञं तद्विधानञ्च सर्ववेदविदां वरम्॥ १३
इत्युक्त्वा भक्तियुक्तश्च स उवास तदाज्ञया। रत्नसिंहासने रम्ये पुरतः परमात्मनः।
नारायणकृतं स्तोत्रं यः शृणोति समाहितः। त्रिसन्ध्यञ्च पठेन्नित्यं पापं तस्य न विद्यते।
पुत्रार्थी लभते पुत्रं भार्य्यार्थी लभते प्रियाम्। भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं धनं भ्रष्टधनो लभेत्।
कारागारे विपद्ग्रस्तःस्तोत्रेणमुच्यतेध्रुवम्। रोगात् प्रमुच्यतेरोगीवर्षं श्रुत्वातु संयतः।

इति ब्रह्मवैवर्त्ते नारायणकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्।

सौतिरुवाच।

आविर्बभूव तत्पश्चादात्मनो वामपार्श्वतः। शुद्धस्फटिकसङ्काशः पञ्चवक्त्रो दिगम्बरः।
तप्तकाञ्चनवर्णाभजटाभारधरो वरः। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यस्त्रिनेत्रश्चन्द्रशेखरः॥ १९
त्रिशूलपट्टिशधरो जपमालाकरः परः। सर्वसिद्धेश्वरः सिद्धो योगिनाञ्च गुरोर्गुरुः।
मृत्योर्मृत्युरीश्वरश्च मृत्युर्मृत्युञ्जयः शिवः। ज्ञानानन्दो महाज्ञानी महाज्ञानप्रदः परः।
पूर्णचन्द्रप्रभायुष्टसुखदृश्यो मनोहरः। वैष्णवानाञ्च प्रवरः प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा॥२२
श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं पुटाञ्जलिः। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रोऽतिगद्गदः।

महादेव उवाच।

जयस्वरूपं जयदं जयेशं जयकारणम्। प्रवरं जयदानाञ्च वन्दे तमपराजितम्॥ २४

विश्वं विश्वेश्वरेशञ्च विश्वेशं विश्वकारणम्।
विश्वाधारञ्च विश्वस्तं विश्वकारणकारणम्॥ २५॥

विश्वरक्षाकारणञ्च विश्वघ्नं विश्वजं परम्। फलबीजं फलाधारं फलञ्च तत्फलप्रदम्।
तेजःस्वरूपं तेजोदं सर्वतेजस्विनां वरम्। इत्येवमुक्त्वा तं नत्वा रत्नसिंहासने वरे।

नारायणञ्च संभाष्य स उवास तदाज्ञया॥ २७॥

इति शम्भुकृतं स्तोत्रं यो जनः संयतः पठेत्। सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य विजयञ्च पदे पदे।
सन्ततं वर्द्धते मित्रं धनमैश्वर्य्यमेव च। शत्रुसैन्यं क्षयं याति दुःखानि दुरितानि च॥

इति ब्रह्मवैवर्त्ते शम्भुकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्।

सौतिरुवाच ।

आविर्बभूव तत्पश्चात् कृष्णस्य नाभिपङ्कजात् । महातपस्वी वृद्धश्च कमण्डलुकरो वरः
शुक्लवासाः शुक्लदन्तः शुक्लकेशश्चतुर्मुखः । योगीशः शिल्पिनामीशः सर्वेषां जनको गुरुः
तपसां फलदाता च प्रदातासर्वसम्पदाम् । स्रष्टा विधाता कर्त्ताचहर्त्ताचसर्वकर्मणाम् ॥
धाता चतूर्णां वेदानां ज्ञाता वेदप्रसूःपतिः । शान्तः सरस्वतीकान्तः सुशीलश्चकृपानिधिः
श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं पुटाञ्जलिः । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो भक्तिनम्रात्मकन्धरः

ब्रह्मोवाच ।

कृष्णं वन्दे गुणातीतं गोविन्दमेकमक्षरम् । अव्यक्तमव्ययंव्यक्तं गोपवेषविधायिनम् ।३५।
किशोरवयसंशान्तं गोपीकान्तं मनोहरम् । नवीननीरदश्यामं कोटिकन्दर्पसुन्दरम् ॥
वृन्दावनवनाभ्यर्णे रासमण्डलसंस्थितम् । रासेश्वरं रासवासं रासोल्लाससमुत्सुकम्
इत्येवमुक्त्वा तं नत्वा रत्नसिंहासने वरे । नारायणेशौ संभाष्य स उवास तदाज्ञया ॥

इति ब्रह्मकृतं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
पापानि तस्य नश्यन्ति दुःस्वप्नः सुस्वप्नो भवेत् ॥ ३९ ॥
भक्तिर्भवति गोविन्दे पुत्रपौत्रविवर्द्धनी ।
अकीर्त्तिः क्षयमाप्नोति सत्कीर्त्तिर्वर्द्धते चिरम् ॥ ४० ॥

इति ब्रह्मवैवर्त्ते ब्रह्मकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम् ।

सौतिरुवाच ।

आविर्बभूव तत्पश्चात् वक्षसः परमात्मनः । सस्मितः पुरुषः कश्चित् शुक्लवर्णोजटाधरः
सर्वसाक्षी च सर्वज्ञः सर्वेषां सर्वकारणम् । समः सर्वत्र सदयो हिंसाकोपविवर्जितः
धर्मज्ञानयुतो धर्मो धर्मिष्ठो धर्मदो भवेत् । स एव धर्मिणां धर्मः परमात्मकलोद्भवः ॥
श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा प्रणम्य दण्डवद् भुवि । तुष्टाव परमात्मानं सर्वेशं सर्वकामदम्
कृष्णं विष्णुं वासुदेवं परमात्मानमीश्वरम् । गोविन्दं परमानन्दमेकमक्षरमच्युतम् ॥
गोपेश्वरञ्च गोपीशं गोपं गोरक्षकं विभुम् । गवामीशञ्च गोष्ठस्थं गोवत्सपुच्छधारिणम्
गोगोपगोपीमध्यस्थं प्रधानं पुरुषोत्तमम् । वन्दे नवघनश्यामं रासवासं मनोहरम् ॥

इत्युच्चार्य्य समुत्तिष्ठन् रत्नसिंहासने वरे। ब्रह्मविष्णुमहेशांस्तान् सम्भाष्य स उवा
चतुर्विंशति नामानि धर्मवक्त्रोद्गतानि च। यः पठेत् प्रातरुत्थाय स सुखी सर्वतो ज
मृत्युकाले हरेर्नाम तस्य साध्यं भवेद् ध्रुवम्। स यात्यन्ते हरेःस्थानंहरिदास्यंभवेद्ध्रु
नित्यं धर्मस्तं घटते नाधर्मे तद्रतिर्भवेत्। चतुर्वर्गफलं तस्य शश्वत् करगतं भवे
तं दृष्ट्वा सर्वपापानि पलायन्ते भयेन च। भयानि चैव दुःखानि वैनतेयमिवोरगाः।

इति ब्रह्मवैवर्त्ते धर्मकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्।

सौतिरुवाच।

आविर्बभूव कन्यैका धर्मस्य वामपार्श्वतः। मूर्त्तिर्मूर्त्तिमती साक्षात् द्वितीयकमला
आविर्बभूव तत्पश्चात् मुखतः परमात्मनः। एका देवी शुक्लवर्णा वीणापुस्तकधारि
कोटिपूर्णेन्दुशोभाढ्या शरत्पङ्कजलोचना। वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता।
सस्मिता सुदती श्यामा सुन्दरीणाञ्चसुन्दरी। श्रेष्ठाश्रुतीनां शास्त्राणांविदुषां जननी
वागधिष्ठातृदेवी सा कवीनामिष्टदेवता। शुद्धसत्वस्वरूपा च शान्तरूपा सरस्वती।
गोविन्दपुरतः स्थित्वा जगौ प्रथमतः शुभम्। तन्नामगुणकीर्त्तिञ्च वीणया सा ननर्त
कृतानि यानि कर्माणि जन्मे जन्मे युगे युगे। तानिसर्वाणि हरिणा तुष्टाव संपुटाञ्ज

सरस्वत्युवाच।

रासमण्डलमध्यस्थं रासोल्लाससमुत्सुकम्। रत्नसिंहासनस्थञ्च रत्नभूषणभूषितम्।
रासेश्वरं रासकरं वरं रासेश्वरीश्वरम्। रासाधिष्ठातृदेवञ्च वन्दे रासविनोदिनम्।
रासायासपरिश्रान्तं रासरासविहारिणम्। रासोत्सुकानां गोपीनां कान्तं शान्तंमनोह
...णस्य तं तानीत्युक्त्वा प्रहृष्टवदना सती। उवास सा सकामा च रत्नसिंहासने ...

इति वाणीकृतं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
बुद्धिमान् धनवान् सोऽपि विद्यावान् पुत्रवान् सदा॥ ६४॥

इति ब्रह्मवैवर्त्ते सरस्वतीकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्।

सौतिरुवाच।

आविर्बभूव मनसः कृष्णस्य परमात्मनः।

एका देवी गौरवर्णा रत्नालङ्कारभूषिता ॥ ६५ ॥
पीतवस्त्रपरीधाना सस्मिता नवयौवना । सर्वैश्वर्य्याधिदेवी सा सर्वसम्पत्फलप्रदा ॥
स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु ॥ ६६ ॥
सा हरेः पुरतः स्थित्वा परमात्मानमीश्वरम् । तुष्टाव प्रणता साध्वी भक्तिनम्रात्मकन्धरा

महालक्ष्मीरुवाच ।

सत्यस्वरूपं सत्येशं सत्यबीजं सनातनम् । सत्याधारं च सत्यज्ञं सत्यमूलं नमाम्यहम् ॥
इत्युक्त्वा श्रीहरिं नत्वा सा चोवास सुखासने ।
तप्तकाञ्चनवर्णाभा भासयन्ती दिशो दश ॥ ६९ ॥
आविर्बभूव तत्पश्चात् बुद्धेश्च परमात्मनः । सर्वाधिष्ठातृदेवी सा मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभा सूर्य्यकोटिसमप्रभा । ईषद्धास्यप्रसन्नास्या शरत्पङ्कजलोचना ॥७१
रक्तवस्त्रपरीधाना रत्नाभरणभूषिता । निद्रातृष्णा क्षुत्पिपासा दया श्रद्धाक्षमादिकाः ॥
तासाञ्च सर्वशक्तीनामीशाधिष्ठातृदेवता । भयङ्करी शतभुजा दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥
आत्मनः शक्तिरूपा सा जगतां जननीपरा । त्रिशूलशक्तिशार्ङ्गञ्च धनुः खड्गशराणि च
शङ्खचक्रगदापद्ममक्षमालां कमण्डलुम् । वज्रमङ्कुशपाशञ्च भुशुण्डीं दण्डतोमरम् ॥७५॥
नारायणास्त्रं ब्रह्मास्त्रं रौद्रं पाशुपतं तथा । पार्ज्जन्यं वारुणं वाह्नं गान्धर्वं बिभ्रती सती
कृष्णस्य पुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं मुदान्विता ॥ ७६ ॥

प्रकृतिरुवाच ।

अहं प्रकृतिरीशानी सर्वेशा सर्वरूपिणी । सर्वशक्तिस्वरूपा च मया च शक्तिमज्जगत् ॥
त्वया सृष्टा न स्वतन्त्रा त्वमेवजगतांपतिः । गतिश्च पाता स्रष्टा च संहर्त्ता च पुनर्विधिः
परमानन्दरूपं त्वां वन्दे चानन्दपूर्वकम् । चक्षुर्निमेषकाले च ब्रह्मणः पतनं भवेत् ॥७६॥
तस्यप्रभावमतुलंवर्णितुं कः क्षमोविभो ! । भ्रूभङ्गलीलामात्रेण विष्णुकोटिं सृजेत्तु यः
चराचरांश्च विश्वेषु देवान् ब्रह्मपुरोगमान् । मद्विधाः कति वादेवीःस्रष्टुं शक्तश्चलीलया
परिपूर्णतमं स्वीड्यं वन्दे चानन्दपूर्वकम् ।
महान् विराट् यत्कलांशो विश्वासंख्याश्रयो विभो ! ॥
वन्दे चानन्दपूर्वं तं परमात्मानमीश्वरम् ॥ ८२ ॥

यश्च स्तोतुमशक्ताश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
वेदा अहञ्च वाणी च वन्दे तं प्रकृतेः परम् ॥ ८३ ॥
वेदाश्च विदुषां श्रेष्ठाः स्तोतुं शक्ता न लक्षतः ।
निर्लक्ष्यं कः क्षमः स्तोतुं तं निरीहं नमाम्यहम् ॥ ८४ ॥

इत्येवमुक्त्वा सा दुर्गा रत्नसिंहासने वरे । उवास नत्वा श्रीकृष्णं तुष्टुवुस्तांसुरेश्वरा
इति दुर्गाकृतं स्तोत्रं कृष्णस्य परमात्मनः । यः पठेदर्च्चनाकाले स जयी सर्वतः सुखी

दुर्गा तस्य गृहं त्यक्त्वा नैव याति कदाचन ।
भवाब्धौ यशसा भाति यात्यन्ते श्रीहरेः पुरम् ॥ ८७ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनक संवादे
सृष्टिनिरूपणे दुर्गास्तोत्रं नाम तृतीयोऽध्यायः ।

चतुर्थोऽध्यायः ।

सृष्टि निरूपणम्

सौतिरुवाच ।

आविर्बभूव तत्पश्चात् कृष्णस्य रसनाग्रतः । शुद्धस्फटिकसङ्काशा देवी चैका मनोह
शुक्लवस्त्रपरीधाना सर्वालङ्कारभूषिता । बिभ्रती जपमालाञ्च सा सावित्री प्रकीर्त्तिता
सा तुष्टाव पुरः स्थित्वा परं ब्रह्म सनातनम् । पुटाञ्जलिपरा साध्वी भक्तिनम्रात्मकन्ध

सावित्र्युवाच ।

नमामि सर्वबीजं त्वां ब्रह्मज्योतिः सनातनम् । परात्परतरं श्यामं निर्विकारंनिरञ्ज
इत्युक्त्वा सस्मिता देवी रत्नसिंहासने वरे । उवास श्रीहरिं नत्वा पुनरेव श्रुतिप्रसू
आविर्बभूव तत्पश्चात् कृष्णस्य परमात्मनः । मानसाच्च पुमानेकस्तप्तकाञ्चनसन्निभः
मनोमथ्नाति सर्वेषां पञ्चबाणेन कामिनाम् । तन्नाम मन्मथं तेन प्रवदन्ति मनीषिणः

तस्य पुंसोवामपार्श्वात् कामस्य कामिनी वरा । बभूवातीवललिता सर्वेषां मोहकारिणी
रतिर्बभूव सर्वेषां तां दृष्ट्वा सस्मितां सतीम् । रतीति तेन तन्नाम प्रवदन्ति मनीषिणः
हरिं स्तुत्वा तया सार्द्धंसउवासहरेः पुरः । रत्नसिंहासने रम्ये पञ्चबाणो धनुर्द्धरः ॥१०
मारणं स्तम्भनञ्चैव जृम्भनं शोषणन्तथा । उन्मादनं पञ्चबाणान् पञ्चबाणो बिभर्त्ति सः
बाणांश्चिक्षेप सर्वांश्च कामो बाणपरीक्षया । सद्यः सर्वे सकामाश्च बभूवुरीश्वरेच्छया
रतिंदृष्ट्वा ब्रह्मणश्च रेतःपातो बभूव ह । तत्र तस्थौ महायोगी वस्त्रेणाच्छाद्य लज्जया

वस्त्रं दग्ध्वा समुत्तस्थौ ज्वलदग्निः सुरेश्वरः ।
कोटितालप्रमाणश्च सशिखश्च समुज्ज्वलन् ॥ १४ ॥
कृष्णस्तद्वर्द्धनं दृष्ट्वा ससर्जापः स्वलीलया ।
निःश्वासवायुना सार्द्धं मुखबिन्दुं समुद्गिरन् ॥ १५ ॥

विश्वौघं प्लावयामास मुखबिन्दुजलं द्विज । तस्य किञ्चित्कणं वह्निं शान्तंचकार ह ॥
ततः प्रभृति तेनाग्निस्तोयान्निर्वाणतां व्रजेत् । आविर्भूतः पुमानेकस्ततस्तदधिदेवता ॥
उत्तस्थौतज्जलादेकःपुमान्सवरुणःस्मृतः । जलाधिष्ठातृदेवोऽसौसर्वेषां यादसाम्पतिः ॥
आविर्बभूव कन्यैका तद्वह्नेर्वामपार्श्वतः । सा स्वाहा वह्निपत्नीं तां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

जलेशस्य वामपार्श्वात् कन्या चैका बभूव सा ।
वरुणानीति विख्याता वरुणस्य प्रिया सती ॥ २० ॥
बभूव पवनः श्रीमान् विभोर्निःश्वासवायुना ।
स प्रमाणश्च सर्वेषां निःश्वासस्तत्कलोद्भवः ॥ २१ ॥

तस्यवायोर्वामपार्श्वात् कन्याचैकाबभूव ह । वायोःपत्नीसाचदेवीवायवीपरिकीर्त्तिता ॥
कृष्णस्य कामबाणेन रेतःपातो बभूव ह । जले तद्रेचनं चक्रे लज्जया सुरसंसदि ॥२३॥
सहस्रवत्सरान्ते तड्डिम्बरूपं बभूव ह । ततो महान् विराट् जज्ञे विश्वौघाधार एव सः ॥
यस्यैकलोमविवरेविश्वैकस्यव्यवस्थितिः । स्थूलात् स्थूलतमःसोऽपिमहान्नान्यस्ततःपरः
स एव षोडशांशोऽपिकृष्णस्यपरमात्मनः । महाविष्णुः स विज्ञेयःसर्वाधारःसनातनः ॥
महार्णवे शयानः स पद्मपत्रं यथा जले । बभूवतुस्तौ द्वौ दैत्यौ तस्य कर्णमलोद्भवौ ॥

तौ जलाच्चसमुत्थाय ब्रह्माणंहन्तुमुद्यतौ । नारायणश्च भगवान् जघने तौ जघान ह
बभूव मेदिनी कृत्स्ना कार्त्स्न्येन मेदसा तयोः ।
तत्रैव सन्ति विश्वानि सा च देवी वसुन्धरा ॥ २६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे सृष्टिनिरूपणे चतुर्थोऽध्यायः ।

पञ्चमोऽध्यायः ।

सृष्टिप्रकारवर्णनम्

शौनक उवाच ।

गोगोपगोप्यो गोलोके किं नित्याः किं नु कल्पिताः ।
मम सन्देहभेदार्थं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥

सौतिरुवाच ।

सर्वादिसृष्टौ ताः क्लृप्ताःप्रलये प्रलये स्थिताः । सर्वादिसृष्टिकथनंयन्मयाकथितंद्विज
सर्वादिसृष्टौक्लृप्तौच नारायणमहेश्वरौ । प्रलयेप्रलयेव्यक्तौ स्थितौ तौ प्रकृतिश्चसा
सर्वादौब्रह्मकल्पस्यचरितंकथितं द्विज । वाराहपाद्मकल्पौ द्वौ कथयिष्यामिश्रोष्यसि
ब्राह्मवाराहपाद्माश्चकल्पाश्चत्रिविधा मुने । यथायुगानिचत्वारिक्रमेण कथितानि च
सत्यत्रेताद्वापरञ्च कलिश्चेति चतुर्युगम् । त्रिशतैश्च षष्ट्यधिकैर्युगैर्दिव्यं युगं स्मृतम्
मन्वन्तरन्तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः । चतुर्दशसु मनुषु गतेषु ब्रह्मणो दिनम् ॥
त्रिशतैश्च षष्ट्यधिकैर्दिनैर्वर्षञ्च ब्रह्मणः । अष्टोत्तरं वर्षशतं विधेरायुर्निरूपितम् ॥ ८
एतन्निमेषकालस्तु कृष्णस्य परमात्मनः । ब्रह्मणश्चायुषा कल्पः कालविद्भिर्निरूपितः
क्षुद्रकल्पा बहुतरास्ते संवर्त्तादयः स्मृताः । सप्तकल्पान्तजीवी च मार्कण्डेयश्च तत्सम

ब्रह्मणश्च दिनेनैव स कल्पः परिकीर्त्तितः। विधेश्च सप्तदिवसे मुनेरायुर्निरूपितम् ॥११
ब्राह्मवाराहपाद्माश्च त्रयः कल्पा निरूपिताः। कल्पत्रये यथा सृष्टिः कथयामि निशामय
ब्राह्मे च मेदिनीं सृष्ट्वा स्रष्टा सृष्टिं चकार सः।
मधुकैटभयोश्चैव मेदसा चाज्ञया प्रभोः ॥ १३ ॥
वाराहे तां समुद्धृत्य लुप्तां मग्नां रसातलात्। विष्णोर्वराहरूपस्य द्वारा चातिप्रयत्नतः
पाद्मेविष्णोर्नाभिपद्मेस्रष्टा सृष्टिंविनिर्ममे। त्रिलोकींब्रह्मलोकान्तांनित्यलोकत्रयं विना ॥
एतत्तु कालसंख्यानमुक्तं सृष्टिनिरूपणे। किञ्चिन्निरूपणं सृष्टेः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि

शौनक उवाच।

अतःपरन्तु गोलोके गोलोकेशो महान् विभुः।
एतान् सृष्ट्वा किञ्चकार तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १७ ॥

सौतिरुवाच।

एतान् सृष्ट्वा जगामासौ सुरम्यं रासमण्डलम्। एतैः समेतो भगवानतीवकमनीयकम्
रम्याणांकल्पवृक्षाणांमध्येऽतीवमनोहरम्। सुविस्तीर्णञ्च सुसमं सुस्निग्धंमण्डलाकृतम् ॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैश्च सुसंस्कृतम्। दधिलाजाशुक्लधान्यदूर्वापर्णपरिप्लुतम् ॥२०॥
पट्टसूत्रग्रन्थियुक्तनवचन्दनपल्लवैः। संयुक्तरम्भास्तम्भानां समूहैः परिवेष्टितम् ॥ २१ ॥
सद्रत्नसारनिर्माणमण्डपानां त्रिकोटिभिः। रत्नप्रदीपज्वलितैः पुष्पधूपाधिवासितैः ॥२२
शृङ्गारार्हभोगवस्तुसमूहपरिवेष्टितैः। अतीवललिताकल्पतल्पयुक्तैः सुशोभितम् ॥ २३॥
तत्र गत्वा च तैः सार्द्धं समुवास जगत्पतिः।
दृष्ट्वा रासं विस्मितास्ते बभूवुर्मुनिसत्तम ! ॥ २४ ॥
आविर्बभूव कन्यैका कृष्णस्य वामपार्श्वतः। धावित्वा पुष्पमानीय ददावर्घ्यंप्रभोः पदे
रासे संभूय गोलोके सा दधाव हरेःपुरः। तेन राधासमाख्याता पुराविद्भिर्द्विजोत्तम ॥
प्राणाधिष्ठात्री देवी सा कृष्णस्य परमात्मनः।
आविर्बभूव प्राणेभ्यः प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥ २७ ॥
देवी षोडशवर्षीया नवयौवनसंयुता। वह्निशुद्धांशुकाधाना सस्मिता सुमनोहरा ॥२८॥

सुकोमलाङ्गी ललिता सुन्दरीषु च सुन्दरी। बृहन्नितम्बभारार्त्ता पीनश्रोणीपयोधरा
बन्धुजीवजितारक्तसुन्दरोष्ठाधरा वरा। मुक्तापंक्तिजिता चारुदन्तपंक्तिर्मनोहरा ॥३
शरत्पार्वणकोटीन्दुशोभामुष्टशुभानना। चारुसीमन्तिनी चारुशरत्पङ्कजलोचना ॥३
खगेन्द्रचञ्चुविजितचारुनासा मनोहरा। स्वर्णगेण्डूकविजिते गण्डयुग्मे च बिभ्रती
दधती चारुकर्णौ च रत्नाभरणभूषिते। चन्दनागुरुकस्तूरीयुक्तकुङ्कुमविन्दुभिः ॥ ३
सिन्दूरविन्दुसंयुक्तसुकपोला मनोहरा। सुसंस्कृतं केशपाशं मालतीमाल्यभूषितम् ॥३
सुगन्धकवरीभारं सुन्दरं दधती सती। स्थलपद्मप्रभामुष्टं पादयुग्मञ्च बिभ्रती ॥ ३
गमनं कुर्वती सा च हंसखञ्जनगञ्जनम्। सद्रत्नसारनिर्माणां वनमालां मनोहराम् ॥३
हारं हीरकनिर्माणं रत्नकेयूरकङ्कणम्। सद्रत्नसारनिर्माणं पाशकं सुमनोहरम् ॥ ३
अमूल्यरत्ननिर्माणं क्वणन्मञ्जीररञ्जितम्। नानाप्रकारचित्राढ्यं सुन्दरं परिबिभ्रती ॥३

सा च सम्भाष्य गोविन्दं रत्नसिंहासने वरे।
उवास सस्मिता भर्त्तुः पश्यन्ती मुखपङ्कजम् ॥ ३६ ॥

तस्याश्च लोमकूपेभ्यः सद्यो गोपाङ्गनागणः। आविर्बभूव रूपेण वेशेनैव च तत्सम
लक्षकोटिपरिमितःशश्वत्सुस्थिरयौवनः। संख्याविद्भिश्चसंख्यातोगोलोकेगोपिका
कृष्णस्य लोमकूपेभ्यः सद्यो गोपगणोमुने। आविर्बभूव रूपेण वेशेनैव च तत्सम
त्रिंशत्कोटिपरिमितःकमनीयोमनोहरः। संख्याविद्भिश्चसंख्यातोवल्लवानांगणःश्रुतौ
कृष्णस्य लोमकूपेभ्यः सद्यश्चाविर्बभूव ह। नानावर्णो गोगणश्च शश्वत्सुस्थिरयौ

वलीवर्दाः सुरभ्यश्च वत्सा नानाविधाःशुभाः।
अतीवललिताः श्यामा बह्वश्च कामधेनवः ॥ ४५ ॥

तेषामेकं वलीवर्दं कोटिसिंहसमं बले। शिवाय प्रददौ कृष्णो वाहनाय मनोहरम् ॥
कृष्णाङ्घ्रिनखरन्ध्रेभ्यो हंसपंक्तिर्मनोहरा। आविर्बभूव सहसा स्त्रीपुंवत्ससमन्वित
तेषामेकं राजहंसं महाबलपराक्रमम्। वाहनाय ददौ कृष्णो ब्रह्मणे च तपस्विने ॥
वामकर्णस्य विवरात् कृष्णस्य परमात्मनः। गणः श्वेततुरङ्गानामाविर्भूतो मनोहर
तेषामेकञ्च श्वेताश्वं धर्माय वाहनाय च। ददौ गोपाङ्गनेशश्च संप्रीत्या सुरसंस

दक्षकर्णस्य विवरात् पुंसश्च सुरसंसदि । आविर्भूता सिंहपंक्तिर्महाबलपराक्रमा ॥५१॥
तेषामेकं ददौ कृष्णः प्रकृत्यै परमादरम् । अमूल्यवरमाल्यश्च वरं यदभिवाञ्छितम् ॥
कृष्णो योगेन योगीन्द्रश्चकार रथपञ्चकम् । शुद्धरत्नेन्द्रनिर्माणं मनोयायि मनोहरम् ॥
लक्षयोजनमूद्ध्वें च प्रस्थे च शतयोजनम् । लक्षचक्रं वायुरहं लक्षक्रीडागृहान्वितम् ॥
शृङ्गारार्हभोगवस्तुतल्पासंख्यसमन्वितम् । रत्नप्रदीपलक्षाणां वाजिभिश्च विराजितम् ॥
नानाचित्रविचित्राढ्यं सद्रत्नकलसोज्ज्वलम् । रत्नदर्पणभूषाढ्यं शोभितं श्वेतचामरैः ॥
वह्निशुद्धांशुकैश्चित्रैर्मालाजालैर्विभूषितम् । मणीन्द्रमुक्तामाणिक्यहीराहारविराजितम् ॥
आरक्तवर्णरत्नेन्द्रसारनिर्माणकृत्रिमैः । पङ्कजाभासंख्यैश्च सुन्दरैश्चसुशोभितम् ॥५८॥
ददौ नारायणायैकं तेषां मध्ये द्विजोत्तम ! । एकं दत्त्वा राधिकायै ररक्ष शेषमात्मने ॥
आविर्बभूव कृष्णस्य गुह्यदेशात्ततः परम् । पिङ्गलश्च पुमानेकः पिङ्गलैश्च गणैः सह ॥६०

आविर्भूता यतो गुह्यात्तेन ते गुह्यकाः स्मृताः ।
यः पुमान् स कुवेरश्च धनेशो गुह्यकेश्वरः ॥ ६१ ॥

बभूव कन्यका चैका कुवेरवामपार्श्वतः । कुवेरपत्नी सा देवी सुन्दरीणां मनोरमा ॥६२
भूतप्रेतपिशाचाश्चकुष्माण्डब्रह्मराक्षसाः । वेताला विकृतास्तस्याविर्भूता गुह्यदेशतः ॥६३
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणो वनमालिनः । पीतवस्त्रपरीधानाः सर्वे श्यामचतुर्भुजाः ॥ ६४ ।
किरीटिनः कुण्डलिनो रत्नभूषणभूषिताः । आविर्भूताःपार्श्वदाश्च कृष्णस्यमुखतो मुने ॥
चतुर्भुजान् पार्श्वदांश्च ददौ नारायणाय च । गुह्यकान्गुह्यकेशायभूतादीन्शङ्करायच ॥
द्विभुजाः श्यामवर्णाश्च जपमालाकरा वराः । ध्यायन्तश्चरणाम्भोजंकृष्णस्यसन्ततं मुदा

दास्ये नियुक्ता दासाश्चैवार्घ्यमादाय यत्नतः ।
आविर्भूता वैष्णवाश्च सर्वे कृष्णपरायणाः ॥ ६८ ॥

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गाः साश्रुनेत्राः सगद्गदाः । आविर्भूताः पादपद्मात् पादपद्मकमानसाः ॥
आविर्बभूवुः कृष्णस्य दक्षनेत्राद्भयङ्कराः । त्रिशूलपट्टिशधराः त्रिनेत्राश्चन्द्रशेखराः ॥७०।
दिगम्बरामहाकायाज्वलदग्निशिखोपमाः । ते भैरवामहाभागाः शिवतुल्याश्च तेजसा ॥
रुरुसंहारकालाख्याअसितक्रोधभीषणाः । महाभैरवखट्वाङ्गावित्यष्टौ भैरवाः स्मृताः ।

आविर्बभूव कृष्णस्य वामनेत्राद्भयङ्करः। त्रिशूलपट्टिशव्याघ्रचर्माम्बरगदाधरः॥
दिगम्बरो महाकायस्त्रिनेत्रश्चन्द्रशेखरः। स ईशानो महाभागो दिक्पालानामधी
डाकिन्यश्चैव योगिन्यः क्षेत्रपालाः सहस्रशः।
आविर्बभूवुः कृष्णस्य नासिकाविवरोदरात्॥ ७५॥
सुपस्त्रिकोटिसंख्याताः दिव्यमूर्त्तिधरा वराः। आविर्बभूवुः सहसा पुंसश्च पृष्ठे
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सौति-शौनकसंवादे सृष्टिनिरूपणे ब्रह्मखण्डे
पञ्चमोऽध्यायः।

षष्ठोऽध्यायः।

सृष्टि प्रकरणम्।

सौतिरुवाच।

अथ कृष्णो महालक्ष्मीं सादरञ्च सरस्वतीम्। नारायणाय प्रददौ रत्नेन्द्रमालया सह
सावित्रीं ब्रह्मणे प्रादान्मूर्त्तिं धर्माय सादरम्। रतिं कामायरूपाढ्यां कुबेराय मनोर
अन्याश्च या या अन्येभ्यो याश्च येभ्यः समुद्भवाः।
तस्मै तस्मै ददौ कृष्णस्तां तां रूपवतीं सतीम्॥ ३॥
ततः शङ्करमाहूय सर्वेशो योगिनां गुरुम्। उवाच प्रियमित्येवं गृहाण सिंहवाहिनीं
श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य नीललोहितः। उवाच भीतः प्रणतः प्राणेशं प्रभुमच्यु

श्रीमहेश्वर उवाच।

अधुनाहं न गृह्णामि प्रकृतिं प्राकृतो यथा।
त्वद्भक्तदैकव्यवहितां दास्यमार्गविरोधिनीम्॥ ६॥
तत्त्वज्ञानसमाच्छन्नां योगद्वारकपाटिकाम्।
मुक्तीच्छाध्वंसरूपाञ्च सकामां कामवर्द्धनीम्॥ ७॥

तपस्याच्छन्नरूपाञ्च महामोहकरण्डिकाम् । भवकारागृहे घोरे दृढ़ां निगड़रूपिणीम् ॥
शश्वद्विबुद्धिजननीं सद्बुद्धिच्छेदकारिणीम् । शश्वद्भिमागसाराञ्च विषयेच्छाविवर्द्धिनीम्
नेच्छामि गृहिणींनाथ ! वरंदेहि मदीप्सितम् । यस्य यद्वाञ्छितंतस्मै तद्ददाति सदीश्वरः
त्वद्भक्तिविषये दास्ये लालसा वर्द्धतेऽनिशम् । तृप्तिर्न जायते नामजपने पादसेवने ॥११
त्वन्नाम पञ्चवक्त्रेण गुणञ्च मङ्गलालयम् । स्वप्ने जागरणे शश्वद्गायन् गायन् भ्रमाम्यहम्
आकल्पकोटिकोटिञ्च तद्रूपध्यानतत्परम् । भोगेच्छा विषये नैव योगेतपसि मन्मनः॥१३
त्वत्सेवने पूजने च वन्दने नामकीर्त्तने । सदोल्लसितमेवाञ्च विरतौ विरतिं लभेत् ॥१४
स्मरणं कीर्त्तनं नामगुणयोः श्रवणं जपः । त्वच्चारुरूपध्यानं त्वत्पादसेवाभिवन्दनम् ॥
समर्पणञ्चात्मनश्च नित्यं नैवेद्यभोजनम् । वरंवरेश ! देहीदं नवधा भक्तिलक्षणम् ॥१६
सार्ष्टिसालोक्यसारूप्यसामीप्यसाम्यलीनताम् ,वदन्तिषडविधांमुक्तिमुक्तामुक्तिविदोविभो
अणिमा लघिमाप्राप्तिः प्राकाम्यंमहिमातथा । ईशित्वञ्च वशित्वञ्च सर्वकामावसायिता
सर्वज्ञदूरश्रवणं परकायप्रवेशनम् । वाक्सिद्धिः कल्पवृक्षत्वं स्रष्टुं संहर्त्तुमीशता ॥ १६ ॥
अमरत्वञ्च सर्वाग्र्यं सिद्धयोऽष्टादशस्मृताः । योगास्तपांसि सर्वाणिददानि च व्रतानि च
यशः कीर्त्तिर्वचः सत्यं धर्माण्यनशनानि च । भ्रमणं सर्वतीर्थेषु स्नानमन्यसुरार्चनम् ॥
सुरार्चा दर्शनं सप्तद्वीपसप्तप्रदक्षिणम् । स्नानं सर्वसमुद्रेषु सर्वस्वर्गप्रदर्शनम् ॥ २२ ॥
ब्रह्मत्वञ्चैव रुद्रत्वं विष्णुत्वञ्च परंपदम् । अतोऽनिर्वचनीयानि वाञ्छनीयानि सन्तिवा
सर्वाण्येतानि सर्वेश ! कथितानिच यानिच । तन्भक्तिकलांशस्य कलांनार्हन्ति षोड़शीम्
शर्वस्य वचनं श्रुत्वा कृष्णस्तं योगिनां गुरुम् । प्रहस्योवाच वचनं सत्यं सर्वं सुखप्रदम्

श्रीभगवानुवाच ।

मत्सेवां कुरु सर्वेश शर्व सर्वविदांवर । कल्पकोटिशतं यावत् पूर्णं शश्वदहर्निशम् ॥
वरस्तपस्विनां त्वञ्च सिद्धानां योगिनांतथा । ज्ञानिनां वैष्णवानाञ्च सुराणाञ्च सुरेश्वर
अमरत्वं लभ भव ! भव मृत्युञ्जयो महान् । सर्वसिद्धिञ्च वेदांश्च सर्वज्ञत्वञ्च मद्वरात् ॥
असंख्यब्रह्मणां पातं लीलया वत्स ! द्रक्ष्यसि । अद्य प्रभृति ज्ञानेन तेजसा वयसा शिव

पराक्रमेण यशसा महसा मत्समो भव । प्राणानामधिकस्त्वञ्च न भक्तस्त्वत्परो म
त्वत्परो नास्तिमे प्रेयांस्त्वं मदीयात्मनःपरः । येत्वांनिन्दन्ति पापिष्ठाज्ञानहीना विचे
पच्यन्ते कालसूत्रेण यावच्चन्द्रदिवाकरौ । कल्पकोटिशतान्ते च ग्रहीष्यसि शिवां
ममाभ्यर्थनञ्च वचनं पालनं कर्त्तुमर्हसि । त्वन्मुखान्निर्गतं वाक्यं करोमि नाद्यनेति
मद्वाक्यञ्च स्ववाक्यञ्च पालनं तत् करिष्यसि । गृहीत्वाप्रकृतिं शम्भो दिव्यं वर्षसहस्र
सुखं सुमहत् शृङ्गारं करिष्यसि न संशयः । न केवलं तपस्वी त्वमीश्वरो मत्समो
कालेगृही तपस्वी च योगीस्वेच्छामयो हि यः । दुःखञ्च दारसंयोगे यत्त्वया कथितं
कुस्त्री ददाति दुःखञ्च स्वामिने न पतिव्रता । कुलेमहति या जाता कुलजा कुलपालि
करोति पालनं स्नेहात् सत्पुत्रस्य समं पतिम् । पतिर्बन्धुर्गतिर्भर्त्ता दैवतं कुलयोषि
पतितोऽपतितो वापि कृपणश्चेश्वरोऽथवा । असत्कुलप्रसूतायाः पित्रोर्दुःशीलमि
श्रवंताः परभोग्याश्च पातं निन्दन्ति सन्ततम् । आवयोरतिरिक्तञ्च या पश्यति पति
गोलोके स्वामिनासार्द्धं कोटिकल्पं प्रमोदते । भविता साशिवाशैवा प्रकृतिर्वैष्णवी
मदाज्ञयाचतां साध्वीं ग्रहीष्यसि भवायच । प्रकृत्या योनिसंयुक्तं त्वल्लिङ्गं तीर्थमृत्ति
तीर्थे सहस्रं संपूज्य भक्त्या पञ्चोपचारतः । सदक्षिणं संयतो यः पवित्रश्च जितेन्द्रि
कोटिकल्पञ्च गोलोके मोदतेच मयासह । लक्षंतीर्थे पूजयेद्यो विधिवत् साधुदक्षि
नच्युतिस्तस्यगोलोकात्सभवेदावयोःसमः । मृद्भस्मगोशकृतपिण्डेतीर्थेवालुकया
कृत्वालिङ्गंसकृत्पूज्यवसेत्कल्पायुतंदिवि । प्रजावान्भूमिमान् विद्वान् पुत्रवान्धनवां
ज्ञानवान् मुक्तिमान् साधुः शिवलिङ्गार्चनाद्भवेत् । शिवलिङ्गार्चनं स्थानमतीर्थं तीर्थमे
तत्रत्र मृतः पापी शिवलोकं स गच्छति । महादेव महादेव महादेवेति वादि
पश्चाद्यामि महात्रस्तो नामश्रवणलोभतः । शिवेति शब्दमुच्चार्य्य प्राणांस्त्यजति यो
कोटिजन्मार्जितात्पापात्मुक्तोमुक्तिंप्रयातिसः । शिवंकल्याणवचनंकल्याणंमुक्तिवा
यतस्तत् प्रभवेत्तेन स शिवः परिकीर्त्तितः । विच्छेदे धनबन्धूनां निमग्नः शोकसा
शिवेति शब्दमुच्चार्य्य लभेत् सर्वशिवं नरः । पापघ्ने वर्त्तते शश्च वश्च मुक्तिप्रदे
पापघ्नो मोक्षदो नृणां शिवस्तेन प्रकीर्त्तितः । शिवेति च शिवं नाम यस्य वाचि प्र

कोटिजन्मार्जितं पापंतस्य नश्यति निश्चितम्। इत्युक्त्वाशूलिने कृष्णोदत्त्वा कल्पतरुंमनुम्
तत्त्वज्ञानं मृत्युंजयमुवाच सिंहवाहिनीम् ॥ ५४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

अधुनातिष्ठवत्से ! त्वंगोलोकेमम सन्निधौ । कालेभजिष्यसि शिवंशिवदञ्च शिवायनम्
तेजःसु सर्वदेवानामाविर्भूय वरानने ! । संहृत्य दैत्यान् सर्वांश्च भविता सर्वपूजिता ॥
ततः कल्पविशेषे च सत्यं सत्ययुगे सति । भविता दक्षकन्या त्वं सुशीला शम्भुगेहिनी
ततः शरीरं संत्यज्य यज्ञे भर्त्तुश्च निन्दया । मेनायां शैलभार्य्यायां भवितापार्वतीति च ॥
दिव्यं वर्षसहस्रञ्च विहरिष्यसि शम्भुना । पूर्णं ततः सर्वकालमभेदत्वं लभिष्यसि ॥
काले सर्वेषु विश्वेषु महापूजा च पूजिते । भविता प्रतिवर्षे च शारदीया सुरेश्वरि ! ॥
ग्रामेषु नगरेष्वेवं पूजिता ग्रामदेवता । भवती भवितेत्येवं नामभेदेन चारुणा ॥ ६१ ॥
मदाज्ञया शिवकृतैस्तन्त्रैर्नानाविधैरपि । पूजाविधिं विधास्यामि कवचं स्तोत्रसंयुतम् ॥
भविष्यन्ति महान्तश्च तवैव परिचारकाः । धर्मार्थकाममोक्षाणां सिद्धाश्च फलभागिनः ॥
त्वां मातर्भजिष्यन्ति पुण्यक्षेत्रे च भारते । तेषां यशश्च कीर्तिश्च धर्मैश्वर्य्यंश्च वर्द्धते ॥
इत्युक्त्वा प्रकृतिं तस्यै मन्त्रमेकादशाक्षरम् । दत्त्वा सकामवीजञ्च मन्त्रराजमनुत्तमम् ॥
प्रकारविधिना ध्यानंभक्तं भक्तानुकम्पया । श्रीमाया कामवीजाढ्यं ददौमन्त्रं दशाक्षरम्
सृष्ट्यौपयोगिकींशक्तिसर्वसिद्धिञ्चकामदाम्। तद्विशिष्टोत्कृष्टतत्त्वज्ञानंतस्यैददौविभुः
त्रयोदशाक्षरं मन्त्रं दत्त्वा तस्मै जगत्पतिः । कवचं स्तोत्रसहितं शङ्कराय तथा द्विज !
दत्त्वा धर्माय तं मन्त्रं सिद्धिज्ञानं तदेव च । कामाय वह्नये चैव कुवेराय च वायवे ॥
एवं कुवेरादिभ्यस्तु दत्त्वा मन्त्रादिकं परम् । विधिश्चोवाच सृष्ट्यर्थं विधातुर्विधिरेव सः

श्रीभगवानुवाच ।

मदीयञ्च तपः कृत्वा दिव्यं वर्षसहस्रकम् । सृष्टिं कुरु महाभाग विधे नानाविधां पराम्
इत्युक्त्वा ब्रह्मणे कृष्णो ददौमालां मनोरमाम् । जगाम सार्द्धं गोपीभिर्गोपैर्वृन्दावनंवनम्
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सौति-शौनक-संवादे ब्रह्मखण्डे सृष्टिनिरूपणं
नाम षष्ठोऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः ।

सृष्टिप्रकरणम् ।

सौतिरुवाच ।

तदाब्रह्मा तपः कृत्वा सिद्धिं प्राप्य यथेप्सिताम् । ससृजे पृथिवीमादौ मधुकैटभमेद
ससृजे पर्वतानष्टौ प्रधानान् सुमनोहरान् । क्षुद्रानसंख्यान् किन्नूमः प्रधानाख्यां निशा
सुमेरुञ्चैव कैलासं मलयञ्च हिमालयम् । उदयञ्च तथाऽस्तञ्च सुवेलं गन्धमादनम्।
समुद्रान् ससृजे सप्त नदान् कतिविधा नदीः । वृक्षांश्च ग्रामनगरं समुद्राख्यां निशा
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलार्णवान् । लक्षयोजनमानेन द्विगुणांश्च परात्परान् ॥ ५
सप्तद्वीपांश्च तद्भूमिमण्डले कमलाकृते । उपद्वीपांस्तथा सप्त सीमशैलांश्च सप्त च।
निबोध विप्र द्वीपाख्यांपुरा या विधिना कृता । जम्बुशाककुशप्लक्षक्रौञ्चन्यग्रोधपौष्क
मेरोरष्टसु शृङ्गेषु ससृजेऽष्टौ पुरीः प्रभुः । अष्टानां लोकपालानां विहाराय मनोहरा
मूलेऽनन्तस्य नगरीं निर्माय जगतां पतिः । ऊर्द्ध्वे स्वर्गांश्च सप्तैव तेषामाख्यां निशा
भूर्लोकञ्च भुवर्लोकं स्वर्लोकं सुमनोहरम् । जनलोकं तपोलोकं सत्यलोकञ्च शौन
शृङ्गमूर्द्धनि ब्रह्मलोकं जरादिपरिवर्जितम् । तदूर्द्ध्वे ध्रुवलोकञ्च सर्वतः सुमनोहर
तदधः सप्तपातालान्निर्ममे जगदीश्वरः । स्वर्गातिरिक्तभोगाढ्यानधोऽधः क्रमतो मु
अतलं वितलञ्चैव सुतलञ्च तलातलम् । महातलञ्च पातालं रसातलमधस्ततः ॥ १
सप्तद्वीपैः सप्तस्वर्गैः सप्तपातालसंज्ञकैः । एभिर्लोकैश्च ब्रह्माण्डं ब्रह्माधिकारमेव च
एवञ्चासंख्यब्रह्माण्डं सर्वं कृत्रिममेव च । महाविष्णोश्च लोमाञ्चविवरेषु च शौनक
प्रतिविश्वेषु दिक्पाला ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । सुरा नरादयः सर्वे सन्ति कृष्णस्य मा
ब्रह्माण्डगणना कर्तुं न क्षमो जगतां पतिः । न शङ्करो न धर्मश्च न च विष्णुश्च
संख्यातुमीश्वरः शक्तो न संख्यातुं तथापि स... । विश्वाकाशदिशाऽध्वस... तोयधि

कृत्रिमाणि च विश्वानि विश्वस्थानि च यानि च।
अनित्यानि च विप्रेन्द्र स्वप्नवन्नश्वराणि च ॥ १६ ॥
वैकुण्ठः शिवलोकश्च गोलोकश्च तयोः परः। नित्यो विश्वबहिर्भूतश्चात्माकाशदिशो यथा॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सौतिशौनक-संवादे ब्रह्मखण्डे सृष्टिनिरूपणं नाम सप्तमोऽध्यायः।

अष्टमोऽध्यायः।

सृष्टि प्रकरणम्।

सौतिरुवाच।

ब्रह्मा विश्वं विनिर्माय सावित्र्यां वरयोषिति।
चकार वीर्य्याधानञ्च कामुक्यां कामुको यथा ॥ १ ॥
सा दिव्यं शतवर्षञ्च धृत्वा गर्भं सुदुःसहम्। सुप्रसूता च सुषुवे चतुर्वेदान् मनोहरान् ॥
विविधान् शास्त्रसङ्घांश्च तर्कव्याकरणादिकान्।
षट्त्रिंशत्संख्यका दिव्या रागिणीः सुमनोहराः ॥ ३ ॥
षड्रागान् सुन्दरांश्चैव नानातालसमन्वितान्। सत्यत्रेताद्वापरांश्च कलिञ्च कलहप्रियम्॥
वर्षं मासमृतुञ्चैव तिथिं दण्डक्षणादिकम्। दिनं रात्रिञ्च वारांश्च सन्ध्यामुषसमेव च॥
पुष्टिञ्च देवसेनाञ्च मेधाञ्च विजयां जयाम्। षट्कृत्तिकाश्च योगांश्च करणांश्च तपोधन!॥
देवसेनां महाषष्ठीं कार्त्तिकेयप्रियां सतीम्। मातृकासु प्रधाना सा बालानामिष्टदेवता ॥
ब्राह्मं पाद्मञ्च वाराहं कल्पत्रयमिदं स्मृतम्। नित्यं नैमित्तिकञ्चैव द्विपरार्द्धञ्च प्राकृतम्॥
चतुर्विधञ्च प्रलयं कालञ्च मृत्युकन्यकाम्। सर्वान् व्याधिगणांश्चैव सा प्रसूय स्तनं ददौ॥
अथ धातुः पृष्ठदेशादधर्मः समजायत। अलक्ष्मीस्तद्वामपार्श्वाद्बभूव तस्य कामिनी ॥
नाभिदेशाद्विश्वकर्मा बभूव शिल्पिनां गुरुः। महान्तो वसवोऽष्टौ च महाबलपराक्रमाः॥

अथ धातुश्च मनस आविर्भूताः कुमारकाः । चत्वारः पञ्चवर्षीया ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः । सनत्कुमारो भगवांश्चतुर्थो ज्ञानिनां वरः ॥
आविर्बभूव मुखतः कुमारः कनकप्रभः । दिव्यरूपधरः श्रीमान् सस्त्रीकः सुन्दरो युवा
क्षत्रियाणां वीजरूपो नाम्ना स्वायम्भुवो मनुः ।
या स्त्रीः सा शतरूपा च रूपाढ्या कमलाकला ॥ १५ ॥
सस्त्रीकश्च मनुस्तस्थौ धात्राज्ञापरिपालकः । स्वयं विधाता पुत्रांश्च तानुवाच प्रहर्षित
सृष्टिं कर्तुं महाभागो महाभागवतान् द्विज!। जग्मुस्ते च नहीत्युक्त्वा तप्तुं कृष्णपराय
चुकोप हेतुना तेन विधाता जगतां पतिः । कोपासक्तस्य च विधेर्ज्वलतो ब्रह्मतेजसा
आविर्भूता ललाटाच्च रुद्रा एकादश प्रभो । कालाग्निरुद्रः संहर्त्ता तेषामेकः प्रकीर्त्तित
सर्वेषामेव विश्वानां स एवतामसःस्मृतः।राजसश्च स्वयं ब्रह्मा।शिवो विष्णुश्चसात्विक
गोलोकनाथः कृष्णश्च निर्गुणः प्रकृतेः परः । परमाज्ञानिनो मूर्खा वदन्ति तामसं शिव
शुद्धसत्त्वस्वरूपश्च निर्मलं वैष्णवाग्रणीम्।शृणु नामानि रुद्राणां वेदोक्तानि च यानि
महान् महात्मा मतिमान् भीषणश्च भयङ्करः।ऋतुध्वजश्चोर्द्ध्वकेशःपिङ्गलाक्षोरुचिःशुचि
पुलस्त्यो दक्षकर्णाच्च पुलहो वामकर्णतः । दक्षनेत्रात्तथाऽत्रिश्च वामनेत्रात् क्रतुःस्वय
अरणिर्नासिकारन्ध्रादङ्गिराश्च मुखाद्रुचिः । भृगुश्च वामपार्श्वाच्च दक्षो दक्षिणपार्श्व
छायायाः कर्दमो जातो नाभेः पञ्चशिखस्तथा । वक्षसश्चैव वोढुश्च कण्ठदेशाच्च नार
मरीचिः स्कन्धदेशाच्चैवापान्तरतमा गलात् । वशिष्ठो रसनादेशात् प्रचेता अधरौष्ठ
हंसश्च वामकुक्षेश्च दक्षकुक्षेर्यतिः स्वयम् । सृष्टिं विधातुं स विधिश्चकाराज्ञां सुतान्
पितुर्वाक्यं समाकर्ण्य तमुवाच स नारदः ॥ २८ ॥

नारद उवाच ।

पूर्वमानयमज्ज्येष्ठान् सनकादीन् पितामह । कारयित्वा दारयुक्तानस्मान् वद जगत्पते!
येना ते तपसे युक्ताः संसाराय वयं कथम् । अहो हन्त ! प्रभोर्बुद्धिर्विपरीताय कल्प
कस्मै पुत्राय पीयूषात् परं दत्तं तपोऽधुना । कस्मै ददासि विषयं विषमद्ध विषाधिक

अतीव निम्ने घोरे च भवाब्धौ यः पतेत् पितः ।
निष्कृतिस्तस्य नास्तीति कोटिकल्पे गतेऽपि च ॥ ३२ ॥
निस्तारबीजं सर्वेषां बीजञ्च पुरुषोत्तमम् । सर्वदं भक्तिदं दास्यप्रदं सत्यं कृपामयम् ॥
भक्तैकशरणं भक्तवत्सलं स्वच्छमेव च । भक्तप्रियं भक्तनाथं भक्तानुग्रहकारकम् ॥ ३४ ॥
भक्ताराध्यं भक्तसाध्यं विहाय परमेश्वरम् । मनो दधाति को मूढो विषये नाशकारणे
विहाय कृष्णसेवाञ्च पीयूषादधिकां प्रियाम् । कोमूढो विषमश्नाति विषमं विषयाभिधम्
स्वप्नवन्नश्वरं तुच्छमसत्यं नाशकारणम् । यथा दीपशिखाग्रञ्च कीटानां सुमनोहरम् ॥
यथा बड़िशमांसञ्च मत्स्यापातसुखप्रदम् । तथा विषयिणां तात विषयं मृत्युकारणम्
इत्युक्त्वा नारदस्तत्र विरराम विधेः पुरः । तस्थौ तातं नमस्कृत्य ज्वलदग्निशिखोपमः ॥
ब्रह्मा कोपपरीतश्च शशाप तनयं द्विज । उवाच कम्पिताङ्गश्च रक्तास्यः स्फुरिताधरः ॥

ब्रह्मोवाच ।

भविता ज्ञानलोपस्ते मच्छापेन च नारद । क्रीड़ामृगस्त्वं साध्वीश्च योषिल्लुब्धश्च लम्पटः
स्थिरयौवनयुक्तानां रूपाढ्यानां मनोहरः । पञ्चाशत्कामिनीनाञ्च भर्त्ता च प्राणवल्लभः
शृङ्गारशास्त्रवेत्ता च महाशृङ्गारलोलुपः । नानाप्रकारशृङ्गारनिपुणानां गुरोर्गुरुः ॥
गन्धर्वाणाञ्च प्रवरः सुस्वरश्च सुगायनः । वीणावादनसन्दर्भनिष्णातः स्थिरयौवनः ॥
प्राज्ञो मधुरवाक् शान्तः सुशीलः सुन्दरः सुधीः । भविष्यसि न सन्देहो नामतश्चोपवर्हणः
ताभिर्दिव्यं लक्षयुगं विहृत्य निर्जने वने । पुनर्मद्दीयशापेन दासीपुत्रश्च तत्परः ॥ ४६ ॥
वत्स वैष्णवसंसर्गात् वैष्णवोच्छिष्टभोजनात् । पुनः कृष्णप्रसादेन भविष्यसि ममात्मजः
ज्ञानं दास्यामि ते दिव्यं पुनरेव पुरातनम् । अधुना भव नष्टस्त्वं मत्सुतो निपत ध्रुवम्
इत्युक्त्वा सुतं विप्र विरराम जगत्पतिः । रुरोद नारदस्तातमुवाच संपुटाञ्जलिः ॥

नारद उवाच ।

क्रोधं संहर संहर्त्तस्तात तात जगद्गुरो । स्रष्टुस्तपस्वीशस्याहो क्रोधोऽयमय्यनाकरः ॥
शापेत् परित्यजेत् विद्वान् पुत्रमुत्पथगामिनम् । तपस्विनं सुतं शप्तुं कथमर्हसि पण्डित
जनिर्भवतु मे ब्रह्मन् यासु यासु च योनिषु । न जहातु हरेर्भक्तिर्मामेवं देहि मे वरम् ॥

पुत्रश्चेज्जगतां धातुर्नास्ति भक्तिर्हरेः पदे। शूकरादतिरिक्तश्च सोऽधमो भारते भुवि।
जातिस्मरो हरेर्भक्तियुक्तः शूकरयोनिषु। जनिर्लभेत् स प्रवरो गोलोकं याति कर्मणा।
गोविन्दचरणाम्भोजभक्तिमाध्वीकमीप्सितम्। पिबतां वैष्णवादीनां स्पर्शपूतावसुन्धरा।
तीर्थानिस्पर्शमिच्छन्ति वैष्णवानां पितामह। पापानां पापिदत्तानां क्षालनायात्मनामपि।
मन्त्रोपदेशमात्रेण नरा मुक्ताश्च भारते। परैश्च कोटिपुरुषैः पूर्वैः सार्द्धं हरेरहो॥
कोटिजन्मार्जितात् पापान्मन्त्रग्रहणमात्रतः। मुक्ताः शुध्यन्ति यत्पूर्वं कर्म निर्मूलयन्ति
पुत्रान् दारांश्च शिष्यांश्च सेवकान्बान्धवांस्तथा,यो दर्शयतिसन्मार्गं सद्गतिस्तंलभेद्ध्रुवम्
यो दर्शयत्यसन्मार्गं शिष्यैर्विश्वासितोगुरुः। कुम्भीपाकेस्थितिस्तस्ययावच्चन्द्रदिवाकरौ

स किं गुरुः स किं भृतः स किं स्वामी स किं सुतः।
यः श्रीकृष्णपदाम्भोजे भक्तिं दातुमनीश्वरः॥ ६१॥

शप्तो निरपराधेन त्वयाऽहं चतुरानन। मया शप्तुं त्वमुचितो घ्नन्तं घ्नन्त्यपि पण्डिताः
कवचस्तोत्रपूजाभिः सहितस्ते मनुर्मनोः। लुप्तो भवतु मच्छापात् प्रतिविश्वेषुनिश्चितम्
अपूज्यो भव विश्वेषु यावत् कल्पत्रयं पितः। गतेषु त्रिषु कल्पेषु पूज्यपूज्यो भविष्यसि
अधुना यज्ञभागस्ते व्रतादिष्वपि सुव्रत। पूजनं चास्तु मामैकं वन्द्यो भव सुरादिभिः
इत्युक्त्वा नारदस्तत्र विरराम पितुः पुरः। तस्थौ सभायां स विधिर्हृदयेन विदूयता
उपवर्हणगन्धर्वो नारदस्तेन हेतुना। दासीपुत्रश्च शापेन पितुरेव च शौनक॥ ६७
ततः पुनर्नारदश्च स बभूव महानृषिः। ज्ञानं प्राप्य पितुः पश्चात् कथयिष्यामि चाधुना

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सौति-शौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे ब्रह्म-नारदशापोपलम्भनं नाम अष्टमोऽध्यायः।

नवमोऽध्यायः।

ब्रह्मपुत्रकृतसृष्टिप्रकरणम्।

सौतिरुवाच।

अथ ब्रह्मा स्वपुत्रांस्तानादिदेश च सृष्टये। सृष्टिं प्रचक्रुस्ते सर्वे विप्रेन्द्र नारदं विना
मरीचेर्मनसो जातः कश्यपश्च प्रजापतिः। अत्रेर्नेत्रमलाच्चन्द्रः क्षीरोदे च बभूव ह।

प्रचेतसोऽपि मनसो गौतमश्च बभूव ह । पुलस्त्यमानसः पुत्रो मैत्रावरुण एव, च ॥३॥
मनोश्च शतरूपायां तिस्रः कन्याः प्रजज्ञिरे । आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिस्ताः पतिव्रताः ॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ द्वौ च पुत्रौ मनोहरौ । उत्तानपादतनयो ध्रुवः परमधार्मिकः ॥ ५ ॥
आकूतिं रुचये प्रादात् दक्षाय च प्रसूतिकाम् । देवहूतिं कर्दमाय यत्पुत्रः कपिलः स्वयम्
प्रसूत्यां दक्षवीजेन षष्टिकन्याः प्रजज्ञिरे । अष्टौ धर्माय प्रददौ रुद्रायैकादश स्मृताः ॥७॥
शिवायैकां सतीं प्रादात् कश्यपाय त्रयोदश । सप्तविंशतिकन्याश्च दक्षश्चन्द्राय दत्तवान्
नामानि धर्मपत्नीनां मत्तो विप्रनिशामय । शान्तिःपुष्टिर्धृतिस्तुष्टिःक्षमाश्रद्धामतिःस्मृतिः
शान्तेः पुत्रश्च सन्तोषः पुष्टेः पुत्रो महानभूत् । धृतेर्धैर्य्यश्च तुष्टेश्च हर्षदर्पौ सुतौ स्मृतौ
क्षमापुत्रः सहिष्णुश्च श्रद्धापुत्रश्च धार्मिकः । मतेर्ज्ञानाभिधः पुत्रः स्मृतेर्जातिस्मरोमहान्
पूर्वपत्न्याश्च मूर्त्याश्च नरनारायणावृषी । बभूवुरेते धर्मिष्ठा धर्मपुत्राश्च शौनक ॥ १२ ॥
नामानि रुद्रपत्नीनां सावधानं निबोध मे । कला कलावती काष्ठा कालिका कलहप्रिया
कन्दली भीषणा रास्ना प्रमोचा भूषणा शुकी । एतासां बहवः पुत्रा बभूवुः शिवपार्श्वदाः
सा सती स्वामिनिन्दायां तनुं तत्याज यज्ञतः । पुनर्भूत्वा शैलपुत्री लेभे च शङ्करं पतिम्
कश्यपस्य प्रियाणाञ्च नामानिशृणु धार्मिक । अदितिर्देवमाता या दैत्यमातादितिस्तथा
सर्पमाता तथा कद्रुर्विनता पक्षिसूस्तथा । सुरभिश्च गवां माता महिषाणाञ्च निश्चितम्
सारमेयादिजन्तूनां सरमा सूश्चतुष्पदाम् । दनुः प्रसूर्दानवानामन्याश्चेत्येवमादिकाः ॥
इन्द्रश्च द्वादशादित्या उपेन्द्राद्याः सुरा मुने ! । कथितास्त्वादितेः पुत्रा महाबलपराक्रमाः
इन्द्रपुत्रो जयन्तश्च ब्रह्मन् शच्यामजायत । आदित्यस्य सवर्णायां कन्यायां विश्वकर्मणः
शनैश्चरयमौ पुत्रौ कालिन्दी कन्यका तथा । उपेन्द्रवीर्य्यात् पृथ्व्यान्तु मङ्गलःसमजायत

शौनक उवाच ।

कथं सौते स चोपेन्द्रान्मङ्गलः समजायत । वसुन्धरायां बलवान् तन्मेव्याख्यातुमर्हसि

सौतिरुवाच ।

उपेन्द्ररूपमालोक्य कामार्त्ता च वसुन्धरा । विधाय सुन्दरीवेशमक्षतप्रौढयौवना २३॥
मलये निर्जने रम्ये चारुचन्दनपल्लवे । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् ॥ २४ ॥

तं सुशीलंशयानञ्चशान्तंसस्मितमीप्सितम् । सस्मिता तस्य तल्पेच सहसासमुपस्थित
सुरम्यां मालतीमालां ददौ तस्मै वरानना । सुगन्धि चन्दनं चारु कस्तूरीकुङ्कुमान्वित
उपेन्द्रस्तन्मनो ज्ञात्वा कामि मन्मथपीड़ितम् । नानाप्रकारश्रृङ्गारं चकार च तया स
तदङ्गसङ्गसंसक्ता मूर्च्छां प्राप सती तदा । मृतेव निद्रितेवासौ बीजाधानं कृते हरौ
तां विलग्नाञ्चसुश्रोणींसुखसम्भोगमूर्च्छिताम् । बृहन्मुक्तनितम्बाञ्चसस्मितांविपुलस्तनी
क्षणं वक्षसि कृत्वा तां तदोष्ठञ्च चुचुम्ब ह । विहाय तत्र रहसि जगाम पुरुषोत्तमः ॥३
उर्वशी पथि गच्छन्ती बोधयामास तां मुने ! । साचपप्रच्छवृत्तान्तंकथयामासभूश्चता
वीर्य्यं संवरणं कर्त्तुं सा चाशक्ता च दुर्बला । प्रबालस्याकरेत्रस्तावीर्य्यन्यासंचकार
तेन प्रबालवर्णश्च कुमारः समपद्यत । तेजसा सूर्य्यसदृशो नारायणसुतो महान् ॥३३
मङ्गलस्य प्रिया मेधा तस्य घण्टेश्वरो महान् । व्रणदातेति तेजस्वी विष्णुतुल्योबभूव
दितेर्हिरण्यकशिपुहिरण्याक्षौ महाबलौ । कन्या च सिंहिका विप्र सैंहिकेयश्च तत्सु
निर्ऋतिः सिंहिका सा च तेन राहुश्च नैर्ऋतः । शूकरेणहिरण्याक्षोऽप्यनपत्योमृतोयु
हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रह्लादो वैष्णवाग्रणीः । विरोचनश्च तत्पुत्रस्तत्पुत्रश्चबलिःस्वयम्
बलेः पुत्रो महायोगी ज्ञानी शङ्करकिङ्करः । दितेर्वंशश्च कथितः कद्रुवंशं निबोध मे
अनन्तं वासुकिञ्चैव कालीयञ्च धनञ्जयम् । कर्कोटकं तक्षकञ्च पद्ममैरावतं तथा ॥३६
महापद्मञ्च शङ्कुञ्च शङ्खं संवरणन्तथा । धृतराष्ट्रञ्च दुर्द्धर्षं दुर्जयं दुर्मुखं बलम् ॥४०
गोक्षं गोकामुखञ्चैव विरूपादींश्च शौनक । एतेषां प्रवराश्चैव यावत्यः सर्पजातयः
कन्यका मनसा देवी कमलांशसमुद्भवा । तपस्विनीनां प्रवरा महातेजस्विनी शुभा
यत्पतिश्च जरत्कारुर्नारायणकलोद्भवः । आस्तीकस्तनयो यस्या विष्णुतुल्यश्च तेज
एतेषां नाममात्रेण नास्ति नागभयं नृणाम् । कद्रुवंशोनिगदितो विनतायाश्च श्रूयताम्
वैनतेयारुणौ पुत्रौ विष्णुतुल्यपराक्रमौ । तद्वभूवुः क्रमेणैव यावत्यः पक्षिजातयः ॥
गावश्च महिषाश्चैव सुरभिप्रवरा इमे । सर्वे वै सारमेयाश्च बभूवुः सरमासुताः ॥४६
दानवाश्च दनोर्वंश्या अन्यासामन्यजातयः । उक्तः कश्यपवंशश्च चन्द्राख्यानं निबोध
नामानि चन्द्रपत्नीनां सावधानं निशामय । अत्यपूर्वञ्च चरितं पुराणेषु पुरातनम् ॥४

अश्विनी भरणी चैव कृत्तिका रोहिणीतथा। मृगशीर्षा तथार्द्राच पूज्यासाध्वीपुनर्वसुः
पुष्याश्लेषा मघा पूर्वफल्गुन्युत्तरफल्गुनी। हस्ताचित्रातथास्वाती विशाखाचानुराधिका
ज्येष्ठा मूला तथा पूर्वाषाढ़ा चैवोत्तरा स्मृता। श्रवणाच धनिष्ठाच तथाशतभिषा शुभा
पूर्वोत्तरभाद्रपदी रेवत्यन्ता विधुप्रियाः। तासां मध्ये च शुभगा रोहिणी रसिका वरा
सन्ततं रसभावेन चकार शशिनं वशम्। रोहिण्युपगतश्चन्द्रो न यात्यन्याश्च कामिनीम्
सर्वा भगिन्यः पितरं कथयामासुरादृताः। सपत्नीकृतसन्तापं प्राणनाशकरं परम् ॥५४॥
दक्षः प्रकुपितश्चन्द्रं शशाप मन्त्रपूर्वकम्। द्रुतं श्वशुरशापेन यक्ष्मग्रस्तो बभूव सः ॥५५
दिने दिने यक्ष्मणा स क्षीयमाणश्च दुःखितः। वपुष्यर्द्धं क्षीयमाणे शङ्करं शरणं ययौ
दृष्ट्वा चन्द्रं शङ्करश्च क्लेशितं शरणागतम्। करुणासागरस्तस्मै कृपया चाभयं ददौ ॥५७॥
निर्मुक्तं यक्ष्मणो कृत्वा स्वकपोले स्थलंददौ। अमरोनिर्भयोभूत्वा सुतस्थौशिवशेखरे
तंशिवः शेखरे कृत्वा बभूव चन्द्रशेखरः। नास्ति देवेषु लोकेषु शिवात् शरणपञ्जरः॥
दक्षकन्याः पतिं मुक्तं दृष्ट्वा च रुरुदुः पुनः। आजग्मुः शरणं तातं दक्षं तेजस्विनां वरम् ॥
उच्चैश्च रुरुदुर्गत्वा निहत्याङ्गं पुनः पुनः। तमूचुः कातरं दीना दीननाथं विधेः सुतम् ॥

दक्षकन्या ऊचुः।

स्वामिसौभाग्यलाभाय त्वमुक्तोऽस्माभिरेवच।
सौभाग्यमस्तु नस्तात! गतः स्वामी गुणान्वितः॥ ६२॥

स्थिते चक्षुषि हेतात! दृष्टंध्वान्तमयं जगत्। विज्ञातमधुना स्त्रीणां पतिरेव हि लोचनम्
पतिरेव गतः स्त्रीणां पतिः प्राणाश्च सम्पदः। धर्मार्थकाममोक्षाणां हेतुः सेतुर्भवार्णवे
पतिर्नारायणः स्त्रीणां व्रतंधर्मः सनातनः। सर्वकर्म वृथातासां स्वामिना विमुखाश्चयाः
स्नानश्च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दक्षिणा। सर्वदानानि पुण्यानि व्रतानि नियमानि च ॥
देवार्चनं चानशनं सर्वाणिच तपांसिच। स्वामिनः पादसेवायां कलांनार्हन्ति षोड़शीम्
सर्वेषां बान्धवानाञ्च प्रियःपुत्रश्च योषिताम्। सएव स्वामिनोऽस्माश्च शतपुत्रात् परःपतिः
असद्वंशप्रसूता या सा द्वेष्टि स्वामिनं सदा। यस्या मनश्चलं दुष्टं चञ्चलं परपूरुषे ॥
पतितं रोगिणं दुष्टं निर्धनं गुणहीनकम्। युवानंचैव वृद्धं वा भजेत्तं न त्यजेत् रुषी ॥

सगुणं निर्गुणं वापि या द्वेष्टि संत्यजेत् पतिम् । पच्यते कालसूत्रे सा यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।
कीटैःशकुनतुण्डैश्च भक्षिता सा दिवानिशम् । भुङ्क्ते मृतच्च सामांसं पिबेन्मूत्रञ्च तृष्णया ।
गृध्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि शूकरः । श्वापदः शतजन्मानि सा भवेद्बन्धुहा ततः ।
ततो मानवजन्मानि लभेचेत् पूर्वकर्मणः । विधवा धनहीना च रोगयुक्ता भवेत् ध्रुवम् ।
देहि नः कान्तदानञ्च कामपूरं विधेः सुत । विधात्रा सदृशस्त्वञ्च पुनःस्रष्टुं क्षमो जगत् ।
कन्यानां वचनं श्रुत्वा दक्षः शङ्करसन्निधिम् । जगाम शम्भुस्तं दृष्ट्वा समुत्थाय ननाम च ।
दक्षस्तस्याशिषं कृत्वा समुवाच कृपानिधिम् । तत्याज कोपं दुर्द्धर्षं दृष्ट्वाच प्रणतं शिवम् ।

दक्ष उवाच ।

देहि जामातरं शम्भो मदीयं प्रणवल्लभम् । मत्सुतानाञ्च प्राणानां परमेव प्रियं पतिम् ।
न चेद्ददासि जामातर्मम जामातरं विधुम् । दास्यामि दारुणं शापं तुभ्यं त्वं केनमुच्यसे ।
दक्षस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच कृपानिधिः । सुधाधिकञ्च वचनं ब्रह्मन्शरणपञ्जरः । ८०

शिव उवाच ।

करोषि भस्मसाचेन्मां ददासि शापमेव च । नाहं दातुं समर्थश्च चन्द्रञ्च शरणागतम् ।
शिवस्य वचनं श्रुत्वा दक्षस्तं शप्तुमुद्यतः । शिवःसस्मार गोविन्दं विपन्मोक्षणकारकम् ।
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो वृद्धब्राह्मणरूपधृक् । समाययौ तयोर्मूलं तौ तञ्च नमतुः क्रमात् ।
दत्त्वा शुभाशिषं तौ स ब्रह्मज्योतिः सनातनः । उवाच शङ्करं पूर्वं परिपूर्णतमो द्विज ।

श्रीभगवानुवाच ।

नचात्मनःप्रियः कश्चित् शर्व ! सर्वेषु बन्धुषु । आत्मानं रक्ष दक्षायदेहि चन्द्रंसुरेश्वर ।
तपस्विनां वरः शान्तस्त्वमेव वैष्णवाग्रणीः । समः सर्वेषु जीवेषु हिंसाक्रोधविवर्जितः ।
दक्षः क्रोधी च दुर्द्धर्षस्तेजस्वी ब्रह्मणः सुतः । इष्टो बिभेति दुर्द्धर्षं न दुर्द्धर्षश्च कञ्चन ।
नारायणवचः श्रुत्वा प्रहस्य शङ्करः स्वयम् । उवाच नीतिसारञ्च नीतिबीजं परात्परम् ।

शङ्कर उवाच ।

तपो दास्यामि तेजश्च सर्वसिद्धिञ्च सम्पदम् । प्राणांश्च न समर्थोऽहं प्रदातुं शरणागतम् ।
यो ददाति भयेनैव प्रपन्नं शरणागतम् । तञ्च धर्मः परित्यज्य याति शप्त्वा सुदारुणम् ।

सर्वं तोकुं समर्थोऽहं न स्वधर्मं जगत्प्रभो !। यःस्वधर्मविहीनश्च सच सर्वबहिष्कृतः॥
यश्च धर्मं सदा रक्षेत् धर्मस्तं परिरक्षति। धर्मं वेदेश्वर त्वञ्च किं मां ब्रूहि स्वमायया॥
त्वं सर्वपाता स्रष्टाच हन्ताच परिणामतः। त्वयि भक्तिर्दृढ़ा यस्यतस्य कस्माद्भयंभवेत्
शङ्करस्यवचः श्रुत्वा भगवान् सर्वभाववित्। चन्द्रं चन्द्राद्विनिष्कृष्य दक्षायप्रददौहरिः
प्रतस्थावर्द्धचन्द्रश्च निर्व्याधिः शिवशेखरे। निर्जग्राह परं चन्द्रं विष्णुदत्तं प्रजापतिः॥
यक्ष्मग्रस्तञ्च तं दृष्ट्वा दक्षस्तुष्टाव माधवम्। पक्षे पूर्णं क्षतं पक्षे तं चकार हरिःस्वयम्॥
कृष्णस्तेभ्योवरं दत्त्वा जगाम स्वालयं द्विज। दक्षश्चन्द्रं गृहीत्वाच कन्याभ्यः प्रददौपुनः
चन्द्रस्ताःसंपरिप्राप्य विजहार दिवानिशम्। समं ददर्शताः सर्वास्तत्प्रभृत्येव कम्पितः
इत्येवं कथितं सर्वं किञ्चित् सृष्टिक्रमं मुने!। श्रुतञ्च गुरुवक्त्रेण पुष्करे मुनिसंसदि॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे नवमोऽध्यायः।

दशमोऽध्यायः।

धनेशजन्मकथनम्।

सौतिरुवाच।

भृगोः पुत्रश्च च्यवनः शुक्रश्च ज्ञानिनांवर। क्रतोरपिक्रियाभार्य्या बालखिल्यानसूयत॥
त्रयः पुत्राश्चाङ्गिरसो बभूवुर्मुनिसत्तमाः। वृहस्पतिरुतथ्यश्च सम्वरश्चापि शौनक॥२॥
वशिष्ठस्यसुतः शक्त्रिः(क्तिः)शक्त्रेःपुत्रःपराशरः। पराशरसुतःश्रीमान् कृष्णद्वैपायनोहरिः
व्यासपुत्रः शिवांशश्च शुकश्च ज्ञानिनांवरः। विश्वश्रवाः पुलस्त्यस्य यस्यपुत्रोधनेश्वरः

शौनक उवाच।

अहो! पुराणविदुषामतीवदुर्गमं वचः। न बुद्धं वचनं किञ्चिद्धनेशजन्मपूर्वकम्॥५॥
अधुना कथितं जन्म धनेशस्येश्वरादिदम्। पुनर्भिन्नक्रमं जन्म ब्रवीषि कथमेव माम्॥

सौतिरुवाच ।

बभूवुरेते दिक्पालाः पुरा च परमेश्वरात् । पुनश्च ब्रह्मशापेन स च विश्वश्रवःसुतः ॥
गुरवे दक्षिणां दातुमुतथ्यश्च धनेश्वरम् । ययाचे कोटिस्वर्णञ्च यत्नतश्च प्रचेतसे ॥ ८
धनेशो विरसो भूत्वा तस्मै तद्दातुमुद्यतः । चकार भस्मसात् विप्र पुनर्जन्म ललाभ स
तेन विश्वश्रवःपुत्रः कुवेरश्च धनाधिपः । रावणः कुम्भकर्णश्च धार्मिकश्च विभीषणः ।
पुलहस्य सुतो वात्स्यः शाण्डिल्यश्च रुचेः सुतः । सावर्णिगौतमाज्जज्ञे मुनिप्रवर एव
काश्यपः कश्यपाज्जातो भरद्वाजो वृहस्पतेः । स्वयं वात्स्यश्चपुलहात्सावर्णिगौतमात्त
शाण्डिल्यश्च रुचेःपुत्रो मुनिस्तेजस्विनां वरः । बभूवुः पञ्चगोत्राश्च एतेषां प्रवरा भवे
बभूवुर्ब्रह्मणो वक्त्रादन्या ब्राह्मणजातयः । ताः स्थिता देशभेदेषु गोत्रशून्याश्च शौनक
चन्द्रादित्यमनूनाञ्च प्रवराः क्षत्रियाः स्मृताः । ब्रह्मणोबाहुदेशाच्चैवान्याः क्षत्रियजात
उरुदेशाच्च वैश्याश्च पादतः शूद्रजातयः । तासां सङ्करजातेन बभूवुर्वर्णसङ्कराः ॥ १६
गोपनापितभिल्लाश्च तथा मोदककूवरौ । ताम्बूलिस्वर्णकारौ च तथा वणिकजातयः

इत्येवमाद्या विप्रेन्द्र सत्शूद्राः परिकीर्त्तिताः ।
शूद्राविशोस्तु करणोऽम्बष्ठो वैश्याद्विजन्मनोः ॥ १८ ॥

विश्वकर्मा च शूद्रायां वीर्य्याधानं चकारसः । ततो बभूवुः पुत्राश्चनवैते शिल्पकारि
मालाकारकर्मकारशङ्खकारकुविन्दकाः । कुम्भकारः कंसकारः षड़ेते शिल्पिनां वराः ।
सूत्रधारश्चित्रकारः स्वर्णकारस्तथैव च । पतितास्ते ब्रह्मशापादयाज्या वर्णसङ्कराः ॥

शौनक उवाच ।

कथं देवो विश्वकर्मा वीर्य्याधानञ्चकार सः । शूद्रायामधमायाञ्च कथं तेपतितास्त्रयः
कथं तेषु ब्रह्मशापो बभूव केन हेतुना । हे पुराणविदां श्रेष्ठ तन्नः संशितुमर्हसि ॥ २

सौतिरुवाच ।

घृताची कामतः कामं वेशञ्चक्रे मनोहरम् । तां ददर्श विश्वकर्मा गच्छन्तीं पुष्करे प
आगच्छन्त्रींविलोकाच्च प्रसादोत्फुल्लमानसः । तां ययाचे स शृङ्गारं कामेन हृतचेतनः
रत्नालङ्कारभूषाढ्यां सर्वावयवकोमलाम् । यथा षोड़शवर्षीयां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्

वृहन्नितम्बभारार्त्तां मुनिमानसमोहिनीम् । अतिवेगकटाक्षेणलोलांकामातिपीड़िताम् ॥
तत्श्रोणीं कठिनां दृष्ट्वा वायूनां शुकसंहृताम् । अतीवच्चैस्तनयुगं कठिनंवर्त्तुलाकृतम् ।
सस्मितंचारुवक्त्रञ्च शरच्चन्द्रविनिन्दकम् । पक्वबिम्बफलारक्तमोष्ठाधरं मनोहरम् ।२६।
सिन्दूरविन्दुसंयुक्तं कस्तूरीविन्दुभिः सह ।
कपालमुज्ज्वलं शश्वत् कपोलं मणिकुण्डलम् ॥ ३० ॥
तमुवाचप्रियां शान्तां कामशास्त्रविशारदः । कामाग्निवर्द्धनोद्योगिवचनंश्रुतिसुन्दरम् ॥

विश्वकर्मोवाच ।

अयि क यासि ललिते मम प्राणाधिके प्रिये । मम प्राणांश्चापहृत्य स्थिताभव क्षणंशुभे ॥
त्वैवान्वेषणंकृत्वाभ्रमामि जगतीतलम् । स्वप्राणांस्त्यक्तुमिष्टोऽहंतां न दृष्ट्वाहुताशने ॥
त्वंयासीतिकामलःकंश्रुत्वारम्भामुखेऽधुना । आगच्छन्नहमेवाद्यचास्मिन्वर्त्मन्यवस्थितः
अहो सरस्वतीतीरे पुष्पोद्याने मनोहरे । सुगन्धिमन्दशीतेन वायुना सुरभीकृते ॥३५ ॥
रमकान्तेमयासार्द्धंयूनाकान्तेन शोभने । विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमोगुणवान् भवेत् ॥
स्थिरयौवनसंयुक्ता त्वमेव चिरजीविनी । कामुकी कोमलाङ्गी च सुन्दरीषु च सुन्दरी
मृत्युञ्जयवरेणैव मृत्युकन्या जितयामया । कुवेरभवनं हृत्वा धनंलब्धं कुवेरतः ॥३८॥
रत्नमाला च वरुणाद्वायोः स्त्रीरत्नभूषम् । वह्निशुद्धं वस्त्रयुगंवह्नेः प्रातश्चवेतनात् ॥३६॥
कामशास्त्रं कामदेवाद्योषिद्रञ्जनकारणम् । शृङ्गारशिल्पं यत्किञ्चित् लब्धंचन्द्राच्चदुर्लभम्
रत्नमालां वस्त्रयुग्मं सर्वाणिभूषणानि च । तुभ्यंदातुं हृदि कृतं प्राप्तन्तत्क्षण एव च ॥
गृहेतान्येवसंस्थाप्यचागतोऽन्वेषणे भवे । विरामे सुखसम्भोगेतुभ्यंदास्यामिसाम्प्रतम्
कामुकस्यवचःश्रुत्वा घृताची सस्मितामुने ! । ददौ प्रत्युत्तरंशीघ्रं नीतियुक्तं मनोहरम् ॥

घृताच्युवाच ।

त्वया यदुक्तं भद्रन्तत् स्वीकारोऽप्यधुनाऽपिच ।
किन्तुसामयिकंवाक्यं ब्रविष्यामि स्मरातुर ॥ ४४ ॥
कामदेवालयं यामि कृतं वेशञ्च तत्कृते । यद्दिने यत्कृते धामो वयंतेषाञ्च योषितः ॥
अद्याहं कामपत्नी न गुरुपत्नी तवाधुना । त्वयोक्तमधुनेदञ्च पठितं कामदेवतः ॥ ४६ ॥

:विद्यादाता मन्त्रदाता गुरुर्लक्षगुणैः पितुः । मातुः सहस्रगुणतो नास्त्यन्यस्तत्परोगुरुः
गुरोः शतगुणैः पूज्या गुरुपत्नी श्रुतौ श्रुता । पितुः शतगुणे पूज्या यथामाताविचक्षण
मात्रा सहितशृङ्गारेयावानदोषः श्रुतौ श्रुतः । ततो लक्षगुणोदोषो गुरुपत्नीसमागमे
मातरित्येवशब्देन याश्चसम्भाषते नरः । सा मातृतुल्या सत्येन धर्मःसाक्षी सतामपि
त्वयासहितशृङ्गारे कालसूत्रं प्रयाति सः । तत्र घोरे वसत्येव यावच्चन्द्रदिवाकरौ
मातासहितशृङ्गारे ततो दोषश्चतुर्गुणः । सार्द्धञ्च गुरुपत्न्या च तल्लक्षगुण एव च
कुम्भीपाके पतत्येव यावद्वै ब्रह्मणो वयः । प्रायश्चित्तं पापिनश्चतस्यनैव श्रुतौ श्रुतम्

चक्राकारं कुलालस्य तीक्ष्णधारञ्च खड्गवत् ।
वसामूत्रपुरीषञ्च परिपूर्णं सुदुस्तरम् ॥ ५४ ॥

शूलवत्कृमिसंयुक्तं तप्तमग्निसमद्रवम् । पापिनां तद्विहारश्च कुम्भीपाकं प्रकीर्त्तितम्
यावान्दोषो हि पुंसाश्च गुरुपत्नीसमागमे । तावांश्च गुरुपत्न्याश्च तत्रैव कामुकी यदि
अद्ययास्यामि कामस्य मन्दिरं तस्यकामिनी । वेशंकृत्वागमिष्यामितत्कृतेऽहं दिनान्ते
घृताचीवचनंश्रुत्वा विश्वकर्माचुरोषताम् । शशापशूद्रयोनिश्च व्रजेतिजगतीतले ॥ ५८
घृताची तद्वचः श्रुत्वा तं शशाप सुदारुणम् । लभ जन्म भवे त्वञ्च स्वर्गभ्रष्टोभवेति
घृताचीत्येवमुक्त्वा च जगाम काममन्दिरम् । कामेनसुरतंकृत्वा कथयामास तांकथा
सा भारते च कामोक्त्या गोपस्यमदनस्य च । पत्नीप्रयागे नगरे ललाभ जन्मशौनक
जातिस्मरा तत्प्रसूता बभूव च तपस्विनी । वरं न वव्रे धर्मिष्ठा तपस्यायांमनो दधौ
तपश्चकार तपसा तप्तकाञ्चनसन्निभा । दिव्यञ्च शतवर्षं सा गंगातीरे मनोरमे ॥ ६३

वीर्येण सुरकारोश्च नव पुत्रान् प्रसूय सा ।
पुनः स्वर्लोकं गत्वा च सा घृताची बभूव ह ॥ ६४ ॥

शौनक उवाच।

कथंवीर्य्यंसादधारसुरकारोस्तपस्विनी । पुत्रान्नवप्रसूता च कुत्र वा कतिवा दिनात्

सौतिरुवाच ।

विश्वकर्मा तु तच्छापं समाकर्ण्य रुषान्वितः । जगाम ब्रह्मणः स्थानं शोकेन हतचेतनः

नत्वा स्तुत्वा च ब्रह्माणं कथयामास तां कथाम् ।
ललाभ जन्म ब्राह्मण्यां पृथिव्यामाज्ञया विधेः ॥ ६७ ॥
स एव ब्राह्मणो भूत्वा भुवि कारुर्बभूव ह । नृपाणाञ्च गृहस्थानां नानाशिल्पं चकार ह
शिल्पञ्च कारयामास सर्वांश्च सर्वतः सदा । विचित्रं विविधं शिल्पमाश्चर्यं सुमनोहरम्
एकदा तु प्रयागे च शिल्पं कृत्वा नृपस्य च । स्नातुं जगाम गङ्गाञ्च ददर्श तत्र कामिनीम्
घृताचीं नवरूपाञ्च युवतिं तां तपस्विनीम् । जातिस्मरां तां बुबुधे स च जातिस्मरो द्विज
दृष्ट्वा सकामः सहसा बभूव हृतचेतनः । उवाच मधुरं शान्तः शान्तां ताञ्च तपस्विनीम्

ब्राह्मण उवाच ।

अहोऽधुना त्वमत्रैव घृताचि सुमनोहरे । मा मां स्मरसि रम्भोरु विश्वकर्माऽहमेव च
शापमोक्षं करिष्यामि भज मां तव सुन्दरि । त्वत्कृतेऽतिदहत्येव मनो मे स च मन्मथः
द्विजस्य वचनं श्रुत्वा घृताची नवरूपिणी । उवाच मधुरं शान्ता नीतियुक्तं परं वचः ॥

गोपिकोवाच ।

तद्दिने कामकान्ताहमधुना च तपस्विनी । कथं दास्यामि शृङ्गारं गङ्गातीरे च भारते ॥
विश्वकर्मन्निदं पुण्यं कर्मक्षेत्रञ्च भारतम् । अत्र यत् क्रियते कर्म भोगोऽन्यत्र शुभाशुभम्
धर्मी मोक्षकृते जन्म संलभ्य तपसः फलात् । निबद्धः कुरुते कर्म मोहितो विष्णुमायया
माया नारायणीशाना परितुष्टा च यं भवेत् ।
तस्मै ददाति श्रीकृष्णो भक्तिं तन्मन्त्रमीप्सितम् ॥ ७९ ॥
...मूढो विषयासक्तोलब्धजन्मा च भारते । विहाय कृष्णं सर्वेशं समुग्धो विष्णुमायया
...वं स्मरामि देवाहमहो जातिस्मरा पुरा । घृताची सुरवेश्याहमधुना गोपकन्यका ॥
...ः करोमि मोक्षार्थं गङ्गातीरे सुपुण्यदे । नात्रस्थलञ्च क्रीडायाः स्थिरस्त्वं भव कामुक
अन्यत्र कृतपापञ्च गङ्गायाञ्च विनश्यति । गङ्गातीरे कृतं पापं सद्यो लक्षगुणं भवेत् ॥
...तु नारायणक्षेत्रे तपसा च विनश्यति । यद्येव कामतः कृत्वा निवृत्तश्चेद् भवेत् पुनः ॥
घृताचीवचनं श्रुत्वा विश्वकर्मा निराकृतिः । जगाम तां गृहीत्वा वै मलयं चन्दनालयम्
...यायां मलयद्रोण्यां पुष्पतल्पे मनोरमे । पुष्पचन्दनवातेन सन्ततं सुरभीकृते ॥ ८६ ॥

चकार सुखसम्भोगं तया सह सुनिर्जने । पूर्णं द्वादशवर्षञ्च बुबुधे न दिवानिशम् ॥
बभूव गर्भः कामिन्या परिपूर्णः सुदुर्वहः । सा सुषाव च तत्रैव पुत्रान्नव मनोहरान् ॥
कृतशिक्षितशिल्पांश्च ज्ञानयुक्तांश्च शौनक । पूर्वप्राक्तनतोयुग्यान् बलयुक्तान् विचक्षणान् ॥
मालाकारकर्मकंसशङ्खकारकुविन्दकान् । कुम्भकारसूत्रधारस्वर्णचित्रकरांस्तथा ॥ ९०

तौ च तेभ्यो वरं दत्त्वा तान् संस्थाप्य महीतले ।
मानवीं तनुमुत्सृज्य जग्मतुर्निजमन्दिरम् ॥ ९१ ॥

स्वर्णकारः स्वर्णचौर्य्यात् ब्राह्मणानां द्विजोत्तम । बभूव पतितःसद्यो ब्रह्मशापेन कर्मणा ॥
सूत्रधारो द्विजानान्तु शापेन पतितो भुवि । शीघ्रञ्च यज्ञकाष्ठानि न ददौ तेन हेतुना ॥
व्यतिक्रमेण चित्राणां सद्यश्चित्रकरस्तथा । पतितो ब्रह्मशापेन ब्राह्मणानाञ्च कोपतः ॥
कश्चिद्वणिग्विशेषश्च संसर्गात्स्वर्णकारिणः । स्वर्णचौर्य्यादिदोषेण पतितो ब्रह्मशापतः ॥
कुलटायाञ्च शूद्रायां चित्रकारस्य वीर्य्यतः । बभूवाट्टालिकाकारः पतितो जारदोषतः ॥
अट्टालिकाकारबीजात् कुम्भकारस्य योषिति । बभूव कोटकः सद्यः पतितो गृहकारकः ॥
कुम्भकारस्य बीजेन सद्यः कोटकयोषिति । बभूव तैलकारश्च कुटिलः पतितो भुवि ॥
सद्यः क्षत्रियबीजेन राजपुत्रस्य योषिति । बभूव तीवरश्चैव पतितो जारदोषतः ॥ ९९
तीवरस्य तु बीजेन तैलकारस्य योषिति । बभूव पतितो दस्युर्लेटश्च परिकीर्त्तितः ॥
लेटस्तीवरकन्यायां जनयामास षन्नरान् । मल्लमन्त्रंमातारञ्चभड़ं कोलं कलन्दरम् ॥
ब्राह्मण्यां शूद्रवीर्य्येण पतितोजारदोषतः । सद्यो बभूव चण्डालः सर्वस्मादधमोऽशुचिः ॥
तीवरेण च चाण्डाल्यां चर्मकारो बभूव ह । चर्मकार्य्याञ्च चण्डालान्मांसच्छेदो बभूव ह ॥

मांसच्छेद्यां तीवरेण कौँचश्च परिकीर्त्तितः ।
कौँचस्त्रियान्तु कैवर्त्तात् कर्त्तारः परिकीर्त्तितः ॥ १०४ ॥

सद्यश्चण्डालकन्यायां लेटवीर्य्येण शौनक । बभूवतुस्तौ द्वौ पुत्रौ दुष्टौ हड्डिडमौ तथा ॥
क्रमेण हड्डिकन्यायां सद्यश्चण्डालवीर्य्यतः । बभूवुः पञ्चपुत्राश्च दुष्टा वनचराश्च ते ॥
लेटात्तीवरकन्यायां गङ्गातीरे च शौनक । बभूव सद्यो यो बालो गङ्गापुत्रः प्रकीर्त्तितः ॥
गङ्गापुत्रस्य कन्यायां वीर्य्येण वेशधारिणः । बभूव वेशधारी च पुत्रो युङ्गी प्रकीर्त्तितः ॥

वैश्यात्तीवरकन्यायां सद्यः शुण्डी बभूव ह । शुण्डीयोषितिवैश्यात्तु पौण्ड्रकश्च बभूव ह
क्षत्रात् करणकन्यायायां राजपुत्रो बभूव ह । राजपुत्र्यान्तु करणादागरीति प्रकीर्त्तितः
क्षत्रवीर्य्येण वैश्यायां कैवर्त्तः परिकीर्त्तितः । कलौ तीवरसंसर्गात् धीवरः पतितोभुवि
तीवर्य्यां धीवरात् पुत्रो बभूव रजकः स्मृतः । रजक्यां तीवराच्चैव कोयालीति बभूव ह
नापितात् गोपकन्यायां सर्वस्वीतस्ययोषिति । क्षत्राद्बभूवव्याधश्च बलवान्मृगहिंसकः
तीवरात् शुण्डिकन्यायां बभूवःसप्तपुत्रकाः । तेकलौ हड्डिसंसर्गात् बभूवुर्दस्यवःसदा
ब्राह्मण्यामृषिवीर्य्येण ऋतोः प्रथमवासरे । कुत्सितश्चोदरे जातः कूदरस्तेन कीर्त्तितः॥
तदशौचं विप्रतुल्यं पतितो ऋतुदोषतः । सद्यः कोटकसंसर्गादधमो जगतीतले ॥११६॥
क्षत्रवीर्य्येण वैश्यायामृतोः प्रथमवासरे । जातः पुत्रो महादस्युर्बलवांश्च धनुर्द्धरः ॥
चकार वागतीतञ्च क्षत्रियेणापि वारितः । तेन जात्याः सपुत्रश्च वागतीतः प्रकीर्त्तितः
क्षत्रवीर्य्येण शूद्रायामृतुदोषेण पापतः । बलवन्तो दुरन्ताश्च बभूवुर्म्लेच्छजातयः॥११६
अविद्धकर्णाः क्रूराश्च निर्भया रणदुर्जयाः । शौचाचारविहीनाश्च दुर्द्धर्षा धर्मवर्जिताः

म्लेच्छात् कुविन्दकन्यायां जोलाजातिर्बभूव ह ।
जोलात् कुविन्दकन्यायां शराकः परिकीर्त्तितः॥ १२१ ॥

वर्णसङ्करदोषेण बह्वश्च श्रुतजातयः । तासां नामानि संख्याश्च को वा वक्तुंक्षमो द्विज
वैद्योऽश्विनीकुमारेण जातश्च विप्रयोषिति । वैद्यवीर्य्येण शूद्रायां बभूवुर्बहवो जनाः॥
तेच ग्रामस्थगुणज्ञाश्च मन्त्रौषधिपरायणाः । तेभ्यश्चजाताःशूद्रायांये व्यालग्राहिणोभुवि

शौनक उवाच ।

कथं ब्राह्मणपत्न्यान्तु सूर्य्यपुत्रोऽश्विनीसुतः । अहो केन विपाकेन वीर्य्याधानञ्चकार ह

सौतिरुवाच ।

गच्छन्तीं तीर्थयात्रायां ब्राह्मणीं रविनन्दनः । ददर्श कामुकः शान्तः पुष्पोद्यानेच निर्जने
तया निवारितो यत्नात् बलेन बलवान् सुरः । अतीवसुन्दरीं दृष्ट्वा वीर्य्याधानञ्चकार स
द्रुतं तत्याज गर्भं सा पुष्पोद्याने मनोहरे ।सद्यो बभूव पुत्रश्च तप्तकाञ्चनसन्निभः ॥१२८
सपुत्रा स्वामिनोगेहं जगाम व्रीडितासदा । स्वामिनं कथयामास यन्मार्गे दैवसङ्कटम् ।

विप्रो रोषेण तत्याज तञ्चपुत्रं स्वकामिनीम् । सरिद्बभूव योगेनसाच गोदावरी स्मृता
पुत्रं चिकित्साशास्त्रञ्च पाठयामास यत्नतः । नानाशिल्पञ्च मन्त्रञ्च स्वयं स रविनन्दनः
विप्रश्च ज्योतिर्गणनाद्वेतनाच्च निरन्तरम् । वेदधर्मपरित्यक्तो बभूव गणको भुवि ॥१३
लोभी विप्रश्च शूद्राणामग्रे दानं गृहीतवान् । ग्रहणे मृतदानानामग्रदानी बभूव सः ॥
कश्चित् पुमान् ब्रह्मयज्ञेयज्ञकुण्डात् समुत्थितः । ससूतोधर्मवक्ता च सत्पूर्वपुरुषःस्मृतः
पुराणं पाठयामास तञ्चब्रह्मा कृपानिधिः । पुराणवक्ता सूतश्च यज्ञकुण्डसमुद्भवः ॥१३
वैश्यायां सूतवीर्य्येण पुमांस्तेको बभूव ह । स भट्टो वावदूकश्च सर्वेषां स्तुतिपाठकः ।
एतत्तेकथितं किंचित् पृथिव्यांजातिनिर्णयम् । वर्णसङ्करदोषेण बह्वोऽन्याःसन्तिजातयः
सम्बन्धो येषु येषां यः सर्वजातिषु सर्वतः । तत्त्वं ब्रवीमि वेदोक्तं ब्रह्मणा कथितं पुरा
पिता तातस्तु जनको जन्मदातरि वर्त्तते । अम्बा माता च जननी गर्भधर्त्र्यां प्रसूरिति
पितामहः पितृपिता तत्पिता प्रपितामहः । अत ऊर्द्ध्वं ज्ञातयश्च सगोत्राः परिकीर्त्तिताः
मातामहः पिता मातुः प्रमातामह एव च । मातामहस्य जनकस्तत्पिता वृद्धपूर्वकः ॥१४
पितामही पितुर्माता तत्श्वश्रूः प्रपितामही । तत्श्वश्रूश्च परिज्ञेया सा वृद्धप्रपितामही॥
मातामही मातृमाता मातुल्या च पूजिता । प्रमातामहीति ज्ञेया प्रमातामहकामिनी ॥
वृद्धमातामही ज्ञेया तत्पितुः कामिनी तथा । पितृभ्राता पितृव्यश्च मातृभ्राता च मातुलः
पितृस्वसा पितृभग्नी मातृभग्नी च मासुरी । सूनुश्च तनयः पुत्रो दायादश्चात्मजस्तथा॥
धनभाग्वीर्य्यजश्चैव पुंसिजन्ये च वर्त्तते । जन्यायांदुहिताकन्या चात्मजा परिकीर्त्तिता
पुत्रपत्नी वधूर्ज्ञेया जामाता दुहितुःपतिः । पतिः प्रियश्च भर्त्ताच स्वामी कान्तेच वर्त्तते
देवरःस्वामिनोभ्राताननन्दास्वामिनःस्वसा । श्वशुरःस्वामिनस्तातःश्वश्रूश्चस्वामिनःप्रसूः

भार्य्या जाया प्रिया कान्ता स्त्रीश्च पत्न्याञ्च वर्त्तते ।
पत्नीभ्राता श्यालकश्चपत्नीभग्नी च श्यालिका ॥ १४६ ॥

पत्नीमातातथा श्वश्रूस्तत्पिता श्वशुरःस्मृतः । सगर्भः सोदरोभ्रातासगर्भाभगिनीस्मृता
भगिनीपुत्रो भागिनेयो भ्रातृपुत्रश्चभ्रातृजः । श्यालन्तुभगिनीकान्तो भगिनीपतिरेव
श्यालीपतिस्तु भ्राता च श्वशुरैकश्च हेतुना । श्वशुरस्तु पिताज्ञेयो जन्मदातुः समोमुने

अन्नदाता भयत्राता पत्नीतातस्तथैव च । विद्यादाता जन्मदाता पञ्चैते पितरो नृणाम् ॥
अन्नदातुश्चैव पत्नी भगिनी गुरुकामिनी । माता च तत्सपत्नी च कन्या पुत्रप्रियातथा
मातुर्माता पितुर्माता श्वश्रूःपित्रोः स्वसा तथा । पितृव्यानी मातुलानी मातरश्चचतुर्दश
पौत्रस्तुपुत्रपुत्रेच प्रपौत्रस्तत्सुतेऽपि च । तत्पुत्राद्याश्च ये वंशाःकुलजाश्चप्रकीर्त्तिताः
कन्यापुत्रश्चदौहित्रस्तत्पुत्राद्याश्चबान्धवाः । भागिनेयसुताद्याश्चपुरुषाबान्धवाःस्मृताः
भ्रातृपुत्रस्य पुत्राद्यास्ते पुनर्ज्ञातयः स्मृताः । गुरुपुत्रस्तथा भ्राता पोष्यःपरमबान्धवः ॥
गुरुकन्या च भगिनीपोष्या मातृसमामुने । पुत्रस्यच गुरुर्भ्रातापोष्यः सुस्निग्धबान्धवः
पुत्रस्यश्वशुरोभ्राताबन्धुर्वैवाहिकः स्मृतः । कन्यायाःश्वशुरैचैव तत्सम्बन्धःप्रकीर्त्तितः
गुरुश्च कन्यकायाश्च भ्राता सुसिग्धबान्धवः । गुरुश्वशुरभ्रातृणां गुरुतुल्यः प्रकीर्त्तितः
बन्धुता येन सार्द्धञ्च तन्मित्रं परिकीर्त्तितम् । मित्रं सुखप्रदं ज्ञेयं दुःखदो रिपुरुच्यते ॥
बान्धवोदुःखदोदैवात् निःसम्बन्धोसुखप्रदः । सम्बन्धास्त्रिविधाःपुंसांविप्रेन्द्रजगतीतले
विद्याजो योनिजश्चैवप्रीतिजश्च प्रकीर्त्तितः । मित्रन्तु प्रीतिजं ज्ञेयं स सम्बन्धःसुदुर्लभः
मित्रमाता मित्रभार्य्यामातृतुल्या न संशयः । मित्रभ्रातामित्रपिता पितृभ्रातृसमोनृणाम्
चतुर्थं नाम सम्बन्धमित्याह कमलोद्भवः । जारश्चोपपतिर्बन्धुर्दुष्टासम्भोगकर्त्तरि ॥
उपपत्न्यां नवज्ञा च प्रेयसी चित्रहारिणी । स्वामितुल्यश्च जारश्च नवज्ञा गृहिणीसमा॥
सम्बन्धो देशभेदे च सर्वदेशे विगर्हितः । अवैदिको निन्दितस्तु विश्वामित्रेण निर्मितः
दुस्त्यजस्तु महद्भिस्तु देशभेदे च सञ्चरेत् । अकीर्त्तितजनकःपुंसां योषिताञ्च विशेषतः
तेजीयसां न दोषाय विद्यमाने युगे युगे ॥ १७० ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सौति-शौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे जातिसम्बन्धनिर्णयो नाम दशमोऽध्यायः ।

एकादशोऽध्यायः ।

विष्णुवैष्णवब्राह्मणप्रशंसा ।

शौनक उवाच ।

द्विजः सभार्य्यांसंत्यज्य किञ्चकारावशेषतः । अश्विनोर्वामहाभाग किंनामकस्यवंशजौ

सौतिरुवाच ।

द्विजश्च सुतपा नाम भारद्वाजो महामुनिः । तपश्चकार कृष्णस्य लक्षवर्षं हिमालये ॥२॥
महातपस्वी तेजस्वी प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा । ज्योतिर्दर्शनं कृष्णस्य गगने सहसा क्षणम्
वरंसवव्रे निर्लिप्तमात्मानं प्रकृतेः परम् । माच मोक्षं ययाचे तं दास्यं भक्तिश्च निश्चलाम्
बभूवाकाशवाणीति कुरु दारपरिग्रहम् । पश्चाद्दास्यं प्रदास्यामि भक्तिं भोगक्षये द्विज ॥
पितॄणांमानसीं कन्यां ददौतस्मैविधिःस्वयम् । तस्यां कल्याणमित्रश्च बभूव मुनिपुङ्गव
यस्य स्मरणमात्रेण न भवेत् कुलिशाद्भयम् । न द्रष्टव्यं बन्धुमात्रं नूनं ततस्मरणाल्लभेत्
कल्याणमित्रजननीं परित्यज्य महामुनिः । शशाप सूर्य्यपुत्रश्च यज्ञभागवर्जितो भव ॥
त्रसोदरश्चैवापूज्यो भवेति च सुराधम । व्याधिग्रस्तोजड़ाङ्गश्च भवतेऽकीर्तिमानिति ॥
इत्युक्त्वा सुतपागेहे प्रतस्थौ सूनुनासह । अश्विभ्यांसहितःसूर्य्यः प्रययौ च तदन्तिकम्
पुत्राभ्यां व्याधियुक्ताभ्यां सूर्य्यस्त्रिजगताम्पतिः ।
मुनीन्द्रं च सुतपसं प्रतुष्टाव च शौनक ॥ ११ ॥

सूर्य उवाच ।

नमस्व भगवन् विप्र विष्णुरूप युगे युगे । ममपुत्रापराधश्च भारद्वाजमुनीश्वर ॥१२॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्याः सुराः सर्वे च सन्ततम् । भुञ्जतेविप्रदत्तन्तु फलपुष्पजलादिकम् ॥
ब्राह्मणावाहिता देवाः शश्वद्विश्वेषु पूजिताः । न च विप्रात् परोदेवो विप्ररूपीस्वयंहरिः
ब्राह्मणे परितुष्टे च तुष्टो नारायणः स्वयम् । नारायणे च सन्तुष्टेसन्तुष्टाः सर्वदेवताः

नास्ति गंगासमंतीर्थं न च कृष्णात् परःसुरः। न शङ्कराद्वैष्णवश्चनसहिष्णुर्धरापरा॥
न च सत्यात् परोधर्मो न साध्वी पार्वती परा।
न दैवात् बलवान् कश्चित् न च पुत्रात् परः प्रियः॥ १७॥
न च व्याधिसमःशत्रुर्न च पूज्योःगुरोःपरः। नास्तिमातृसमोबन्धुर्न च मित्रंपितुःपरम्
एकादशीव्रतपरा तपो नानशनात्परम्। परं सर्वधनं रत्नं विद्यारत्नात्परा यथा॥१६॥
सर्वाश्रमपरो विप्रो नास्ति विप्रसमोगुरुः। वेदवेदाङ्गसर्वार्थमित्याह कमलोद्भवः॥
सूर्य्यस्य वचनंश्रुत्वा भारद्वाजो ननाम तम्। निरजौचापितत्पुत्रौ चकार तपसःफलात्॥
पश्चाचतव पुत्रौ च यज्ञभाजौ भविष्यतः। इत्युक्त्वातश्चसुतपा प्रणम्यभास्करंमुनिः॥
जगाम गङ्गां स त्रस्तोहरिसेवनतत्परः। पुत्राभ्यांसहितः सूर्य्यो जगामनिजमन्दिरम्॥
बभूवस्तुस्तौ पूज्यौ च यज्ञभाजौ द्विजाज्ञया। एतत्सूर्य्यकृतंविप्रस्तोत्रं योमानवः पठेत्
विप्रपादप्रसादेन सर्वत्र विजयी भवेत्॥ २४॥
ब्राह्मणेभ्यो नम इति प्रातरुत्थाय यः पठेत्। स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः॥
पृथिव्यां यानितीर्थानि तानितीर्थानिसागरे। सागरे यानितीर्थानि विप्रपादेषुतानि च॥
विप्रपादोदकंपीत्वा यावत्तिष्ठति मेदिनी। तावत् पुष्करपात्रेषु पिबन्ति पितरोजलम्॥
विप्रपादोदकं पुण्यं भक्तियुक्तश्च यः पिबेत्। स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः॥
महारोगी यदि पिबेत् विप्रपादोदकं द्विज। मुच्यते सर्वरोगाच्च मासमेकन्तु भक्तितः॥
अविद्यो वा सविद्यो वा सन्ध्यापूतो हि यो द्विजः।
स एव विष्णुसदृशो न हरौ विमुखो यदि॥ ३०॥
घ्नन्तं विप्रं शपन्तं वा न हन्यान्न च तं शपेत्। गोभ्यः शतगुणं पूज्यो हरिभक्तश्चब्राह्मणः
पादोदकञ्च नैवेद्यं भुङ्क्ते विप्रस्य यो द्विज। नित्यं नैवेद्यभोजी श्री राजसूयफलं लभेत
एकादश्यां न भुङ्क्ते यो नित्यं कृष्णं समर्चयेत्।
तस्य पादोदकं प्राप्य स्थलं तीर्थं भवेत् ध्रुवम्॥ ३३॥
यो भुङ्क्ते भोजनोच्छिष्टं नित्यं नैवेद्यभोजनम्।
कृष्णदेवस्य पूतोऽसौ जीवन्मुक्तो महीतले॥ ३४॥

अन्नं विष्ठा पयो मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम् । द्विजानां कुलजातानामित्याह कमलोद्भवः
ब्रह्मा च ब्रह्मपुत्राश्च सर्वे विष्णुपरायणाः । ब्राह्मणस्तत्कुले जातो निमुखश्च हरौ कथम्
पित्रोर्मातामहादीनां संसर्गस्य गुरोश्चवा । दोषेण विमुखाः कृष्णे विप्राजीवन्मृताश्चते

स किं गुरुः स किं तातः स किं पुत्रः स किं सखा ।
स किं राजा स किं बन्धुर्न दद्याद्धु यो हरौ मतिम् ॥ ३८ ॥
स वैष्णवाद्द्विजाद्विप्र चण्डालो वैष्णवो वरः ।
सगणः श्वपचो मुक्तो ब्राह्मणो नरकं व्रजेत् ॥ ३९ ॥
सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यं कृष्णे त्वा विमुखो द्विज ।
स एव ब्राह्मणाभाषो विषहीनो यथोरगः ॥ ४० ॥

गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे प्रविश्यति । तं वैष्णवं महापूतं जीवन्मुक्तं वदेद्विधिः ।
पुंसां मातामहादीनां शतैः सार्द्धं हरेः पदम् । प्रयाति वैष्णवः पुंसामात्मनःकुलकोटिभिः
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्राश्चतस्रो जातयो यथा । स्वतन्त्राजातिरेका चविश्वेषु वैष्णवाभिधा

ध्यायन्ते वैष्णवाः शश्वद्गोविन्दपादपङ्कजम् ।
ध्यायते तांश्च गोविन्दः शश्वत्तेषाञ्च सन्निधौ ॥ ४४ ॥

सुदर्शनं संनियोज्य भक्तानां रक्षणाय च । तथापि नहि निश्चिन्तोऽवतिष्ठेद्भक्तसन्निधौ

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सौतिशौनक-संवादे ब्रह्मखण्डे विष्णुवैष्णवब्राह्मण-
प्रशंसा नामैकादशोऽध्यायः ।

द्वादशोऽध्यायः ।

गन्धर्वराजस्यप्रशंसा ।

शौनक उवाच ।

ऋषिवंशप्रसङ्गेन बभूवुर्विविधाः कथाः । उपालम्भेन प्रस्तावात् कौतुकेन श्रुता मया ।
प्रजा वा ससृजुः केवा ऊर्द्ध्वरेताश्च कश्चन । पित्रा सह विरोधेन नारदः किञ्चकार सः

पितुः शापेन पुत्रस्य किं बभूव विरोधतः। पितुर्वा पुत्रशापेन सौते तत् कथ्यतां शुभम्

सौतिरुवाच।

हंसीयतिश्चारणिश्च वोढुः पञ्चशिखस्तथा। अपान्तरतमाश्चैव सनकाद्याश्च शौनक ।४।
एतैर्विना च बहवो ब्रह्मपुत्राश्च सन्ततम्। सांसारिकाः प्रजावन्तो गुर्वाज्ञापरिपालकाः
अपूज्यः पुत्रशापेन स्वयं ब्रह्माप्रजापतिः। तेनैव ब्रह्मणो मन्त्रं नोपासन्ते विपश्चितः॥
नारदो गुरुशापेन गन्धर्वश्च बभूव सः। कथयामि सुविस्तीर्णं तद्वृत्तान्तं निशामय॥
गन्धर्वराजः सर्वेषां गन्धर्वाणां वरोमहान्। परमैश्वर्य्यसंयुक्तः पुत्रहीनो हि कर्मणा॥
गुर्वाज्ञया पुष्करे स परमेण समाधिना। तपश्चकार शम्भोश्च कृपणो दीनमानसः।६।
शिवस्य कवचं स्तोत्रं मन्त्रञ्च द्वादशाक्षरम्। ददौ गन्धर्वराजाय वशिष्ठश्च कृपानिधिः॥
जजाप परमं मन्त्रं दिव्यं वर्षशतं मुने!। पुष्करे स निराहारः पुत्रदुःखेन तापितः ॥११
विरामे शतवर्षस्य ददर्श पुरतः शिवम्। भासयन्तं दशदिशो ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ।१२।
शश्वत्तेजः स्वरूपञ्च भगवन्तं सनातनम्। ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम्॥
तपोरूपं तपोवीजं तपस्या फलदं फलम्। शरणागतभक्ताय दातारं सर्वसम्पदाम्॥
त्रिशूलपट्टिशधरं वृषभस्थं दिगम्बरम्। शुद्धस्फटिकसङ्काशं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम् ॥१५॥
तप्तस्वर्णप्रभामुष्टजटाजालधरं वरम्। नीलकण्ठञ्च सर्वज्ञं नागयज्ञोपवीतकम् ॥१६॥
संहर्त्तारञ्च सर्वेषां कालं मृत्युञ्जयं परम्। ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डकोटिसङ्काशमीश्वरम्॥
तत्त्वज्ञानप्रदं शान्तं मुक्तिदं हरिभक्तिदम्। दृष्ट्वा ननाम सहसा गन्धर्वोदण्डवद् भुवि॥
वशिष्ठदत्तस्तोत्रेण तुष्टाव परमेश्वरम्। वरं वृणुष्वेति शिवस्तमुवाच कृपानिधिः॥
स ययाचे हरेर्भक्तिं पुत्रं परमवैष्णवम् ॥ १६ ॥
गन्धर्वस्य वचः श्रुत्वा जहास चन्द्रशेखरः। उवाच दीनं दीनेशो दीनबन्धुः सनातनम्॥

श्रीमहादेव उवाच।

कृतार्थस्त्वं वरादेकादन्यश्चर्वितचर्वणम्। गन्धर्वराज वृणुषे को वा तृप्तोऽतिमङ्गले॥
यस्य भक्तिर्हरौ वत्स सुदृढा सर्वमंगला। स समर्थः सर्वविश्वं कर्त्तुञ्च लीलया ॥२२॥
आत्मनःकुलकोटिञ्चशतं मातामहस्य च। पुरुषाणां समुद्धृत्यगोलोकंयातिनिश्चितम्॥

त्रिविधानि च पापानि कोटिजन्मार्जितानि च।
निहत्य पुण्यभोगञ्च हरिदास्यं लभेद् ध्रुवम् ॥ २४ ॥
तावत्पत्नी सुतस्तावत् तावदैश्वर्य्यमीप्सितम्।
सुखं दुःखं नृणां तावत् यावत् कृष्णेन मानसम् ॥ २५ ॥

कृष्णेमनसिसञ्जाते भक्तिखड्गोऽदुरत्ययः। नराणांकर्मवृक्षाणां मूलच्छेदं करोत्यहो॥
भवद्येषां सुकृतिनां पुत्राः परमवैष्णवाः। कुलकोटिश्च तेषां ते उद्धरन्त्यवलीलया॥
चरितार्थः पुमानेकाद्धरमिच्छुर्वन्नराद्दहो। किं वरेण द्वितीयेन पुंसां तृप्तिर्न मङ्गले॥
धनं सञ्चितमस्माकंवैष्णवानांसुदुर्लभम्। श्रीकृष्णे भक्तिदास्यञ्चनवथं दातुमुत्सुकाः
वरयान्यं वरं वत्स यत्तेमनसिवाञ्छितम्। इन्द्रत्वममरत्वं वा ब्रह्मत्वं लभदुर्लभम्॥
सर्वसिद्धिं महायोगं ज्ञानं मृत्युञ्जयादिकम्। सुखेन सर्वं दास्यामिहरिर्दास्यंत्यजक्षम॥
शङ्करस्य वचःश्रुत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः। उवाच दीनोदीनेशं दातव्यं सर्वसम्पदाम्

गन्धर्व उवाच।

यच्चक्षुः पतनेनैव ब्रह्मणः पतनं भवेत्। तद्ब्रह्मत्वं स्वप्नतुल्यं कृष्णभक्तो न चेच्छति॥
इन्द्रत्वममरत्वं वा सिद्धियोगादिकं शिव। ज्ञानंमृत्युञ्जयाद्यंवानहि भक्तस्य वाञ्छितम्
सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसायुज्यंश्रीहरेरपि। तत्रनिर्वाणमोक्षञ्च न हि वाञ्छन्ति वैष्णवाः
शश्वत्तत्सुदृढ़ाभक्तिर्हरिदास्यं सुदुर्लभम्। स्वप्ने जागरणे भक्ता वाञ्छन्त्येवं वरं वरम्
तद्दास्यं वैष्णवसुतं देहिकल्पतरोवरम्। त्वां प्राप्य लभतेतुष्टं वरमन्यं स वर्वरः॥

न दास्यसीदं चेच्छम्भो वरं दुष्कृतिनश्च माम्।
कृत्वा हि स्वशिरच्छेदं प्रदास्यामि हुताशने ॥ ३८ ॥

गान्धर्ववचनंश्रुत्वा तमुवाच कृपानिधिः। भक्तं दीनञ्च भक्तेशो भक्तानुग्रहकारकः॥

श्रीशङ्कर उवाच।

हरिभक्तिं हरेर्दास्यं पुत्रं परमवैष्णवम्। चिरायुषञ्चगुणिनं शश्वत्सुस्थिरयौवनम्॥
ज्ञानिनं सुन्दरवरं गुरुभक्तं जितेन्द्रियम्। गन्धर्वराजप्रवरं वरमेमं लभ मा खिद ॥४१॥
इत्युक्त्वा शङ्करस्तस्माज्जगाम स्वालयं मुने। गन्धर्वराजः सन्तुष्ट आजगामस्वमन्दिरम्

प्रफुल्लमनसाः सर्वे मानवाः सिद्धकर्मणः । नारदस्तस्य भार्यायांलेभे जन्म च भारते ॥
सुषाव पुत्रं सा वृद्धा पर्वते गन्धमादने । गुरुर्वशिष्ठो भगवान् नाम चक्रे यथोचितम् ॥
बालकस्य च तस्यैव मङ्गलं मंगले दिने । उपशब्दोधिकार्थश्च पूज्ये च वर्हणः पुमान् ॥
पूज्यनामाधिको बालस्तेनोपवर्हणाभिधः ॥ ४५ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सौति-शौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे नारदजन्मकथनं नाम द्वादशोऽध्यायः ।

त्रयोदशोऽध्यायः ।

उपवर्हणभार्याया मालावत्या विलापकथनम् ।

सौतिरुवाच ।

पुत्रोत्सवे च रत्नानि धनानि विविधानि च । गन्धर्वराजः प्रददौ ब्राह्मणेभ्यो मुदान्वितः
उपवर्हणस्तु कालेन हरेर्मन्त्रं सुदुर्लभम् । वशिष्ठद्वारा सम्प्राप्य चकार दुष्करं तपः ।२॥
एकदा गण्डकीतीरे तञ्च सम्प्राप्तयौवनम् । गन्धर्वपत्न्यो ददृशुर्मूर्च्छामापुश्च तत्क्षणम् ॥
ततस्तीव्रं तपः कृत्वा प्राणान् संत्यज्य योगतः ।पञ्चाशत्ता बभूवुश्च कन्याश्चित्ररथस्य च
उपवर्हणगन्धर्वं ताश्च तं वव्रिरे पतिम् । मुदा माला ददुस्तस्मै कामुक्यः पितुराज्ञया ॥
गृहीत्वा ताश्च गन्धर्वो युवा सुस्थिरयौवनः । दिव्यं त्रिलक्षवर्षञ्च रेमे रहसि कामुकः
ततोऽपि सुचिरंराज्यंकृत्वा ताभिः सहानिशम् । जगाम ब्रह्मणः स्थानं हरिगाथां जगौ मुने
दृष्ट्वा स रम्भारम्भोरुनर्त्तने कठिनं स्तनम् । बभूव स्खलनं तस्य गन्धर्वस्यै महात्मनः ॥
द्रुतं तत्याज सङ्गीतं मूर्च्छां प्राप सभातले । उच्चैः प्रजहसुर्देवा ब्रह्मा कोपात् शशाप तम्
व्रज त्वं शूद्रयोनिञ्च गान्धर्वीं तनुमुत्सृज । काले वैष्णवसंसर्गात् मत्पुत्रस्त्वं भविष्यसि
विना विपत्तेर्महिमा पुंसां नैव भवेत् सुत । सुखं दुःखञ्च सर्वेषां क्रमेण प्रभवेदिति ।११।

इत्येवमुक्त्वा स विधिर्जगाम पुष्करात् गृहम्। उपबर्हणगन्धर्वस्तत्याज तां तनुं तदा।
मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरमनाहतम्। विशुद्धमाज्ञाख्यञ्चेति भित्त्वा षट्चक्रमेव च।
इड़ां सुषुम्नां मेधाञ्च पिङ्गलां प्राणहारिणीम्। सर्वज्ञानप्रदाञ्चैव मनःसंयमनीं तथा।
विशुद्धाञ्च निरुद्धाञ्च वायुसञ्चारिणीन्तथा। तेजःशुष्ककरीञ्चैव बलपुष्टिकरीन्तथा।१५
बुद्धिसञ्चारिणीञ्चैव ज्ञानजृम्भनकारिणीम्। सर्वप्राणहराञ्चैव पुनर्जीवनकारिणीम्।
एताः षोड़शधा नाड़ीर्भित्त्वा च हंसमेव च। मनसा सहितं ब्रह्मरन्ध्रमानीय योगतः।
स्थित्वा मुहूर्त्तमात्मानमात्मन्येव युयोज ह। जातिस्मरश्च योगीन्द्रः संप्राप ब्रह्म शौनक
वीणां त्रितन्त्रींदुष्प्राप्यांवामस्कन्धे निधाय च। शुद्धस्फटिकमालाञ्च विधृत्यदक्षिणेकरे
संजल्पन् परमं ब्रह्म वेदसारं परात्परम्। परं निस्तारबीजञ्च कृष्ण इत्यक्षरद्वयम्॥२०॥
प्राच्यां कृत्वा शिरःस्थानं पश्चिमे चरणद्वयम्। निधाय दर्भशयने शयानः पुरुषो यथा।
गन्धर्वराजस्तं दृष्ट्वा भार्य्ययासह तत्क्षणम्। योगेन ब्रह्म सम्प्राप श्रीकृष्णंमनसास्मरन्
पत्न्यश्च बान्धवाः सर्वे विलप्य रुरुदुर्भृशम्। जग्मुःक्रमेणशोकार्त्तामोहिताविष्णुमायया
पञ्चाशद्योषितां मध्ये प्रधाना महिषी च या। साध्वी मालावती नाम्ना परमा प्रेयसीवरा
उच्चैरुरोद सा तीव्रंकान्तंकृत्वा च वक्षसि। इत्युवाच च शोकार्त्ता कान्तंसंबोध्यएव च

मालावत्युवाच।

हे नाथ रमणश्रेष्ठ विदग्धरसिकेश्वर। दर्शनं देहि मां बन्धो! निमग्नां शोकसागरे॥२६॥
विश्रम्भके सुवसने रम्ये चन्दनकानने। पुष्पभद्रानदीतीरे पुष्पोद्याने मनोहरे॥ २७॥
चन्दनाचलसान्निध्ये चारुचन्दनकानने। पुष्पचन्दनतल्पे च चन्दनानिलवासिते॥ २८॥
गन्धमादनशैलैकदेशे रम्ये नदीतटे। पुंस्कोकिलनिनादे च मालतीजलशालिनि॥ २९॥
श्रीशैले श्रीवने दिव्ये श्रीनिवासनिषेविते। श्रीयुक्ते श्रीपदाम्भोजे पूतेऽच्युतकृते शुभे।
पुरा या या कृता क्रीडा वसन्ते रहसि त्वया। मया च दुह्यदासाद्य तया च दूयतेमनः
सुधातुल्येन वचसा सिक्ताहञ्च पुरा त्वया। दूयते सततं तेन परमात्मातिदारुणम्॥३२
साधुना सह संसर्गो वैकुण्ठादपि दुर्लभः। अहो ततोऽतिविच्छेदो मरणादपि दुष्करः
तस्मात्तेषाञ्च विच्छेदः साधुशोककरः परः। ततोऽपि बन्धुविच्छेदः शोकःपरमदारुणः

ततोऽपत्यवियोगो हि मरणादतिरिच्यते। सर्वस्मात् पतिभेदो हि तत्परंनास्तिसङ्कटम्
शयने भोजने स्नाने स्वप्ने जागरणेऽपि च। स्वामिविच्छेददुःखञ्च नूतनं च दिने दिने
सर्वशोकंविस्मरेत् स्त्रीस्वामिसंयोगमात्रतः। वन्धुमन्यं न पश्यामितंदृष्ट्वाविस्मरेत्पतिम्

नातो विशिष्टं पश्यामि बान्धवं स्वामिना विना।
साध्वीनां कुलजातानामित्याह कमलोद्भवः ॥ ३८ ॥

हे दिगीशाश्च दिक्पाला हे धर्म हे प्रजापते। गिरीश कमलाकान्त पतिदानञ्च देहि मे
इत्युक्त्वा विरहार्त्ता सा कन्या चित्ररथस्य च। मूर्च्छां संप्राप तत्रैव दुर्गमे गहने वने
विचेतना तत्र तस्थौ कान्तं कृत्वा स्ववक्षसि। परिपूर्णं दिवानक्तं सर्वैर्देवैश्च रक्षिता ॥
प्रभाते चेतनां प्राप्य विललाप भृशं मुहुः। इत्युवाच पुनस्तत्र हरिं संबोध्य सा सती

मालावत्युवाच।

हे कृष्ण जगतां नाथ नाथ नाहं जगद्बहिः। त्वमेव जगतां पाता मां न पाहि कथं प्रभो
अयं भर्त्तास्य भार्य्याहं ममेति तव मायया। त्वमेव सम्भवो भर्त्ता सर्वेषां सर्वकारणः

गन्धर्वः कर्मणा कान्तः कान्ताहमस्य कर्मणा।
क गतः कर्म भोगान्ते कुत्र संस्थाप्य मां प्रियाम् ॥ ४५ ॥
को वा कस्याः पतिः पुत्रः का वा कस्य प्रिया प्रभो।
संयुनक्ति विधाता च वियुनक्ति च कर्मणा ॥ ४६ ॥

संयोगे परमानन्दो वियोगे प्राणसङ्कटम्। शश्वज्जगति मूर्खस्य नात्मारामस्य निश्चिमम्

नश्वरो विषयः सत्यं भोगश्च बान्धवो भुवि।
स्वयं त्यक्तः सुखायैव दुःखाय त्याजितः परैः ॥ ४८ ॥
तस्मात् सन्तः स्वयं त्यक्त्वा परमैश्वर्य्यमीप्सितम्।
ध्यायन्ते सन्ततं कृष्णपादपद्मं निरापदम् ॥ ४९ ॥
सर्वत्र ज्ञानिनः सन्तः का स्त्री ज्ञानवती भुवि।
ततो मह्यं विमूढायै दातुमर्हति वाञ्छितम् ॥ ५० ॥

न मे वाञ्छामरत्वे च शत्रुत्वे मोक्षवर्त्तनि। इमं कान्तं वरं देहि चतुवर्गकरं परम् ॥

यावती कामिनी जातिर्जगत्यां जगदीश्वर। कस्यैचिन्नहि दत्तश्च तेन धात्रेदृशः पतिः॥
तस्मै दत्ता गुणाःसर्वेरूपाणिविविधानि च। सुशीलानिच सर्वाणि चामरत्वं विनाहरे॥
रूपेण च गुणेनैव तेजसा विक्रमेण च। ज्ञानेन शान्त्या सन्तुष्ट्या हरितुल्यः प्रभुर्मम॥
हरिभक्तो हरिसमो गाम्भीर्य्ये सागरो यथा। दीप्तिमान् सूर्य्यतुल्यश्चशुद्धोवह्निसमस्तथा
चन्द्रतुल्यः सुदृश्यश्च कन्दर्पसमसुन्दरः। बुद्ध्या वृहस्पतिसमः काव्ये कविसमस्तथा
वाणी च सर्वशास्त्रज्ञः प्रतिभायां भृगोरिव। कुवेरतुल्यो धनवान् महान् दाता मनोरिव
धर्मे धर्मसमो धर्मी सत्ये सत्यव्रताधिकः। कुमारतुल्यस्तपसा स्वाचारो ब्रह्मणा समः
ऐश्वर्य्ये शक्रतुल्यश्चसहिष्णुःपृथिवीसमः। एवम्भूतो मृतः कान्तः प्राणायान्तिनमेकथम्
अरे सुरा यज्ञभाजो घृतं भोक्तुं क्षमा भुवि। क्षणेनायज्ञभाजश्च करिष्यामि च लीलया
नारायण जगत्कान्त नाहमेव जगद्बहिः। शीघ्रं जीवय मत्कान्तमन्यथा त्वां शपाम्यहम्
प्रजापते पुत्रशापात्त्वमपूज्यो महीतले। तवैवानधिकारित्वं करिष्याम्यधुना भवे ॥६१॥
हे शम्भो ज्ञानलोपं ते करिष्यामि शपे न च। धर्मलोपञ्च धर्मस्य करिष्याम्यवलीलया॥
यमाधिकारंदूरञ्चकरिष्यामि न संशयः। सत्यं कालं शपिष्यामि मृत्युकन्यांसुनिष्ठुराम्
शपामि सर्वानत्रैव जरां व्याधिं विनाऽधुना। व्याधिना जरया मृत्युर्नह्यभूच्च पतेर्मम॥
इत्युक्त्वा कौशिकीतीरं जगाम शप्तुमेव तान्। मालावतीमहासाध्वी शवंकृत्वास्ववक्षसि
तां शप्तुमुद्यतां दृष्ट्वा ब्रह्मा देवपुरोगमः। जगाम शरणं विष्णुं तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥६७॥
तत्रस्नात्वा च तुष्टावपरमात्मानमीश्वरम्। विष्णुंब्रह्माजगत्कान्तमित्युवाच ह भीतवत्

ब्रह्मोवाच।

उपवर्हणपत्नी सा कन्या चित्ररथस्य च। कान्तहेतोश्च मां देवान् शपेत्त्वं रक्ष माधव॥
स्मरन्ति साधवः सन्तो जपन्तियोगिनो मुदा। स्वप्नेजागरणे चैव सर्वकार्य्येषुमाधवम्
शरणागतदीनार्त्तपरित्राणपरायण। रक्ष रक्ष हृषीकेश व्रजामः शरणं वयम् ॥ ७१॥
पूजा मे पुत्रशापेन विहता साम्प्रतं प्रभो। अधिकारहतं माञ्च करोति मालती सती॥
सर्वाधिकारो ब्रह्माण्डे त्वया दत्तः पुरा प्रभो। सम्पदेतादृशी नाथ यास्यत्येवाधुना मम

महादेव उवाच ।

त्वया दत्तं महाज्ञानं गुप्तं सर्वेषु दुर्लभम् । शतमन्वन्तरतपःफलेन पुष्करे पुरा ॥ ७४ ॥
ऐश्वर्यं वा धनं वापि विद्या वा विक्रमोऽथवा ।
ज्ञानस्य परमार्थस्य कलां नार्हति षोड़शीम् ॥ ७५ ॥
सर्वाज्ञातं सर्वगुप्तमतीवदुर्लभं परम् । मम तत्त्वज्ञानरत्नं शापेन याति योषितः ॥ ७६ ॥
अहो पतिव्रतातेजः सर्वेषां तेजसां परम् । तेजोऽनलेन दग्धं मां रक्ष रक्ष हरे हरे ॥७७॥

धर्म उवाच ।

सर्वरत्नात् परं रत्नं धर्म एव सनातनः । यास्यत्येवंविधो धर्मस्त्वया दत्तः पुरा प्रभो ॥
सप्तमन्वन्तरतपःफलेन परमेश्वर । प्राप्तो धर्मोऽधुना याति शापेन योषितः प्रभो ॥७९॥

देवा ऊचुः ।

यज्ञभाजो घृतभुजो वयमेव त्वया कृताः । योषित्शापेन तत् सर्वमधुना याति माधव
इत्युक्त्वा संयताःसर्वेतस्थुस्तत्रभयार्दिताः । एतस्मिन्नन्तरेऽकस्माद्वाग् बभूवाशरीरिणी
यूयं गच्छत तन्मूलं विप्ररूपी जनार्दनः । पश्चाद्यास्यति शान्त्यर्थमिति वो रक्षणाय च
श्रुत्वा तद्वचनं देवाः प्रहृष्टमानसोन्मुखाः । जग्मुर्मालावतीस्थानं कौशिकीतीरमीश्वराः
तामेव ददृशुर्देवा देवीं मालावतीं सतीम् । रत्नसारेन्द्रभूषाभिरुज्ज्वलां कमलाकलाम् ॥
वह्निशुद्धांशुकाधानां सिन्दूरविन्दुभूषिताम् । शरच्चन्द्रप्रभां शान्तां द्योतयन्तींदिशस्त्विषा
पतिसेवामहद्धर्मचिरसञ्चिततेजसा । प्रज्वलन्तीं सुप्रदीप्तशिखां वह्नेरिवोत्तमाम् ॥ ८६ ॥
योगासनं कुर्वतीश्च शववक्षःस्थलस्थिताम् । सुरम्यां स्वामिनो वीणांबिभ्रतींदक्षिणेकरे
तर्जन्यङ्गुष्ठकोटिभ्यां शुद्धस्फटिकमालिकाम् । भक्त्या स्नेहेनकान्तस्य बिभ्रतींयोगमुद्रया
चारुचम्पकवर्णाभां बिम्बोष्ठींरत्नमालिनीम् । यथाषोडशवर्षीयांशश्वत्सुस्थिरयौवनाम्
बृहन्नितम्बभारार्त्तां पीनश्रोणिपयोधराम् । पश्यन्तीं शवमीशस्य शुभदृष्ट्या पुनः पुनः ॥
एवम्भूताश्च तां दृष्ट्वा देवास्ते विस्मयं ययुः । स्थगिताश्च क्षणं तत्र धार्मिका धर्मभीरवः

इति श्री ब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे मालावतीविलापो नाम
त्रयोदशोऽध्यायः ।

चतुर्दशोऽध्यायः ।

विष्णुमालावतीसंवादवर्णनम् ।

सौतिरुवाच ।

तत्र स्थित्वा क्षणं देवा ब्रह्मेशानपुरोगमाः । ययुर्मालावतीमूलं परं मंगलदायकाः ॥ १
मालावती सुरान् दृष्ट्वा प्रणनाम पतिव्रता । रुरोदकान्तं संस्थाप्यदेवानां सन्निधौमुने ।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र कश्चिद्ब्राह्मणबालकः । आजगाम सुराणाञ्च सभामतिमनोहरः ॥
दण्डी छत्री शुक्लवासा बिभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम् । दीर्घपुस्तकहस्तश्च सुप्रशान्तश्चसस्मि
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गःप्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा । सुरान्संभाष्यतत्रैव विस्मितान्विष्णुमाय
तत्रोवास सभामध्ये तारामध्येयथा शशी । उवाच देवान् सर्वांश्च मालतीञ्च विचक्षण

ब्राह्मण उवाच ।

कथमत्र सुराः सर्वे ब्रह्मेशानपुरोगमाः । स्वयं विधाता जगतां स्रष्टाऽत्र केन कर्मणा
सर्वब्रह्माण्डसंहर्त्ता शम्भुरत्र स्वयं विभुः । अहो त्रिजगतां साक्षी धर्मश्च सर्वकर्मणा
कथं रविः कथं चन्द्रः कथमत्र हुताशनः । कथं कालो मृत्युकन्या कथंवाऽत्र यमाद

हे मालावति त्वत्क्रोडे शवः कस्तेऽतिशुष्कितः ।
जीवितायाः कथं मूले योषितश्च पुमान् शवः ॥ १० ॥

इत्युक्त्वा तांश्च तां विप्रोविरराम सभातले । । मालावती तं प्रणम्य समुवाच विचक्षण

मालावत्युवाच ।

आनन्दपूर्वकं वन्दे विप्ररूपं जनार्दनम् । तुष्टा देवा हरिस्तुष्टो यस्य पुष्पजलेन च ॥ १
अवधानंकुरुविप्रे ! शोकार्त्तायानिवेदने । समा कृपासतांशश्वत्योग्यायोग्येकृपावत
उपबर्हणभार्य्याऽहं कन्या चित्ररथस्य च । सर्वे मालावतीं कृत्वा वदन्ति विप्रपुङ्ग
दिव्यं लक्षयुगं रम्ये स्थाने स्थाने मनोहरे । कृता क्रीडा च स्वच्छन्दमनेन स्वामिना

प्रिये स्नेहो हि साध्वीनां यावान् विप्रेन्द्र योषिताम् ।
सर्वं शास्त्रानुसारेण जानासि त्वं विचक्षण ॥ १६ ॥

अकस्मात् ब्रह्मणःशापात् प्राणांस्तत्याजमत्पतिः । देवानुद्दिश्यविलपे यथाजीवतिमत्पतिः
स्वकार्य्यसाधने सर्वे व्यग्राश्च जगतीतले । भावाभावं न जानन्ति केवलंस्वार्थतत्पराः ॥

सुखं दुःखं भयं शोकः सन्तापः कर्मणां नृणाम् ।
ऐश्वर्य्यं परमानन्दो जन्म मृत्युश्च मोक्षणम् ॥ १९ ॥

देवाश्च सर्वजनका दातारः कर्मणां फलम् । कर्त्तारः कर्मवृक्षाणां मूलच्छेदश्चलीलया ॥
न हि देवात्परोवन्धुर्न हि देवात्परो वली । दयावान्न हि देवाच्च न च दाता ततः परः
सर्वान् देवानहं याचे पतिदानं ममेप्सितम् । धर्मार्थकाममोक्षाणां फलदांश्चसुरद्रुमान् ॥

यदि दास्यन्ति देवा मे कान्तदानं यथेप्सितम् ।
भद्रं तदान्यथा तेभ्यो दास्यामि स्त्रीवधं ध्रुवम् ।
शपिष्यामि च सर्वांश्च दारुणं दुर्निवारकम् ।
दुर्निवार्य्यः सतीशापस्तपसा केन वार्य्यते ॥ २४ ॥

इत्युक्त्वा मालतीसाध्वी शोकार्त्तासुरसंसदि । विरराम द्विजश्रेष्ठस्तामुवाच च शौनक ॥

ब्राह्मण उवाच ।

कर्मणां फलदातारो देवाः सत्यश्च मालति । न सद्यः सुचिरेणैव धान्यं कृषकवन्नृणाम्
गृही च कृषकद्वारा क्षेत्रेधान्यं वपेत् सति ! । तदङ्कुरो भवेत्कालेकालेवृक्षः फलत्यपि ॥
काले सुपक्वं भवति काले प्राप्नोति तद्गृही । एवं सर्वं समुन्नेयं चिरेण कर्मणः फलम्॥
...ष्ठीं वपति संसारे गृहस्थो विष्णुमायया । काले तदङ्कुरोवृक्षः कालेप्राप्नोति तत्फलम्
पुण्यवान् पुण्यभूमौ च करोति सुचिरन्तपः । तेषाञ्च फलदातारो देवाः सत्यं न संशयः
ब्राह्मणानांमुखे क्षेत्रे श्रेष्ठेऽनूषरएव च । यो यज्जुहोतिभक्त्या च स तत् प्राप्नोतिनिश्चितम्
...वलं न च सौन्दर्य्यंनैश्वर्य्यं न धनंसुतः । नैवस्त्री नच सत्कोन्तःकिम्भवेत्तपसा विना
...वतेप्रकृतिंयोहि भक्त्याजन्मनिजन्मनि । संलभेत् सुन्दरींकान्तांविनीताञ्चगुणान्विताम्
...यश्च निश्चलां पुत्रं पौत्रं भूमिं धनं प्रजाम् । प्रकृतेश्च वरेणैव लभेद्भक्तोऽवलीलया ॥

शिवं शिवस्वरूपञ्च शिवदं शिवकारणम् । ज्ञानानन्दं महात्मानं परं मृत्युञ्जयं परम् ॥३
तमीशं सेवते यो हि भक्त्या जन्मनि जन्मनि । पुमान्प्राप्नोति सत्कान्तां कामिनी चापि सत्पति
विद्यां ज्ञानं सुकवितां पुत्रं पौत्रं परां श्रियम् । बलं धनं विक्रमञ्च लभेदुरवरेण सः ॥
ब्रह्माणं भजते यो हि लभेत् सोऽपि प्रजां श्रियम् । विद्यामैश्वर्य्यमानन्दं वरेण ब्रह्मणो
यो नरो भजते भक्त्या दीननाथं दिनेश्वरम् । विद्यामारोग्यमानन्दं धनं पुत्रं लभेद् ध्रुवं
गणेश्वरं यो भजते देवदेवं सनातनम् । सर्वाग्रपूज्यं सर्वेशं भक्त्या जन्मनि जन्मनि ॥
विघ्ननाशो भवेत्तस्य स्वप्ने जागरणेऽनिशम् । परमानन्दमैश्वर्यं पुत्रं पौत्रं धनं प्रजाः ।
ज्ञानं विद्यां सुकवितां लभते तद्वरेण च । भजते यो हि विष्णुञ्च लक्ष्मीकान्तं सुरेश्वर
वरार्थी चेल्लभेत् सर्वं निर्वाणमन्यथा ध्रुवम् । शान्तं निषेव्य पातारं सत्यं सत्यं लभेत
सर्वं तपः सर्वधर्मं यशः कीर्त्तिमनुत्तमाम् । विष्णुं निषेव्य सर्वेशं यो मूढो लभते वर
विडम्बितो विधात्राऽसौ मोहितो विष्णुमायया । मायानारायणीशाना सर्वप्रकृतिरीश्व
सा कृपां कुरुते यञ्च विष्णुमन्त्रं ददाति तम् । धर्मं यो भजते धर्मी सर्वधर्मं लभेद् ध्रुव
इहलोके सुखं भुक्त्वा याति विष्णोः परं पदम् । यो यं देवं भजेद्भक्त्या स चादौ लभते च
काले पश्चात्तेन सार्द्धं परं विष्णोः पदं लभेत् । श्रीकृष्णं भजते यो हि निर्गुणं प्रकृतेः पर
ब्रह्माविष्णुशिवादीनां सेव्यं वीजं परात्परम् । अक्षरं परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम्
साकारञ्च निराकारं ज्योतिः स्वेच्छामयं विभुम् । सर्वाधारञ्च सर्वेशं परमानन्दमीश्व
निर्लिप्तं साक्षिरूपञ्च भक्तानुग्रहविग्रहम् । जीवन्मुक्तः स सत्यं हि न वरं लभते सुधी
स सर्वं मन्यते तुच्छं सालोक्यादि चतुष्टयम् । ब्रह्मत्वममरत्वं वा मोक्षं यत्तुच्छवत्स
ऐश्वर्य्यं लोष्ट्रतुल्यञ्च नश्वरं चैव मन्यते । इन्द्रत्वञ्च मनुत्वञ्च चिरजीवित्वमेव वा ॥
जलबुद्बुदवद्बुद्ध्या चातितुच्छं न गण्यते । स्वप्ने जागरणे वापि शश्वत् सेवाञ्च वाञ्छ
दास्यं विना न याचेत श्रीकृष्णस्य पदं परम् । तत्पादाब्जे दृढां भक्तिं लब्ध्वा पूर्णो निरन्त
परिपूर्णतमं ब्रह्म निषेव्य सुस्थिरः सदा । आत्मनः कुलकोटिञ्च शतं मातामहस्य
श्वशुरस्य शतं पूर्वमुद्धृत्य चावलीलया । दासं दासीं प्रसूं भार्य्यां पुत्रादपि परं शतम्
उद्धरेत् कृष्णभक्तश्च गोलोकं याति निश्चितम् । तावद्गर्भे वसेत् कामी तावतीयम

तावद् गृही च भोगार्थी यावत्कृष्णं न सेवते । गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्यकर्णे प्रविश्यति
यमस्तल्लिखनं दूरं करोति तत्क्षणं भिया । मधुपर्कादिकं ब्रह्मा पुरैव तन्नियोजयेत् ६०
अहो विलङ्घ्य मल्लोकं मार्गेणानेन यास्यति । तस्य वै निष्कृतिर्नास्ति कल्पकोटिशतैरपि
दुरितानि च भीतानि कोटिजन्मकृतानि च । तं विहाय पलायन्ते वैनतेयं यथोरगाः ॥
पुरातनं कृतं कर्म यद् यत्तस्य शुभाशुभम् । छिनत्ति कृष्णचक्रेण तीक्ष्णधारेण सन्ततम्
तं विहाय जरा मृत्युर्याति चक्रभियां सति । अन्यथा शतखण्डं तां कुरुते च सुदर्शनः ॥
निःशङ्को यातिगोलोकं विहाय मानवींतनुम् । गत्वादिव्यां तनुंधृत्वा श्रीकृष्णंसेवतेसदा
यावत् कृष्णो हिगोलोके तावद्भक्तो वसेत् सदा । निमेषंमन्यते दासोनश्वरं ब्रह्मणोवयः
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे विष्णुमालतीसंवादो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।

पञ्चदशोऽध्यायः ।

मालावतीकालपुरुषसंवादवर्णनम् ।

ब्राह्मण उवाच ।

केन रोगेण हि मृतोऽधुना साध्वि! तव प्रियः ।
सर्वरोगचिकित्साञ्च जानामि च चिकित्सकः ॥ १ ॥

मृततुल्यं मृतं रोगात् सप्ताहाभ्यन्तरे सति! । महाज्ञानेन तं जीवं जीवयाम्यवलीलया ॥
जरामृत्युं यमं कालं व्याधिमानीय त्वत्पुरः । निबध्यदातुंशक्तोऽहं व्याधो वद्ध्वापशुंयथा
यतो न सञ्चरेद् व्याधिर्देहेषु देहधारिणाम् । व्याधीनां कारणं यद्यत् सर्वं जानामिसुन्दरि
यतो न सञ्चरेद् व्याधिर्बीजं दुष्टममङ्गलम् । तदुपायं विजानामि शास्त्रतत्त्वानुसारतः ॥
यो वा योगेन खेदेन देहत्यागं करोति च । तस्य तं जीवनोपायं जानामि योगधर्मतः ॥
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा स्फीतामालावतीसती । सस्मितास्निग्धचित्ता सा तमुवाचप्रहर्षिता

मालावत्युवाच ।

अहो श्रुतं किमाश्चर्य्यं वचनंबालवक्त्रतः । वयसाऽतिशिशुर्द्दृष्टो ज्ञानं योगविदां परम्॥
त्वयाकृताप्रतिज्ञाच कान्तं जीवयितुं मम । विपरीतं न सद्वाक्यं तत्क्षणंजीवितःपतिः
जीवयिष्यति मत्कान्तं पश्चाद्वेदविदां वरः । यद्‌यत् पृच्छामि संदेहात्तद्भवान्वक्तुमर्हति
सभायां जीविते कान्तेतस्य तीव्रस्य सन्निधौ । त्वांहि प्रष्टुं न शक्ताहं विद्यमाने मदीश्वरे
एते ब्रह्मादयो देवा विद्यमानाश्च संसदि । त्वञ्च वेदविदां श्रेष्ठो न च कश्चिन्मदीश्वरः।
नारींरक्षतिभर्त्ताचेत् न कोऽपिखण्डितुंक्षमः।शास्तिकरोतियदि स न कोऽपिरक्षितासुवि
एवंदेवेषुनो शक्तिःशक्रेवा ब्रह्मरुद्रयोः । स्त्रीपुम्भावश्च बोद्धव्यः स्वामीकर्त्ताचयोषिताम्
स्वामीकर्त्ता च हर्त्ता च शास्ता पोष्टाच रक्षिता । अभीष्टदेवः पूज्यश्चन गुरुःस्वामिनःपरः

कन्या सतकुलजाता या सा कान्तवशवर्तिनी ।
या स्वतन्त्रा च सा दुष्टा स्वभावात् कुलटा ध्रुवम् ॥ १६ ॥

दुष्टा परपुमांसञ्च सेवते या नराधमा । सा निन्दति पतिं शश्वदसद्वंशप्रसूतिका ॥१७
उपबर्हणभार्य्याहं कन्या चित्ररथस्य च । वधूर्गन्धर्वराजस्य कान्तभक्ता सदा द्विज १८
सर्वंकालयितुंशक्तस्त्वञ्च वेदविदां वर । कालंयमं मृत्युकन्यामदभ्यासं समानय ॥ १९
मालावतीवचः श्रुत्वा विप्रो वेदविदां वरः । सभामध्ये समाहूय तान् प्रत्यक्षं चकार ह
ददर्श मृत्युकन्याञ्च प्रथमं मालती सती । कृष्णववर्णां घोररूपां रक्ताम्बरधरां वराम्॥

सस्मितां षड्भुजां शान्तां दयायुक्तां महासतीम् ।
कालस्य स्वामिनो वामे चतुःषष्टिसुतान्विताम् ॥ २२ ॥

कालं नारायणांशञ्च ददर्श सुरता सती । महोग्ररूपं विकटं ग्रीष्मसूर्य्यसमप्रभम् ॥ २३
षड्वक्त्रं षोड़शभुजं चतुर्विंशतिलोचनम् । षट्पादं कृष्णवर्णञ्च रक्ताम्बधरं परम् ॥२४
देवस्य देवं विकृतं सर्वसंहाररूपिणम् । कालाग्निदेवं सर्वेशं भगवन्तं सनातनम् ॥२५
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यमक्षमालाकरं वरम् । जपन्तं परमं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम् ॥२६

—सती ददर्श पुरतो व्याधिसंघान् सुदुर्जयान् ।
वयसाऽतिमहावृद्धान् स्ततन्धान् मातृसन्निधौ ॥ २७ ॥

स्थूलपादं कृष्णवर्णं धर्मिष्ठं रविनन्दनम् । जपन्तं परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् ॥ २८ ॥
धर्माधर्मविचारज्ञं परं धर्मस्वरूपिणम् । पापिनामपि शास्तारं ददर्श पुरतो यमम् ॥२९॥
तांश्च दृष्ट्वा च निःशङ्का पप्रच्छ प्रथमं यमम् । मालावती महासाध्वी प्रहृष्टवदनेक्षणा ॥

मालावत्युवाच ।

हे धर्मराज धर्मिष्ठ धर्मशास्त्रविशारद । कालव्यतिक्रमे कान्तं कथं हरसि मे विभो ३१

यम उवाच ।

अप्राप्तकालो म्रियते न कश्चिज्जगतीतले । ईश्वराज्ञां विना साध्वि नामृतं चालयाम्यहम्
अहं कालो मृत्युकन्या व्याधयश्च सुदुर्जयाः । निषेकेण प्राप्तकालं कालयन्तीश्वराज्ञया
मृत्युकन्या विचारज्ञा यं प्राप्नोति निषेकतः । तमहं कालयाम्येव पृच्छ तां केन हेतुना ।

मालावत्युवाच ।

त्वमपि स्त्री मृत्युकन्या जानासि स्वामिवेदनम् ।
कथं हरसि मत्कान्तं जीवितायां मयि प्रिये ॥ ३५ ॥

मृत्युकन्योवाच ।

पुरा विश्वसृजा सृष्टाऽप्यहमेवात्र कर्मणि । न च क्षमा परित्यक्तुं बहुना तपसा सति ॥
सती सतीनां मध्ये च काचित्तेजस्विनी वरा । मामेव भस्मसात् कर्त्तुं क्षमा यदि भवेद्भवे
सर्वापच्छन्तिरेवेह तदा भवति सुन्दरि । पुत्राणां स्वामिनः पश्चात् भविता यद्भविष्यति
कालेन प्रेरिताऽहञ्च मत्पुत्रा व्याधयश्च वै । न मत्सुतानां दोषश्च न च मे शृणु निश्चितम्
पृच्छ कालं महात्मानं धर्मज्ञं धर्मसंसदि । तदा यदुचितं भद्रे तत्करिष्यसि निश्चितम्

मालावत्युवाच ।

हे काल कर्मणां साक्षिन् कर्मरूप सनातन । नारायणांशो भगवन् नमस्तुभ्यं पराय च
कथं हरसि मत्कान्तं जीवितायां मयि प्रभो । जानासि सर्वदुःखञ्च सर्वज्ञस्त्वं कृपानिधे

कालपुरुष उवाच ।

को वाऽहं को यमः का च मृत्युकन्या च व्याधयः । वयं भ्रमामः सततमीशाज्ञापरिपालकाः
यस्य सृष्टा च प्रकृतिर्ब्रह्मविष्णुशिवादयः । सुरा मुनीन्द्रा मनवो मानवाः सर्वजन्तवः ॥

ध्यायन्ते तत्पदाम्भोजं योगिनश्च विचक्षणाः। जपन्तिशश्वन्नामानि पुण्यानि परमात्मनः
यद्भयाद् वाति वातोऽयं सूर्य्यस्तपति यद्भयात्। स्रष्टाब्रह्माज्ञयायस्यपाताविष्णुर्यदाज्ञया
संहर्त्ता शङ्करः सर्वजगतां यस्य शासनात्। धर्मश्च कर्मणां साक्षी यस्याज्ञापरिपालकः
राशिचक्रं ग्रहाः सर्वेभ्रमन्तियस्यशासनात्। दिगीशाश्चैवदिक्पालायस्याज्ञापरिपालकाः
यस्याज्ञया च तरवः पुष्पाणि च फलानि च। बिभ्रत्येव ददत्येव कालेमालावतीसति।
यस्याज्ञया जलाधारा सर्वाधारा वसुन्धरा। क्षमावती च पृथिवी कम्पिता च भयेन च
सहसा मोहिता माया मायायायस्य सन्ततम्। सर्वप्रसूर्या प्रकृतिः सा भीता यद्भयाद्धो
यस्यान्तं न विदुर्वेदा वस्तूनांभावगा अपि। पुराणानिच सर्वाणि यस्यैव स्तुतिपाठकाः
यस्य नाम विधिर्विष्णुः सेवते सुमहान् विराट्। षोडशांशोभगवतःसएवतेजसो विभोः
सर्वेश्वरः कालकालो मृत्योर्मृत्युः परात्परः। सर्वविघ्नविनाशाय तं कृष्णं परिचिन्तय
सर्वाभीष्टञ्च भर्त्तारं प्रदास्यति कृपानिधिः। इमे यत्प्रेरिताः सर्वे स दाता सर्वसम्पदाम्
इत्युक्त्वा कालपुरुषो विरराम च शौनक। कथां कथितुमारेभे पुनरेव तु ब्राह्मणः॥५
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे मालावतीकालपुरुषसंवादे पञ्चदशोऽध्यायः।

षोड़शोऽध्यायः।

विष्णुमालावतीसंवादेव्याधिप्रणयनम्।

ब्राह्मण उवाच।

दृष्टःकालोयमोमृत्युकन्याव्याधिगणाअहो। कस्तेऽधुनाचसन्देहस्तंपृच्छकन्यके शुभे।
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा हृष्टा मालावती सती। यन्मनोनिहितं प्रश्नं चकार जगदीश्वरम्।

मालावत्युवाच।

त्वया यत् कथितो व्याधिः प्राणिनांप्राणहारकः। तत्कारणञ्च विविधंसर्ववेदेनिरूपितम्
यतो न सञ्चरेद् व्याधिर्दुर्निवारोऽशुभावहः। तदुपायञ्च साकल्यं भवान् वक्तुमिहार्हसि

यद् तत् पृष्टमपृष्टं वा ज्ञातमज्ञातमेव वा । सर्वं कथय तद्ब्रह्मं त्वं गुरुर्दीनवत्सलः ॥ ५ ॥
मालावतीवचः श्रुत्वा विप्ररूपी जनार्दनः । संहितां वक्तुमारेभे संहितार्थश्च वैद्यकीम् ॥

ब्राह्मण उवाच ।

वन्दे तं सर्वतत्त्वज्ञं सर्वकारणकारणम् । वेदवेदाङ्गवीजस्य वीजं श्रीकृष्णमीश्वरम् ॥
स ईशश्चतुरो वेदान् ससृजे मङ्गलालयान् । सर्वमङ्गलमङ्गल्यवीजरूपः सनातनः ॥ ८ ॥
ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यान् दृष्ट्वा वेदान् प्रजापतिः । विचिन्त्यतेषामर्थश्चैवायुर्वेदंचकारसः
कृत्वा तु पञ्चमं वेदं भास्कराय ददौ विभुः । स्वतन्त्रसंहितां तस्माद्भास्करश्चचकार सः
भास्करश्च स्वशिष्येभ्य आयुर्वेदंस्वसंहिताम् । प्रददौ पाठयामास ते चक्रुःसंहितास्ततः
तेषांनामानि विदुषां तन्त्राणिततकृतानि च । व्याधिप्रणाशवीजानिसाध्विमत्तोनिशामय
धन्वन्तरिर्दिवोदासःकाशीराजोऽश्विनीसुतौ । नकुलःसहदेवोऽर्किश्च्यवनोजनकोबुधः
जावालो जाजलिः पैलः करथोऽगस्त्य एव च । एतेवेदाङ्गवेदज्ञाःषोड़शव्याधिनाशकाः
चिकित्सातत्त्वविज्ञानं नाम तन्त्रं मनोहरम् । धन्वन्तरिश्च भगवान् चकार प्रथमे सति
चिकित्सादर्पणं नामदिवोदासश्चकारसः । चिकित्साकौमुदींदिव्यांकाशीराजश्चकारसः
चिकित्सासारतन्त्रञ्च भ्रमघ्नं चाश्विनीसुतौ । तन्त्रं वैद्यकसर्वस्वं नकुलश्च चकार सः
चकार सहदेवश्च व्याधिसिन्धुविमर्दनम् । ज्ञानार्णवं महातन्त्रं यमराजश्चकार ह ॥ १८
च्यवनो जीवदानञ्च चकार भगवानृषिः । चकार जनको योगी वैद्यसन्देहभञ्जनम् ॥ १६
सर्वसारं चन्द्रसुतो जावालस्तन्त्रसारकम् । वेदाङ्गसारं तन्त्रञ्च चकार जाजलिर्मुनिः ॥
पैलो निदानं करथस्तन्त्रं सर्वधरं परम् । द्वैधनिर्णयतन्त्रञ्च चकार कुम्भसम्भवः ॥ २१
चिकित्साशास्त्रवीजानितन्त्राण्येतानिषोडश ।व्याधिप्रणाशवीजानिबलाधानकराणिच
मथित्वा ज्ञानमन्त्रेणैवायुर्वेदपयोनिधिम् । ततस्तस्मादुदाजह्रुर्नवनीतानि कोविदाः ॥
एतानि क्रमशो दृष्ट्वा दिव्यां भास्करसंहिताम् । आयुर्वेदं सर्ववीजं सर्वंजानासि सुन्दरि
व्याधेस्तत्र परिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः । एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥ २५
आयुर्वेदस्य विज्ञाताचिकित्सासु यथार्थवित् । धर्मिष्ठश्च दयालुश्च तेनवैद्यःप्रकीर्तितः
जनकः सर्वरोगाणां दुर्वारोदारुणोज्वरः । शिवभक्तश्च योगी च निष्ठुरो विकृताकृतिः

भीमस्त्रिपादस्त्रिशिराः षड्भुजो नवलोचनः । भस्मप्रहरणो रौद्रः कालान्तकयमोपमः ॥
मन्दाग्निस्तस्य जनकोमन्दाग्नेर्जनकास्त्रयः । पित्तश्लेष्मसमीराश्च प्राणिनांदुःखदायकाः
वायुजः पित्तजश्चैव श्लेष्मजश्च तथैव च । ज्वरभेदाश्च त्रिविधाश्चतुर्थश्च त्रिदोषजः ॥
पाण्डुश्च कामलः कुष्ठः शोथः प्लीहा च शूलकः । ज्वरातिसारग्रहणीकासव्रणहलीमकाः
मूत्रकृच्छ्रश्च गुल्मश्च रक्तदोषविकारजः । विषमेहश्च कुब्जश्च गोदश्च गलगण्डकः ॥३२॥
भ्रमरी सन्निपातश्च विसूची दारुणी सति । एषां भेदप्रभेदेन चतुःषष्टी रुजः स्मृताः ॥
मृत्युकन्यासुताश्चैतेजरातस्याश्चकन्यका । जराचभ्रातृभिःसार्द्धंशाश्वद् भ्रमति भूतलम्
एते चोपायवेत्तारं न गच्छन्ति च संयतम् । पलायन्ते च तं दृष्ट्वा वैनतेयमिवोरगाः ॥
चक्षुर्जलञ्च व्यायामः पादाधस्तैलमर्दनम् । कर्णयोर्मूर्ध्नि तैलञ्च जराव्याधिविनाशनम्
वसन्ते भ्रमणं वह्निसेवां स्वप्नं करोति यः । बालाञ्च सेवते काले जरा तं नोपगच्छति
स्वातशीतोदकस्नायी सेवते चन्दनद्रवम् । नोपयाति जरा तञ्च निदाघेऽनिलसेवकम् ॥
प्राविष्युष्णोदकस्नायी घनतोयं च सेवते । समये च समाहारी जरा तं नोपगच्छति ॥
शरद्रौद्रं न गृह्णाति भ्रमणं तत्र वर्जयेत् । खातस्नायी समाहारी जरा तं नोपगच्छति ॥
खातस्नायी च हेमन्ते काले वह्निञ्च सेवते । भुङ्क्ते नवान्नमुष्णञ्च जरा तं नोपगच्छति
शिशिरेऽशुकवह्निञ्च नवोष्णान्नञ्च सेवते । यत्र वोष्णोदकस्नायी जरा तं नोपच्छति ॥
सद्योमांसं नवान्नञ्च बालास्त्रीक्षीरभोजनम् । घृतञ्च सेवते यो हि जरा तं नोपगच्छति
भुङ्क्ते सदन्नं क्षुत्काले तृष्णायां पीयतेजलम् । नित्यंभुङ्क्तेचताम्बूलंजरातंनोपगच्छति
दधि हैयङ्गवीनञ्च नवनीतं तथागुडम् । नित्यं भुङ्क्ते संयमी यो जरा तं नोपगच्छति ॥
शुष्कमांसं स्त्रियं वृद्धां बालार्कं तरुणं दधि । संसेवन्तं जरा याति प्रहृष्टा भ्रातृभिःसह
रात्रौ ये दधि सेवन्ते पुंश्चलीश्च रजस्वलाः । तानुपैति जरा हृष्टा भ्रातृभिः सह सुन्दरि
रजस्वला च कुलटा चावीरा जारदूतिका । शूद्रयाजकपत्नी या ऋतुहीना च या सति ॥
यो हि तासामन्नभोजी ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः । तेन पापेन सार्द्धं सा जरा तमुपगच्छति
पापानां व्याधिभिःसार्द्धं मित्रता सन्ततं ध्रुवम् । पापंव्याधिजराबीजंविघ्नबीजंश्चनिश्चितम्
पापेन जायते व्याधिः पापेन जायते जरा । पापेन जायते दैन्यं दुःखं शोको भयङ्करः ॥

तस्मात् पापं महावैरं दोषवीजममङ्गलम् । भारते सन्ततं सन्तो नाचरन्ति भयातुराः ॥
स्वधर्माचारयुक्तञ्च दीक्षितं हरिसेवकम् । गुरुदेवातिथीनाञ्च भक्तं सक्तं तपःसु च ॥५३
व्रतोपवासयुक्तञ्च सदा तीर्थनिषेवकम् । रोगा द्रवन्ति तं दृष्ट्वा वैनतेयमिवोरगाः ॥ ५४
एतान् जरा न सेवेत् व्याधिसंघश्च दुर्जयः । सर्वं वोध्यमसमये काले सर्वं ग्रसिष्यति
ज्वरश्च सर्वरोगाणां जनकः कथितः सति । पित्तश्लेष्मसमीराश्च ज्वरस्य जनकास्त्रयः
एते यथा सञ्चरन्ति स्वयं यान्ति च देहिषु । तमेव विविधोपायं साध्वि मत्तो निशामय
क्षुधि जाज्वल्यमानायामाहाराभाव एव च । प्राणिनां जायते पित्तं चक्रे च मणिपूरके
तालविल्वफलं भुक्त्वा जलपानञ्च तत्क्षणम् । तदेव तु भवेत् पित्तं सद्यःप्राणहरं परम्
तप्तोदकञ्च शरदि भाद्रे तिक्तं विशेषतः । दैवग्रस्तेश्च यो भुङ्क्ते पित्तं तस्य प्रजायते ॥
सशर्करञ्च धन्याकं पिष्टं शीतोदकान्वितम् । चनकं सर्वगव्यञ्च दधि तक्रविवर्जितम्
विल्वतालफलं पक्वं सर्वमैक्षवमेव च । शार्द्रकं मुद्गयूषञ्च तिलपिष्टं सशर्करम् ॥ ६२ ॥
पित्तक्षयकरं सद्योवलपुष्टिप्रदं परम् । पित्तनाशञ्च तद्वीजमुक्तमन्यं निवोध मे ॥ ६३ ॥
भोजनानन्तरं स्नानं जलपानं विना तृषा । तिलतैलं स्निग्धतैलं स्निग्धमामलकीद्रवम् ॥
पर्य्युषितान्नं तक्रञ्च पक्वं रम्भाफलं दधि । मेघाम्बु शर्करातोयं सुस्निग्धजलसेवनम् ॥
नारिकेलोदकं रुक्षस्नानं पर्य्युषिते जले । तरुमुञ्जापक्वफलं सुपक्वं कर्क्कटीफलम् ॥ ६६
खातस्नानञ्च वर्षासु मूलकं श्लेष्मकारकम् । ब्रह्मरन्ध्रे च तज्जन्म महद्वीर्य्यविनाशनम् ॥
वह्निस्वेदं भ्रष्टभङ्गं पक्वतैलविशेषकम् । भ्रमणं शुष्कभक्षञ्च शुष्कपक्वहरीतकी ॥ ६८ ॥
पिण्डारकमपक्वञ्च रम्भाफलमपक्वकम् । वेसवारः सिन्धुवार अनाहारजलपानकम् ॥६९॥
सघृतं रोचनाचूर्णं सघृतं शुष्कशर्करम् । मरीचं पिप्पलं शुष्कमार्द्रकं जीवकं मधु ।७०।
द्रव्याण्येतानि गान्धर्वि ! सद्यःश्लेष्महराणि च । बलपुष्टिकराण्येव वायुवीजं निशामय
भोजनानन्तरं सद्योगमनं धावनं तथा । छेदनं वह्नितापश्च शश्वद्भ्रमणमैथुनम् ॥७२॥
वृद्धास्त्रीगमनञ्चैव मनःसन्ताप एव च । अतिरुक्षमनाहारं युद्धं कलहमेव च ॥ ७३ ॥
कटुवाक्यं भयं शोकः केवलं वायुकारणम् । आज्ञाख्यचक्रे तज्जन्म निशामय तदौषधम्
पक्वं रम्भाफलञ्चैव सवीजं शर्करोदकम् । नारिकेलोदकञ्चैव सद्यस्तक्रं सुपिष्टकम् ॥

माहिषं दधि मिष्टञ्च केवलं वा सशर्करम्। सद्यःपर्य्युषितान्नञ्च सौवीरं शीतलोदकम्॥
पक्वतैलविशेषञ्च तिलतैलञ्च केवलम्। लाङ्गलीतालखर्जूरमुष्णमामलकीद्रवम्॥ ७७॥
शीतलोष्णोदकस्नानं सुस्निग्धचन्दनद्रवम्॥ स्निग्धपद्मपत्रतल्पं सुस्निग्धव्यजनानि च
एतत्ते कथितं वत्से! सद्योवायुप्रणाशनम्। वायवस्त्रिविधाः पुंसां क्लेशसन्तापकामजाः
व्याधिसंघश्च कथितस्तन्त्राणि विविधानि च। तानि व्याधिप्रणाशाय कृतानि सद्भिरेव च
तन्त्राण्येतानि सर्वाणि व्याधिक्षयकराणि च। रसायनादयो येषु चोपायाश्चसुदुर्लभाः
न शक्तः कथितुं साध्वि! याथार्थ्यं वत्सरेण च। तेषाञ्चसर्वतन्त्राणांकृतानाञ्चविचक्षणैः
केन रोगेण त्वत्कान्तो मृतः कथय शोभने!। तदुपायं करिष्यामि येन जीवेदयं सति!

सौतिरुवाच।

ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा कन्या चित्ररथस्य च। कथां कथितुमारेभे सा गान्धर्वीप्रहर्षिता

मालावत्युवाच।

योगेन प्राणांस्तत्याज ब्रह्मणः शापहेतुना। सभायां लज्जितः कान्तो मम विप्रनिशामय
सर्वं श्रुतमपूर्वञ्च शुभाख्यानं मनोहरम्। भवेद्भवे कुतः केषां महल्लभ्यं विपद्विना॥८६॥
अधुना मत्प्राणकान्तं देहि देहि विचक्षण। नत्वा वःस्वामिनासार्द्धंयास्यामिस्वगृहंप्रति
मालावतीवचः श्रुत्वा विप्ररूपी जनार्दनः। सभां जगामदेवानां शीघ्रं विप्रस्तदन्तिकात्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे मालावतीविष्णुसंवादे चिकित्साप्रणयने षोड़शोऽध्यायः।

सप्तदशोऽध्यायः।

देवानांसमीपेविष्णोर्गमनम्।

सौतिरुवाच।

दृष्ट्वा द्विजं देवसंघः प्रत्युत्थानं चकार च। परस्परञ्च सम्भाषा बभूव तत्र संसदि॥
मा तं बुबुधिरे देवाः श्रीहरिं विप्ररूपिणम्। पौर्वापर्य्यं विस्मृताश्चमोहिताविष्णुमायया

सुरान् सम्बोध्य विप्रश्च वाचा मधुरया द्विज । उवाचसत्यं परमं प्राणिनांयत्शुभावहम्
ब्राह्मण उवाच ।
उपबर्हणभार्य्येयं कन्या चित्ररथस्य च । ययाचे जीवदानञ्च स्वामिनः शोककर्षिता ॥
अधुना किमनुष्ठानमस्यकार्य्यस्य निश्चितम् । तन्मांब्रूहिसुराःसर्वेनित्यंयत्समयोचितम्
शप्तुकामा सुरान् सर्वान्साध्वीतेजस्विनीवरा । अहं क्षेमाययुष्माकमागतोबोधितासती
स्तुतिः कृता च युष्माभिः श्वेतद्वीपेहरेरपि । युष्माकमीशो विष्णुश्च कथमेवात्र नागतः
बभूवाकाशवाणीति पश्चाद् यास्यति केशवः । विपरीतं कथम्भूतं वाणीवाक्यमचञ्चलम्
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा स्वयं ब्रह्मा जगद्गुरुः । उवाच वचनं सत्यं हितं परममङ्गलम् ॥
ब्रह्मोवाच ।
मत्पुत्रो नारदः शप्तो गन्धर्वश्चोपबर्हणः । योगेन प्राणांस्तत्याज पुनः शापान्ममैव हि
कालं लक्षयुगं व्याप्य स्थितिरस्य महीतले । शूद्रयोनिं ततः प्राप्य भवितामत्सुतः पुनः
अस्य कालावशेषस्य कश्चिदस्ति द्विजोत्तम ! तत्तु वर्षसहस्रञ्चैवायुरस्यास्ति साम्प्रतम्
दास्यामि जीवदानञ्च स्वयं विष्णोःप्रसादतः ।
यथैनं न स्पृशेत् शापस्तत् करिष्यामि निश्चितम् ॥ १३ ॥
नागतो हरिरत्रेति त्वया यत् कथितं द्विज ! हरिः सर्वत्र सर्वात्मा विग्रहःकुत आत्मनः
स्वेच्छामयः परं ब्रह्म भक्तानुग्रहविग्रहः । सर्वं पश्यति सर्वज्ञः सर्वत्रास्ति सनातनः ॥
विः षश्चव्याप्तिवचनोणुश्चसर्वत्रवाचकः । सर्वव्यापी च सर्वात्मा तेन विष्णुःप्रकीर्त्तितः
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतः पुमान् ।
भक्त्या च यःस्मरेद्विष्णुं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥ १७ ॥
कर्मारम्भे च मध्ये वा शेषे विष्णुश्च यः स्मरेत् । परिपूर्णतस्य कर्म वैदिकञ्चभवेद्द्विज
अहं स्रष्टा च जगतां विधाता संहरो हरः । धर्मश्च कर्मणां साक्षी यस्याज्ञापरिपालकः
कालः संहरते लोकान् यमः शास्ता च पापिनाम् ।
उपैति मृत्युः सर्वांश्च भिया यस्याज्ञया सदा ॥ २० ॥
सर्वेशा या च सर्वाद्याप्रकृतिःसर्वसूःपुरा । सा भीता यस्यपुरतो यस्याज्ञापरिपालिका

महेश्वर उवाच ।

पुत्राणां ब्रह्मणस्तेषां कस्य वंशोद्भवो भवान् । वेदानधीत्य भवता ज्ञातः कःसारएव च
शिष्यः कस्य मुनीन्द्रस्य वत्स्त्वं नाम्ना च भो द्विज !
विभर्त्यर्कातिरिक्तश्च शिशुरूपोऽसि साम्प्रतम् ॥ २३ ॥
विडम्बयसि देवांश्च विष्णुमस्माकमीश्वरम् । हृदिस्थश्च न जानासिपरमात्मानमीश्वरम्
यस्मिन् गते पतेद्देहो देहिनां परमात्मनि । प्रयान्ति सर्वे तत्पश्चात् नरदेवानुगा इव॥
जीवस्तत्प्रतिविम्बश्च मनो ज्ञानञ्च चेतना । प्राणाश्चेन्द्रियवर्गाश्च बुद्धिर्मेधाधृतिः स्मृतिः
निद्रादया च तन्द्रा च क्षुत्तृष्णापुष्टिःरेव च । श्रद्धासंतुष्टिरिच्छाचक्षमालज्जादिकाःस्मृताः
प्रयाति यत्पुरः शक्तिरीश्वरे गमनोन्मुखे । एते सर्वे च शक्तिश्च यस्याज्ञापरिपालकाः
ईश्वरे च स्थिते देही क्षमश्च सर्वकर्मसु । गतेऽस्पृश्यः शवस्त्याज्यः कस्तं देहीन मन्यते
स्वयं ब्रह्मा च जगतां विधाता सर्वकारकः । पदारविन्दमनिशं ध्यायते द्रष्टुमक्षमः ॥३०॥
युगलक्षं तपस्तप्तं श्रीकृष्णस्य च वेधसा । तदा बभूव ज्ञानी च जगत् स्रष्टुं क्षमस्तदा॥
असंख्यकालं सुचिरं तपस्तप्तं हरेर्मया । तृप्तिं जगाम न मनस्तृप्यते केन मङ्गले ॥३२॥
अधुना पञ्चवक्त्रेण यन्नामगुणकीर्त्तनम् । गायन् भ्रमामि सर्वत्र निःस्पृहः सर्वकर्मसु॥
मत्तो याति च मृत्युश्च यन्नामगुणकीर्त्तनात् । शश्वज्जपन्तं तन्नाम दृष्ट्वा मृत्युः पलायते
सर्वब्रह्माण्डसंहर्त्ताऽप्यहं मृत्युञ्जयाभिधः । सुचिरं तपसा यस्य गुणनामानुकीर्त्तनम्
काले तत्र विलीनोऽहमाविर्भूतस्ततः पुनः । न कालो मम संहर्त्ता न मृत्युर्यत्प्रसादतः
गोलोके यः स वैकुण्ठे श्वेतद्वीपे स एव च । अंशांशिनोर्न भेदश्च ब्रह्मन्वह्निस्फुलिङ्गवत्
मन्वन्तरन्तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः । अष्टाविंशतिमे शक्रे गते च ब्रह्मणो दिनम्॥
एतत्संख्याविशिष्टस्य शतवर्षायुषो विधेः । पाते लोचनपातश्च यद्विष्णोः परमात्मनः
अहं कलानामृषयः कृष्णस्य परमात्मनः । परं महिम्नः को गच्छेन्न जानामि च किञ्चन
इत्युक्त्वा शङ्करस्तत्र विरराम च शौनक । धर्मश्च वक्तुमारेभे यः साक्षी सर्वकर्मणाम्॥

धर्म उवाच ।

यत्पाणिपादौ सर्वत्र चक्षुश्च सर्वदर्शनम् । सर्वान्तरात्मा प्रत्यक्षोऽप्रत्यक्षश्च दुरात्मनः

अधुनाऽपिसभांविष्णुर्नायातिइति यद्वचः । त्वयोक्तं तत्कया बुद्ध्या मुनीनाञ्चमतिभ्रमः
महन्निन्दाभवेद्यत्रनैवसाधुःशृणोतिताम् । निन्दकःश्रोत्रेभिःसार्द्धंकुम्भीपाकंव्रजेद्युगम्
श्रुत्वादैवान्महन्निन्दांश्रीविष्णोःस्मणाद्बुधः । मुच्यतेसर्वपापेभ्यःपुण्यंप्राप्नोतिदुर्लभम्
कामतोऽकामतोवापि विष्णुनिन्दांकरोतियः । यःशृणोति हसति वा सभामध्येनराधमः
कुम्भीपाके पचति स यावद्धि ब्रह्मणो वयः । स्थलंभवेदपूतञ्च सुरापात्रं यथा द्विज ॥
प्राणीचनरकंयाति श्रुतन्तत्रैवचेद्ध्रुवम् । विष्णुनिन्दाचत्रिविधा ब्रह्मणा कथितापुरा ॥
अप्रत्यक्षञ्च कुरुते किं वा तञ्च न मन्यते । देवान्यैसाम्यं कुरुते ज्ञानहीनो नराधमः ॥
तस्यात्रनिष्कृतिर्नास्तियावद्वैब्रह्मणःशतम् । गुरोर्निन्दां यः करोतिपितुर्निन्दांनराधमः ॥
स याति कालसूत्रञ्च यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ५० ॥
विष्णुर्गुरुश्च सर्वेषां जनको ज्ञानदायकः । पोष्टा पाता भयत्राता वरदाता जगत्त्रये ॥
एषाञ्च वचनंश्रुत्वा त्रयाणां विप्रपुंगवः । प्रहस्योवाच तान् देवान् वाचामधुरयापुनः ॥

ब्राह्मण उवाच ।

का कृताविष्णुनिन्दाऽहो हे देवाधर्मशालिनः । नागतो हरिस्त्रेति व्यर्थाकाशसरस्वती ॥
इति वोक्तंमया भद्रं ब्रूत धर्मार्थमीश्वराः । सभायांपाक्षिकाःसन्तोघ्नन्तिस्मशतपूरुषम् ॥
यूयञ्च भावका ब्रूत विष्णुः सर्वत्र सन्ततम् । इति चेत् तत्कथंयाताःश्वेतद्वीपं वराय च
अंशांशिनोर्न भेदश्चेदात्मनश्चेति निश्चितम् । कलांहित्वानिषेवन्तेसन्तः पूर्णतमं कथम्
कोटिजन्मदुराराध्यमसाध्यमसतामपि । आशा बलवती पुंसां कृष्णं सेवितुमिच्छति ॥
किं क्षुद्राः किं महान्तश्च वाञ्छन्तिपरमंपदम् । लब्धुमिच्छतिचन्द्रञ्चबाहुभ्यांवामनोयथा
यो विष्णुर्विषयी विश्वे श्वेतद्वीपनिवासकृत् । यूयं ब्रह्मेशधर्माश्च दिक्पालाश्च महेश्वराः
ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्च सुरलोकाश्चराचराः । एवं कतिविधाः सन्ति प्रतिविश्वेषुसन्ततम्
विश्वानाञ्च सुराणाञ्च कः संख्यां कर्त्तुमीश्वरः । सर्वेषामीश्वरःकृष्णो भक्तानुग्रहविग्रहः
ऊर्द्ध्वञ्च सर्वब्रह्माण्डात् वैकुण्ठं सत्यमीप्सितम् ।
तस्मादूर्द्ध्वञ्च गोलोकः पञ्चाशत् कोटियोजनम् ॥ ६२ ॥
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे लक्ष्मीकान्तः सनातनः । सुनन्दनन्दकुमुदपार्षदादिभिरावृतः ॥ ६३ ॥

गोलोके द्विभुजः कृष्णो राधाकान्तः सनातनः । गोपाङ्गनादिभिर्युक्तो द्विभुजैर्गोपपार्षदैः
परिपूर्णतमं ब्रह्म स चात्मा सर्वदेहिनाम् । स्वेच्छामयश्च विहरेद्रासे वृन्दावने सदा ॥
तज्ज्योतिर्मण्डलाकारंसूर्य्यकोटिसमप्रभम् । ध्यायन्तेयोगिनःसन्तःसन्ततञ्च निरामयम्
नवीननीरदश्यामं द्विभुजं पीतवाससम् । कोटिकन्दर्पलावण्यलीलाधाम मनोहरम् ॥ ६
किशोरवयसं शश्वत्शान्तंसस्मितमीश्वरम् । ध्यायन्तेवैष्णवाःसन्तःसेवन्तेसत्यविग्रहम्
यूयञ्च वैष्णवा ब्रूहि कस्य वंशोद्भवो भवान् । शिष्यः कस्य मुनीन्द्रस्येत्येवमाश्च पुनःपुनः
यस्य वंशोद्भवोऽहञ्च यस्य शिष्यश्च बालकः । तस्येदं वचनं ज्ञानं देवसंघा निबोधत ॥
शीघ्रं जीवय गन्धर्वं देवेश्वर सुरेश्वर । व्यक्तोविचारे मूर्खः को वाग्युद्धे किंप्रयोजनम्
इत्युक्त्वा बालकस्तत्र विप्ररूपी जनार्दनः । विरराम सभामध्ये प्रजहास च शौनक ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे विष्णु-सुरसंघसंवादे विष्णुप्रशंसाप्रणयने सप्तदशोऽध्यायः ।

अष्टादशोऽध्यायः ।

गन्धर्वाय जीवदानम् ।

सौतिरुवाच ।

देवाः सार्द्धं ब्राह्मणेन मोहिता विष्णुमायया । प्रययुर्मालतीमूलं ब्रह्मेशानपुरोगमाः ॥१
ब्रह्मा कमण्डलुजलं ददौ गात्रे शवस्य च । सञ्चारं मनसस्तस्य चकार सुन्दरं वपुः ॥
ज्ञानदानं ददौ तस्मै ज्ञानानन्दः शिवः स्वयम् । धर्मज्ञानं स्वयं धर्मो जीवदानञ्च ब्राह्मण
वह्निदर्शनमात्रेण बभूव जठरानलः । कामदर्शनमात्रेण सर्वकामः सुनिश्चितम् ॥ ४ ॥
तस्य वायोरधिष्ठानाज्ज्ञातंप्राणस्वरूपिणः । निःश्वासस्य च सञ्चारः प्राणानाञ्च बभूव ह
सूर्य्याधिष्ठानमात्रेण दृष्टिशक्तिर्बभूव ह । वाक्यं वाणीदर्शनेन शोभा श्रीदर्शनेन च ॥

शवस्तथापि नोत्तस्थौ यथा शेते जडस्तथा। विशिष्टबोधं न प्राप चाधिष्ठातं विनात्मनः।
ब्रह्मणो वचनात् साध्वीतुष्टावपरमेश्वरम्। स्नात्वाशीघ्रंसरित्तोयेधृत्वाधौते च वाससी।

मालावत्युवाच।

वन्दे तं परमात्मानं सर्वकारणकारणम्। विना येन शवाः सर्वे प्राणिनो जगतीतले॥
निर्लिप्तं साक्षिरूपञ्च सर्वेषां सर्वकर्मसु। विद्यमानं न दृष्टञ्च सर्वैः सर्वत्र सर्वदा॥१०॥
येन सृष्टा च प्रकृतिः सर्वाधारा परात्परा। ब्रह्मविष्णुशिवादीनां प्रसूर्या त्रिगुणात्मिका।
जगत्स्रष्टा स्वयंब्रह्मा नियतोयस्य सेवया। पाता विष्णुश्चजगतां संहर्त्ताशङ्करःस्वयम्।
ध्यायन्ते यं सुराःसर्वे मुनयोमनवस्तथा। सिद्धाश्च योगिनः सन्तः सन्ततं प्रकृतेःपरम्।
साकारञ्च निराकारं परं स्वेच्छामयं विभुम्। वरं वरेण्यं वरदं वरार्हं वरकारणम्।१४।
तपःफलं तपोबीजं तपसाञ्च फलप्रदम्। स्वयं तपःस्वरूपञ्चसर्वरूपञ्च सर्वतः॥ १५॥
सर्वाधारं सर्वबीजं कर्म तत्कर्मणां फलम्। तेषाञ्च फलदातारं तद्बीजं क्षयकारणम्॥
स्वयं तेजःस्वरूपञ्च भक्तानुग्रहविग्रहम्। सेवाध्यानं न घटते भक्तानां विग्रहं विना १७
तत्तेजो मण्डलाकारं सूर्य्यकोटिसमप्रभम्। अतीवकमनीयञ्च रूपं तत्र मनोहरम्॥१८॥
नवीननीरदश्यामं शरत्पङ्कजलोचनम्। शरत्पार्वणचन्द्रास्यमीषद्धास्यसमन्वितम्।१६
कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाम मनोहरम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम्॥२०।
द्विभुजं मुरलीहस्तं पीतकौशेयवाससम्। किशोरवयसं शान्तं राधाकान्तमनन्तकम्।२१।
गोपाङ्गनापरिवृतं कुत्रचिन्निर्जने वने। कुत्रचिद्रासमध्यस्थं राधया परिषेवितम्॥२२॥
कुत्रचिद् गोपवेशञ्च वेष्टितं गोपबालकैः। शतशृङ्गाचलोत्कृष्टे रम्ये वृन्दावने वने॥२३
निकरं कामधेनूनां रक्षन्तं शिशुरूपिणम्। गोलोके विरजातीरे पारिजातवने वने॥२४॥
वेणुं क्वणन्तं मधुरं गोपीसम्मोहकारणम्। निरामये च वैकुण्ठे कुत्रचिच्च चतुर्भुजम्॥
लक्ष्मीकान्तं पार्षदैश्च सेवितञ्च चतुर्भुजैः। कुत्रचित् स्वांशरूपेण जगतां पालनाय च॥
श्वेतद्वीपे विष्णुरूपं पद्मया परिषेवितम्। कुत्रचित् स्वांशकलया ब्रह्माण्डे ब्रह्मरूपिणम्।
शिवस्वरूपं शिवदं स्वांशेन शिवरूपिणम्। स्वात्मनःषोड़शांशेन सर्वाधारं परात्परम्॥
स्वयं महद्विराट्रूपं विश्वौघं यस्य लोमसु। लीलया स्वांशकलया जगतां पालनाय च

नानावतारविभ्रन्तं वीजं तेषां सनातनम् । वसन्तं कुत्रचित् सन्तं योगिनां हृदये सताम्।
प्राणरूपं प्राणिनाञ्च परमात्मानमीश्वरम् । तञ्च स्तोतुमसक्ताहमबला निर्गुणं विभुम् ।३१
निर्लक्ष्यञ्च निरीहञ्च सारं वाङ्मनसोः परम् । यं स्तोतुमक्षमोऽनन्तः सहस्रवदनेन च ।
पञ्चवक्त्रश्चतुर्वक्त्रो गजवक्त्रःषडाननः । यं स्तोतुं न क्षमामाया मोहितायस्य मायया।
यंस्तोतुं न क्षमाश्रीश्च जड़ीभूता सरस्वती । वेदा न शक्तायं स्तोतुंके वा विद्वांश्चवेदवित्।

किं स्तौमि तमनीहञ्च शोकार्त्ता स्त्री परात्परम् ।
इत्युक्त्वा सा च गान्धर्वी विरराम रुरोद च ॥ ३५ ॥

कृपानिधिं प्रणनाम भयार्त्ता च पुनः पुनः । कृष्णश्च शक्तिभिः सार्द्धमधिष्ठानं चकार।

भर्त्तुरभ्यन्तरे तस्याः परमात्मा निराकृतिः ।
उत्थाय शीघ्रं वीणाञ्च धृत्वा स्नात्वा च वाससी ॥ ३७ ॥

प्रणनाम देवसङ्घं ब्राह्मणं पुरतः स्थितम् । नेदुर्दुन्दुभयो देवाःपुष्पवृष्टिञ्च चक्रिरे॥३८
दृष्ट्वा चोपरि दम्पत्योः प्रददुः परमाशिषम् । गन्धर्वो देवपुरतो ननर्त्त च जगौ क्षणम्।
जीवितंपुरतःप्राप देवानाञ्च वरेण च ! जगाम पत्न्या सार्द्धञ्च पिता माता च हर्षितः।
उपवर्हणगन्धर्वो गन्धर्वनगरं पुनः । मालावतीं रत्नकोटिं धनानि विविधानि च॥४१
प्रददौ ब्राह्मणेभ्यश्च भोजयामास तान् सती । वेदांश्च पाठयामास कारयामास मङ्गलम्।
महोत्सवञ्च विविधं हरेर्नामैकमङ्गलम् । जग्मुर्देवाश्च स्वस्थानं विप्ररूपी हरिःस्वयम्।
एतत्ते कथितं सर्वं स्तवराजञ्च शौनक । इदं स्तोत्रं पुण्यरूपं पूजाकाले तु यः पठेत्।
हरिभक्तिं हरेर्दास्यं लभतेवैष्णवो जनः । वरार्थी यः पठेद्भक्त्या चास्तिकः परमास्थया।

धर्मार्थकाममोक्षाणां निश्चितं लभते फलम् ।
विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् ॥ ४६ ॥

भार्य्यार्थी लभतेभार्य्यां पुत्रार्थी लभतेसुतम् । धर्मार्थी लभतेधर्मं यशोऽर्थी लभतेयशः।

भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं प्रजाभ्रष्टः प्रजां लभेत् ।
रोगार्तो मुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥ ४८ ॥

भयान्मुच्येत भीतस्तु धनं नष्टधनो लभेत्। दस्युग्रस्तो महारण्ये हिंस्रजन्तुसमन्वितः॥
दावाग्निदग्धो मुच्येत निमग्नश्च जलार्णवे॥ ४६॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे गन्धर्वजीवदाने महापुरुषस्तोत्रप्रणयनं नाम अष्टादशोऽध्यायः।

ऊनविंशोऽध्यायः।

ब्रह्माण्डपावनं श्रीकृष्णकवचम्।

सौतिरुवाच।

मालावती धनं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यः प्रहर्षिता। चकारविविधंवेशंस्वात्मनःस्वामिनः कृते॥
भर्त्तुश्चकार शुश्रूषां पूजाञ्च समयोचिताम्। तेन सार्द्धं सुरसिका रेमे सा सुचिरं मुदा॥
महापुरुषस्तोत्रञ्च पूजाञ्च कवचं मनुम्। विस्मृतं बोधयामास स्वयं रहसि सुव्रता॥
पुरा दत्तं वशिष्ठेन स्तोत्रपूजादिकं हरेः। गन्धर्वाय च मालत्यै मन्त्रमेकञ्च पुष्करे॥ ४॥
विस्मृतं स्तोत्रकवचं वशिष्ठश्च कृपानिधिः। गन्धर्वराजं रहसि बोधयामास शूलिनः॥
एवञ्चकार राज्यञ्च कुवेरभवनोपमे। आश्रमे परमानन्दो गन्धर्वो वान्धवैः सह॥ ६॥
यथातथासताभिश्च स्त्रीभिरन्याभिरेवच। आगत्य ताभिः स्वस्वामी संप्राप्तःपरया मुदा॥

शौनक उवाच।

किं स्तोत्रं कवचं विष्णोर्मन्त्रपूजाविधिः पुरा।
दत्तो वशिष्ठैस्ताभ्याञ्चतं भवान् वक्तुमर्हति॥ ८॥

द्वादशाक्षरमन्त्रञ्च शूलिनः कवचादिकम्। दत्तं गन्धर्वराजस्य वशिष्ठेनर्षिणापुरा॥ ९॥
तदपि ब्रूहि हे सौते श्रोतुं कौतूहलं मम। शङ्करस्तोत्रकवचं मन्त्रं दुर्गतिनाशनम्॥१०॥

सौतिरुवाच ।

तुष्टाव येन स्तोत्रेण मालती परमेश्वरम् । तदेव स्तोत्रं दत्तञ्च मन्त्रञ्च कवचं शृणु॥१
ओं नमो भगवते रासमण्डलेशाय स्वाहा । इदं मन्त्रं कल्पतरुं प्रददौ षोड़शाक्षरम्॥
पुरा दत्तं कुमाराय ब्रह्मणा पुष्करे हरेः । पुरा दत्तञ्च कृष्णेन गोलोके शङ्कराय च॥
ध्यानञ्च विष्णोर्वेदोक्तं शाश्वतं सर्वदुर्लभम् । मूलेन सर्वं देवञ्च नैवेद्यादिकमुत्तमम्।
अतीवगुप्तकवचं पितुर्वक्त्रान्मया श्रुतम् । पित्रे दत्तं पुरा विप्र गङ्गायां शूलिना ध्रुवम्।
शूलिने ब्रह्मणे दत्तं गोलोके रासमण्डले । धर्माय गोपीकान्तेन कृपया परमाद्भुतम्॥

ब्रह्मोवाच ।

राधाकान्त महाभाग कवचं यत् प्रकाशितम् । ब्रह्माण्डपावनं नाम कृपया कथय प्रभो।
मां महेशञ्च धर्मञ्च भक्तञ्च भक्तवत्सल । त्वत्प्रसादेनपुत्रेभ्यो दास्यामि भक्तिसंयुतः

श्रीकृष्ण उवाच ।

शृणु वक्ष्यामि ब्रह्मेश धर्मेदं कवचं परम् । अहं दास्यामि युष्मभ्यं गोपनीयं सुदुर्लभम्।
यस्मै कस्मै न दातव्यं प्राणतुल्यं ममैव हि । यत्तेजो मम देहेऽस्ति तत्तेजः कवचेऽपि च।
कुरु सृष्टिमिमंधृत्वा धाता त्रिजगतां भव ।संहर्त्ता भव हे शम्भो मम तुल्योभवेभव।
हे धर्म! त्वमिमंधृत्वा भव साक्षी च कर्मणाम् । तपसां फलदाताच यूयं भवतमद्वरात्।
ब्रह्माण्डपावनस्यास्य कवचस्यहरिःस्वयम् । ऋषिश्छन्दश्चगायत्री देवोऽहंजगदीश्वरः
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः । त्रिलक्षवारपठनात् सिद्धिदं कवचं विधे।
योभवेत् सिद्धकवचो मम तुल्यो भवेत्तु सः । तेजसा सिद्धियोगेन ज्ञानेन विक्रमेण च
प्रणवो मे शिरः पातु नमो रासेश्वराय च । भालं पायान्नेत्रयुग्मं नमो राधेश्वराय च।
कृष्णं पायात् श्रोत्रयुग्मं हे हरे घ्राणमेव च । जिह्विकां वह्निजायातु कृष्णायेतिचसर्वदा
श्रीकृष्णायस्वाहेतिच कण्ठंपातुषड़क्षरः । ह्रीं कृष्णायनमो वक्त्रंक्लीं पूर्वश्चभुजद्वयम्।
नमो गोपाङ्गनेशाय स्कन्धावष्टाक्षरोऽवतु । दन्तपंक्तिमोष्ठयुग्मं नमो गोपीश्वराय च।
ओं नमो भगवते रासमण्डलेशाय स्वाहा। स्वयं वक्षःस्थलं पातु मन्त्रोऽयं षोड़शाक्षरः
ऐं कृष्णायस्वाहेतिं च कर्णयुग्मंसदाऽवतु । ओं विष्णवेस्वाहेतिच कङ्कालंसर्वतोऽवतु।

ओं हरये नम इति पृष्ठं पादं सदाऽवतु। ओं गोवर्द्धनधारिणे स्वाहा सर्वशरीरकम् ॥
प्राच्यां मां पातु श्रीकृष्ण आग्नेय्यां पातु माधवः।
दक्षिणे पातु गोपीशो नैऋत्यां नन्दनन्दनः ॥ ३३ ॥
वारुण्यांपातुगोविन्दो वायव्यांराधिकेश्वरः। उत्तरेपातुरासेश ऐशान्यामच्युतःस्वयम् ॥
सन्ततं सर्वतः पातु परो नारायणः स्वयम्। इति ते कथितं ब्रह्मन् कवचं परमाद्भुतम् ॥
मम जीवनतुल्यञ्च युष्मभ्यं दत्तमेव च। अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ॥
कलां नार्हन्ति तान्येव कवचस्यैव धारणात् ॥ ३६ ॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालङ्कारचन्दनैः। स्नात्वातञ्च नमस्कृत्यकवचं धारयेत् सुधीः ॥
कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः। यदि स्यात् सिद्धकवचो विष्णुरेव भवेद्द्विज ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे महापुरुष-ब्रह्माण्डपावनं नाम श्रीकृष्णकवचं समाप्तम्।

सौतिरुवाच।

शिवस्य कवचं स्तोत्रं श्रूयतामिति शौनक। वशिष्ठेन च यद्दत्तं गन्धर्वाय च यो मनुः।
ओं नमो भगवते शिवाय स्वाहेति च मनुः। दत्तो वशिष्ठेन पुरा पुष्करे कृपया विभो ॥
अयं मन्त्रो रावणाय प्रदत्तो ब्रह्मणा पुरा। स्वयं शम्भुश्च बाणाय तथा दुर्वाससेपुरा ॥
मूलेन सर्वं देयञ्च नैवेद्यादिकमुत्तमम्। ध्यायेन्नित्यादिकं ध्यानं वेदोक्तं सर्वसम्मतम् ॥

ओं नमो महादेवाय।

वागेश्वर उवाच।

महेश्वर महाभाग कवचं यत् प्रकाशितम्। संसारपावनं नाम कृपया कथय प्रभो ॥४३॥

महेश्वर उवाच।

शृणु वक्ष्यामि हे वत्स! कवचं परमाद्भुतम्। अहंतुभ्यं प्रदास्यामि गोपनीयं सुदुर्लभम् ॥
पुरा दुर्वाससे दत्तं त्रैलोक्यविजयाय च। ममैवेदञ्च कवचं भक्त्या यो धारयेत् सुधीः ॥
जेतुं शक्नोति त्रैलोक्यं भगवन्नवलीलया ॥ ४६ ॥

संसारपावनस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः । ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवोऽहञ्च महेश्वरः ॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥ ४७ ॥
पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धिदं कवचं भवेत् ।
यो भवेत् सिद्धकवचो मम तुल्यो भवेद्भुवि । तेजसा सिद्धियोगेनतपसाविक्रमेणच ॥
शम्भुर्मे मस्तकं पातु मुखं पातु महेश्वरः । दन्तपंक्तिं नीलकण्ठोऽप्यधरोष्ठं हरः स्वयम् ॥
कण्ठं पातु चन्द्रचूड़ः स्कन्धौ वृषभवाहनः । वक्षःस्थलं नीलकण्ठः पातु पृष्ठं दिगम्बरः ॥
सर्वाङ्गं पातु विश्वेशः सर्वदिक्षु च सर्वदा । स्वप्ने जागरणे चैव स्थाणुर्मे पातु सन्ततम् ॥
इति ते कथितं बाण कवचं परमाद्भुतम् । यस्मै कस्मै न दातव्यं गोपनीयं प्रयत्नतः ॥
यत् फलं सर्वतीर्थानां स्नानेन लभते नरः । तत् फलं लभते नूनं कवचस्यैवधारणात् ॥
इदं कवचमज्ञात्वा भजेन्मां यः सुमन्दधीः । शतलक्षप्रजप्तेऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते शङ्करकवचं समाप्तम् ।

सौतिरुवाच ।

इदञ्च कवचं प्रोक्तं स्तोत्रञ्च श्रृणु शौनक । मन्त्रराजः कल्पतरुर्वशिष्ठो दत्तवान् पुरा ॥

ओं नमः शिवाय ।

बाणेश्वर उवाच ।

वन्दे सुराणां सारञ्च सुरेशं नीललोहितम् । योगीश्वरं योगबीजं योगिनाञ्च गुरोर्गुरुम् ॥
ज्ञानानन्दं ज्ञानरूपं ज्ञानबीजं सनातनम् । तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम् ॥ ५७ ॥
तपोरूपं तपोबीजं तपोधनधनं वरम् । वरं वरेण्यं वरदमीड्यं सिद्धगणैर्वरैः ॥ ५८ ॥
कारणं भक्तिमुक्तीनां नरकार्णवतारणम् । आशुतोषं प्रसन्नास्यं करुणामयसागरम् ॥ ५९ ॥
हिमचन्दनकुन्देन्दुकुमुदाम्भोजसन्निभम् । ब्रह्मज्योतिःस्वरूपञ्च भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥ ६० ॥
विषयाणां विभेदेन बिभ्रन्तं बहुरूपकम् । जलरूपमग्निरूपमाकाशरूपमीश्वरम् ॥ ६१ ॥
वायुरूपं चन्द्ररूपं सूर्य्यरूपं महत्प्रभुम् । आत्मनः स्वपदं दातुं समर्थमवलीलया ॥ ६२ ॥
भक्तजीवनमीशञ्च भक्तानुग्रहकातरम् । वेदा न शक्ता यं स्तोतुं किमहं स्तौमि तं प्रभुम् ॥

अपरिच्छिन्नमीशानमहो वाङ्मनसोः परम् ।
व्याघ्रचर्माम्बरधरं वृषभस्थं दिगम्बरम् । त्रिशूलपट्टिशधरं सस्मितं चन्द्रशेखरम् ॥ ६४
इत्युक्त्वा स्तवराजेन नित्यं वाणः सुसंयतः । प्रणमेत्शङ्करंभक्त्यादुर्वासाश्चमुनीश्वरः ॥
इदं दत्तं वशिष्ठेन गन्धर्वाय पुरा मुने । कथितश्च महास्तोत्रं शूलिनः परमाद्भुतम् ॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं पठेद्भक्त्या च यो नरः । स्नानस्यसर्वतीर्थानां फलमाप्नोतिनिश्चितम् ।
अपुत्रो लभते पुत्रं वर्षमेकं शृणोति यः ॥ ६६ ॥
संयतश्च हविष्याशी प्रणम्य शङ्करं गुरुम् ।
गलत्कुष्ठी महाशूली वर्षमेकं शृणोति यः । अवश्यंमुच्यतेरोगात्व्यासवाक्यमितिश्रुतम् ।
कारागारेऽपिबद्धोयोनैवप्राप्नोतिनिर्वृतिम् । स्तोत्रंश्रुत्वामासमेकंमुच्यतेबन्धनाद्ध्रुवम् ।
भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं भक्त्या मासं शृणोतियः । मासंश्रुत्वासंयतश्चलभेद्भ्रष्टधनोधनम् ।
यक्ष्मग्रस्तो वर्षमेकमास्तिको यः शृणोतिचेत् । निश्चितंमुच्यतेरोगात्शङ्करस्यप्रसादतः ।
यःशृणोति सदाभक्त्यास्तवराजमिमं द्विज । तस्यासाध्यंत्रिभुवनेनास्तिकिञ्चिच्चशौनक ।
कदाचिद्बन्धुविच्छेदो न भवेत्तस्य भारते । अचलं परमैश्वर्य्यं लभते नात्र संशयः ॥
सुसंयतोऽतिभक्त्या च मासमेकंशृणोतियः । अभार्य्योलभतेभार्य्यां सुविनीतांसतींवराम् ।
महामूर्खश्च दुर्मेधो मासमेकं शृणोति यः । बुद्धिं विद्याञ्च लभते गुरूपदेशमात्रतः ।७७।
कर्मदुःखी दरिद्रश्च मासं भक्त्या शृणोति यः । ध्रुवं वित्तं भवेत्तस्य शङ्करस्य प्रसादतः ।
इह लोके सुखं भुङ्क्त्वा कृत्वा कीर्त्तिसुदुर्लभाम् । नानाप्रकारधर्मञ्चयात्यन्तेशङ्करालयम् ।
पार्षदप्रवरो भूत्वा सेवते तत्र शङ्करम् । यः शृणोति त्रिसन्ध्यञ्चनित्यं स्तोत्रमनुत्तमम् ।

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौति-शौनक-संवादे स्तवराजोऽय-
मूनविंशोऽध्यायः ।

विंशोऽध्यायः ।

उपबर्हणजन्मकथनम् ।

सौतिरुवाच ।

मुदा मालावतीसार्द्धं गन्धर्वश्चोपबर्हणः । रेमे कालविशेषञ्च ताभिश्च निर्जने वने ॥ १ ॥
गन्धर्वराजो मुमुदे पुत्रदारादिभिः सह । नानाविधं कृत्यवरं महत् पुण्यं चकार ह ।२।
राजत्वं बुभुजे राजा कुवेरभवनोपमे । रेमे सुशीलया सार्द्धं स्थिरयौवनयुक्तया ॥ ३ ॥
गन्धर्वराजः काले च गङ्गातीरे मनोहरे । पत्न्या सार्द्धमसूंस्त्यक्त्वा वैकुण्ठञ्च ययौमुदा।
शैवः शिवप्रसादेन पुत्रस्य विष्णुसेवया । बभूव दासो वैकुण्ठे विष्णोःश्यामचतुर्भुजः ॥
कृत्वा पित्रोश्च सत्कारं गन्धर्वश्चोपबर्हणः । ब्राह्मणेभ्यो ददौ विप्रधनानि विविधानि च ।
काले स्वयं ब्रह्मशापात् प्राणांस्त्यक्त्वा विचक्षणः । स यज्ञे वृषलीगर्भे ब्रह्मवीजेन शौनक ।
मालावती वह्निकुण्डे पुष्करे भारते भुवि । कृत्वातुवाञ्छितंकामंप्राणांस्तत्याजसा सती।
सृञ्जयस्य तु पत्न्याश्च मनुवंशोद्भवस्य च । जज्ञे नृपस्य साध्वीसापुण्याजातिस्मरावरा ।
उपबर्हणगन्धर्वः पतिर्मे भवितेति च । इतिकामा कामुकी सा सुन्दरी सुन्दरीवरा ॥

शौनक उवाच ।

ब्रह्मवीर्य्यात् शूद्रपत्न्यां गन्धर्वश्चोपबर्हणः ।जातः केन प्रकारेण तद्भवान् वक्तुमर्हति ।११।

सौतिरुवाच ।

कान्यकुब्जे च देशे च द्रुमिलो नाम राजकः । कलावती तस्यपत्नी बन्ध्याचापिपतिव्रता ।
स्वामिदोषेण सा वन्ध्या काले च भर्त्तुराज्ञया । उपतस्थेवनेघोरे नारदं काश्यपं मुनिम् ।
ध्यायमानञ्च श्रीकृष्णं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । तस्थौ सुवेशं कृत्वासाध्यानान्तञ्च मुनेःपुरः ।
ग्रीष्मप्रध्याह्नमार्त्तण्डप्रभातुल्येन तेजसा ! तपन्तं दूरतोऽप्येनं समीपं गन्तुमक्षमा ॥
ध्यानान्ते च मुनिश्रेष्ठः परः कृष्णपरायणः । ददर्श पुरतो दूरे सुन्दरीं स्थिरयौवनाम् ॥
चारुचम्पकवर्णाभां शरत्पङ्कजलोचनाम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यां रत्नभूषणभूषिताम् ॥

बृहन्नितम्बभारार्त्तां पीनश्रोणिपयोधराम् । शोभितांपीतवस्त्रेणसस्मितां रक्तलोचनाम् ।
मोहितां मुनिरूपेण कामबाणप्रपीड़िताम् । दर्शयन्तीं स्तनश्रोणीं मैथुनासक्तचेतसा ॥
सिन्दूरबिन्दुभूषाढ्यांसुचारुकज्वलोज्ज्वलाम् । पदालक्तकशोभाढ्यांरूपेणैवयथोर्वशीम् ।
मुनिः पप्रच्छ दृष्ट्वा तां का त्वं कामिनि निर्जने । कस्य पत्नी कथंवात्रसत्यंब्रूहिचपुंश्चलि ।
मुनेश्च वचनं श्रुत्वा कम्पिता च कलावती । उवाच विनयेनैव कृत्वा च श्रीहरिं हृदि ॥
कलावत्युवाच ।
गोपिकाहं द्विजश्रेष्ठ द्रुमिलस्य च कामिनी । पुत्रार्थिनी चागताहं त्वन्मूलं भर्त्तुराज्ञया ।
वीर्य्याधानं कुरु मयि स्त्री नोपेक्ष्या ह्युपस्थिता । तेजीयसां न दोषाय वह्नेःसर्वभुजोयथा ।
वृषलीवचनं श्रुत्वा चुकोप मुनिसत्तमः । उवाच नीतं सत्यञ्च कोपप्रस्फुरिताधरः ॥
काश्यप उवाच ।
यः स्वलक्ष्मीञ्च भोगार्हां पराय दातुमिच्छति । तं सा त्यजति मूढ़ञ्चवेदवदइतिध्रुवम् ।
न त्वं द्रुमिलभोगार्हा पुनरेव भविष्यसि । विरक्तेन स्वयंत्यक्ता न गृह्णाति च त्वां पुनः ।
यः शूद्रपत्नीं गृह्णाति ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः । स चण्डालो भवेत् सत्यंनकर्मार्हो द्विजातिषु ।
पितृश्राद्धे च यज्ञे च शिलास्पर्शे सुरार्चने । नाधिकारश्च तस्यैवमित्याह कमलोद्भवः ॥२६॥
कुम्भीपाकं स्वयं याति पातयित्वा च पूरुषान् ।
मातामहान् स्वात्मनश्च दश पूर्वान् दशापरान् ॥ ३० ॥
तत्तर्पणं मूत्रमेव पिण्डं सद्यः पुरीषकम् । शालग्रामस्य तत्स्पर्शे चोपवासः त्रिरात्रकम् ॥
तदिष्टदेवो गृह्णाति न नैवेद्यं न तज्जलम् । सन्न्यासिनां ब्राह्मणानां तदन्नञ्च पुरीषवत् ॥
कुम्भीपाके पच्यते स शक्रान्तं यावदेव हि । एकविंशतिपुरुषैः सार्द्धं सत्यञ्च पुंश्चलि ॥
पत्रोच्छिष्टञ्च यो भुङ्क्ते शूद्राणां ब्राह्मणाधमः ।
तत्तुल्योऽधरभोजी चैत्येत्याङ्गिरसभाषितम् ॥ ३४ ॥
शूद्रो वा यदि गृह्णाति ब्राह्मणींज्ञानदुर्बलः । स पच्यते कालसूत्रे यावदिन्द्राश्चतुर्दशाः ॥
चतुर्दशेन्द्रावच्छिन्नं कालञ्च कालसूत्रके । ब्राह्मणी पच्यते तत्र भक्षिता क्रिमिभिः ध्रुवम् ॥
ततश्चण्डालयोनौ च लब्धा जन्म च ब्राह्मणी । शूद्रश्च कुष्ठी भवति ज्ञातिभिः परिवर्जितः ॥

इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठो विरराम च शौनक। वृषली तत् पुरस्तस्थौ शुष्ककण्ठोष्ठतालुका॥
एतस्मिन्नन्तरे तेन पथा याति च मेनका। तस्या उरुं स्तनं दृष्ट्वा मुनेर्वीर्यं पपात ह॥
ऋतुस्नाता च वृषली पीत्वा तत्र क्षणं मुदा। मुनिं प्रणम्य प्रहृष्टा प्रययौ भर्त्तुरन्तिकम्॥
गत्वा प्रणम्य द्रुमिलं कान्ता कान्तं मनोहरम्। सर्वं निवेदयामास वृत्तान्तं गर्भहेतुकम्।
कलावतीवचः श्रुत्वा प्रहृष्टवदनेक्षणः। उवाच कान्तां मधुरं परिणामसुखावहम् ॥४२॥

द्रुमिल उवाच।

विप्रस्य वीर्य्यं तद्गर्भे वैष्णवस्य महात्मनः। वैष्णवो भविता बालः त्वञ्च भाग्यवती सती॥
यद्गर्भे वैष्णवो जातो यस्य वीर्य्येण वा सति!।
तयोर्याति च वैकुण्ठं पुरुषाणां शतं शतम्॥
तौ च विष्णुविमानेन सद्रत्ननिर्मितेन च। यातौ वैकुण्ठनगरं जन्ममृत्युजराहरम् ॥४५॥
कस्यचित् ब्राह्मणस्यैव गेहं गच्छ शुभानने। पश्चान्ममान्तिकं भद्रे यास्यसीति हरेः पुरम्॥
इत्युक्त्वा गोपराजश्च स्नात्वा कृत्वा तु तर्पणम्।
संपूज्याभीष्टदेवञ्च ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ॥ ४७॥
अश्वानाञ्च चतुर्लक्षं गजानां लक्षमेव च। शतं मत्तगजेन्द्राणां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा॥४८॥
उच्चैःश्रवःपञ्चलक्षं रथानाञ्च सहस्रकम्। शकटानां त्रिलक्षञ्च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा॥
गवां द्वादशलक्षञ्च महिषाणां त्रिलक्षकम्। त्रिलक्षं राजहंसानां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा॥
पारावतानां लक्षञ्च शुकानाञ्च शतं मुने। लक्षञ्च दासदासीनां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा।
ग्रामाणाञ्च सहस्रञ्च नगराणां शतं शतम्। धान्यतण्डुलशैलञ्च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा॥
शतकोटिं सुवर्णानां रत्नानाञ्च सहस्रकम्। मुद्राणां कोटिकलसं ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा॥
ददौ तैजसपात्राणां भूषणानामसंख्यकम्। तां स्त्रियं रत्नभूषाढ्यां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा॥
राज्यं दत्त्वा महाराजोऽप्यन्तर्बाह्ये हरिं स्मरन्।
जगाम वदरीं गोपो मनोगामी मुदान्वितः॥ ५५॥
तत्र मासं तपः कृत्वा गङ्गातीरे मनोहरे। प्राणांस्तत्याज योगेन सद्यो दृष्टो महर्षिभिः॥
स च विष्णुविमानेन रत्नेन्द्रनिर्मितेन च। संयुक्तो विष्णुदूतैश्च वैकुण्ठञ्च जगाम ह॥५७॥

तत्र प्राय हरेर्दास्यं हरिदासो वभूव सः । वृत्तान्तश्च कलावत्याः श्रूयतामिति शौनक ॥
गते कलावती नाथे उच्चैश्च प्ररुरोद ह । वह्नौ प्राणांस्त्यक्तुकामा ब्राह्मणेनैव रक्षिता ॥
ब्राह्मणोमातरित्युक्त्वा तां गृहीत्वा मुदान्वितः । जगाम रत्नपूर्णञ्च स्वगेहञ्च क्षणेन च ॥
सा विप्रगेहे साध्वी च सुषाव तनयं वरम् । तप्तकाञ्चनवर्णाभं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥६१॥
तत्रस्था योषितः सर्वा ददृशुर्बालकं शुभम् । ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डजितं तं ब्रह्मतेजसा ॥
कामदेवाधिकं रूपे चन्द्राधिकशुभाननम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यं शरत्पङ्कजलोचनम् ॥६३
हस्तापादादिललितं सुकपोलं मनोहरम् । पद्मचक्राङ्कितं पादपद्मं वाऽतुलमुज्ज्वलम् ॥
करयुग्मं वाऽतुलञ्च रुदन्तञ्च स्तनार्थिनम् । योषितो वालकं दृष्ट्वा प्रययुः स्वाश्रमं मुदा ।
पुत्रदारयुतो विप्रः प्रहृष्टश्च ननर्त्त ह । स वालो ववृधे तत्र शुक्लपक्षे यथा शशी ॥६६॥
पुपोष ब्राह्मणन्ताञ्च सपुत्राञ्च यथा सुताम् ॥ ६७ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे उपवर्हणजन्मकथनं नाम विंशोऽध्यायः ।

एकविंशोऽध्यायः

उपवर्हणजन्मान्तरकथनम् ।

सौतिरुवाच ।

वभूव काले वालश्च क्रमेण पञ्चहायनः । जातिस्मरो ज्ञानयुक्तः पूर्वमन्त्रः स्मृतः सदा ॥१
गीयते सततं कृष्णयशोनामगुणादिकम् । क्षणं रोदिति नृत्येन पुलकाञ्चितविग्रहः ॥२॥
कृष्णसम्बन्धिनीं गाथां शृणोति यत्र तत्र वै ।
तत्सम्वन्धि पुराणञ्च तत्र तिष्ठति वालकः ॥ ३ ॥
धूलिधूसरसर्वाङ्गो धूलिनैवेद्यमीप्सितम् । धूलिषु प्रतिमां कृत्वा धूलिना पूजयेद्धरिम् ॥४॥

पुत्रमाह्वयते माता प्रातराशाय चेन्मुने । हरिं संपूजयामीति मातरं संवदेत् पुनः ॥ ५ ॥

शौनक उवाच ।

किन्नाम बालकस्यास्य जन्मन्यत्र बभूव ह ।
व्युत्पत्त्या संज्ञया वापि तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥ ६ ॥

सौतिरुवाच ।

अनावृष्ट्यवशेषे च काले बालो बभूव ह । नारं ददौ जन्मकाले तेनायं नारदाभिधः ॥७॥
ददाति नारं ज्ञानञ्च बालकेभ्यश्च बालकः । जातिस्मरो महाज्ञानी तेनायं नारदाभिधः ॥
वीर्येण नारदस्यैव बभूव बालको मुने । मुनीन्द्रस्यवरेणैव तेनायं नारदाभिधः ॥९॥

शौनक उवाच ।

शिशुनाम च विज्ञातं व्युत्पत्त्या च यथोचितम् ।
मुनीन्द्रस्य कथं नाम नारदश्चेति मङ्गलम् ॥ १० ॥

सौतिरुवाच ।

अपुत्रकाय विप्राय धर्मपुत्रो नरो मुनिः । ददौ पुत्रं कश्यपाय तेनायं नारदाभिधः ॥११॥

शौनक उवाच ।

अधुना नामव्युत्पत्तिः श्रुता सौते शिशोरपि । शूद्रयोनौ ब्रह्मपुत्रे कथं स नारदाभिधः ॥

सौतिरुवाच ।

कल्पान्तरे ब्रह्मकण्ठात् बभूवुर्बहवो नराः । नरान् ददौ तत्कण्ठश्च तेन तन्नरदं स्मृतम् ॥
ततो बभूव बालश्च नरदात् कण्ठदेशतः । अतो ब्रह्मा नाम चक्रे नारदश्चेति मङ्गलम् ॥
साम्प्रतं शिशुवृत्तान्तं सावधानं निशामय । उपालम्भरहस्येन विशिष्टं किं प्रयोजनम् ।
ववृधे गोपिकाबालो विप्रगेहे दिने दिने । सपुत्रां पालितां चक्रे ब्राह्मणः स्वसुतां यथा ।
एतस्मिन्नन्तरे विप्रा आययुर्विप्रमन्दिरम् । शिशवः पञ्चवर्षीया महातेजस्विनो यथा ॥
प्रच्छन्नं हृतवन्तश्च ग्रीष्ममध्याह्नभास्करम् । मधुपर्कादिकं दत्त्वा तान्ननाम गृही द्विज ॥
फलमूलादिकं काले चत्वारो मुनिपुङ्गवाः । विप्रदत्तं बुभुजिरे तत्शेषं बुभुजे शिशुः ॥
चतुर्थको मुनिस्तस्मै कृष्णमन्त्रं ददौ मुदा । तेषां दासः स बभूव द्विजस्य मातुराज्ञया ॥

एकदाशिशुमाता च गच्छन्तीनिशि वर्त्मनि । ममार सर्पदष्टा च तत्क्षणं स्मरतीहरिम् ॥
सद्यो जगाम वैकुण्ठं विष्णुयानेन सा सती । विष्णुपार्षदसंयुक्ता सद्रत्ननिर्मितेन च ॥
प्रातर्बालो द्विजैःसार्द्धं प्रययौ विप्रमन्दिरात् । तत्त्वज्ञानं ददुस्तस्मैब्राह्मणाश्च कृपालवः ॥
ब्रह्मपुत्राःशिशुंत्यक्त्वा स्वस्थानं प्रययुः किल । महाज्ञानी शिशुस्तस्थौगङ्गातीरे मनोहरे ॥
तत्र स्नात्वा विप्रदत्तं विष्णुमन्त्रं जजाप सः । क्षुत्पिपासारोगशोकहरं वेदेषुदुर्लभम् ॥
महारण्ये च घोरे च अश्वत्थमूलसन्निधौ । कृत्वायोगासनं तस्थौ सुचिरं तत्रबालकः ॥

शौनक उवाच ।

कं मन्त्रं बालकः प्राप कुमारेण च धीमता । दत्तं परं श्रीहरेश्च तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥

सौति उवाच ।

कृष्णेन दत्तो गोलोके कृपया ब्रह्मणे पुरा । द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो वेदेषु च सुदुर्लभः ॥
तश्चब्रह्मा ददौभक्त्या कुमाराय च धीमते । कुमारेण स दत्तश्च मन्त्रश्च शिशवे द्विज ॥
ओं श्री नमोभगवतेरासमण्डलेश्वराय । श्रीकृष्णाय स्वाहेति च मन्त्रोऽयंकल्पपादपः ॥
महापुरुषस्तोत्रञ्च पूर्वोक्तं कवचञ्चयत् । अस्यौपयोगिकं ध्यानं सामवेदोक्तमेव च ।३१।
तेजोमण्डलरूपे च सूर्य्यकोटिसमप्रभे । योगिभिर्वाञ्छितं ध्यानैर्योगैःसिद्धगणैःसुरैः ॥
ध्यायन्ते वैष्णवारूपं तदभ्यन्तरसन्निधौ । अतीवकमनीया निर्वचनीयं मनोहरम् ॥
नवीनजलदश्यामं शरत्पङ्कजलोचनम् । शरत्-पार्वणचन्द्रास्यं पक्वबिम्बाधिकाधरम् ॥

मुक्तापङ्क्तिविनिन्दैकदन्तपङ्क्तिमनोहरम् ।
सस्मितं मुरलीन्यस्तहस्तावलम्बनेन च ॥ ३५ ॥

कोटि-कन्दर्पलावण्यं लीलाधाम मनोहरम् । चन्द्रलक्षप्रभाजुष्टं पुष्टश्रीयुक्तविग्रहम् ॥
त्रिभङ्गभङ्गिमायुक्तं द्विभुजं पीतवाससम् । रत्नकेयूरवलयरत्ननूपुरभूषितम् ॥ ३७ ॥
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् । मयूरपुच्छचूडञ्च रत्नमालाविभूषितम् ॥३८॥
शोभितं जानुपर्य्यन्तं मालतीवनमालया । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं भक्तानुहंकारकम् ॥ ३९॥
मणिनाकौस्तुभेन्द्रेणवक्षस्थलसमुज्ज्वलम् । वीक्षितं गोपिकाभिश्चशश्वद्वङ्किमलोचनैः ॥
स्थिरयौवनयुक्ताभिर्वेष्टिताभिश्च सन्ततम् । भूषणैर्भूषिताभिश्च राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥

ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च पूजितं वन्दितं स्तुतम् ।
किशोरं राधिकाकान्तं शान्तरूपं परात्परम् ॥ ४२ ॥
निर्लिप्तं साक्षिरूपञ्च निर्गुणं प्रकृतेः परम् ।
ध्यायेत्सर्वेश्वरं तञ्च परमात्मानमीश्वरम् ॥ ४३ ॥

इदं ते कथितं ध्यानं स्तोत्रञ्च कवचं मुने । मन्त्रौपयोगिकं सत्यं मन्त्रञ्च कल्पपादपः ॥
साम्प्रतंवालकस्तत्रौध्यानस्थस्तत्रशौनक ! । दिव्यं वर्षसहस्रञ्च निराहारः कृशोदरः ॥
शक्तिमान् परिपुष्टश्च सिद्धमन्त्रप्रभावतः । ददर्शवालको ध्याने दिव्यंलोकञ्च वालकम् ॥
रत्नसिंहासनस्थञ्च रत्नभूषणभूषितम् । किशोरवयसं श्यामं गोपवेशञ्च सस्मितम् ॥
गोपैर्गोपाङ्गनाभिश्च वेष्टितं पीतवाससम् । द्विभुजं मुरलीहस्तं चन्दनेन विचर्चितम् ॥
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च स्तूयमानं परात्परम् । दृष्ट्वा च सुचिरंशान्तंशान्तश्चगोपिकासुतः ॥
विरराम च शोकार्त्तो यदातद्द्रष्टुमक्षमः । रूपोदाश्वत्थमूले च न दृष्ट्वा वालकं शिशुः ॥
वभूवाकाशवाणीति रुदन्तं वालकं प्रति । सत्यं प्रवोधयुक्तञ्च हितमेव मिताक्षरम् ॥
सकृद् यद् दर्शितंरूपं तदेव नाधुना पुनः । अविपक्ककषायाणां दुर्दर्शञ्च कुयोगिनाम् ॥
एतस्मिन् विग्रहेऽतीते संप्राप्ते दिव्यविग्रहे । पुनर्द्रक्ष्यसिगोविन्दं जन्ममृत्युजराहरम् ॥
इतिश्रुत्वा वालकश्च विरराम मुदान्वितः । कालेतत्याज तीर्थेच तनुंकृष्णंहृदिस्मरन् ॥
नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे पुष्पवृष्टिर्वभूवह । वभूव शापमुक्तश्च नारदश्च महामुनिः ॥ ५५ ॥
तनुंत्यक्त्वा स जीवश्च विलीनोब्रह्मविग्रहे । वभूव प्राक्तनान्नित्यः कालभेदे तिरोहितः ॥

आविर्भावस्तिरोभावः स्वेच्छया नित्यदेहिनाम् ।
जन्ममृत्युजराव्याधिर्भक्तानां नास्ति शौनक ! ॥ ५७ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौति-शौनक-संवादे नारदशापविमोचनं नाम एकविंशोऽध्यायः ।

द्वाविंशतितमोऽध्यायः ।

ब्रह्मपुत्रन्युत्पत्तिकथनम् ।

सौतिरुवाच ।

कतिकल्पान्तरेऽतीतेस्त्रष्टुःसृष्टिविधौपुनः । मरीचिमिश्रैर्मुनिभिःसार्द्धं कण्ठात् बभूवसः ॥
विधेर्नरदनाम्नश्च कण्ठदेशात् बभूव सः । नारदश्चेति विख्यातो मुनीन्द्रस्तेन हेतुना ॥
यः पुत्रश्चेतसोधातुर्बभूव मुनिपुङ्गवः । तेन प्रचेता इति च नामचक्रे पितामहः ॥ ३ ॥
बभूव धातुर्यः पुत्रः सहसा दक्षपार्श्वतः । सर्वकर्मणि दक्षश्च तेनदक्षः प्रकीर्त्तितः ॥
वेदेषु कर्दमः शब्दश्छायायां वर्त्तते स्फुटः । बभूव कर्दमात् बालःकर्दमस्तेनकीर्त्तितः ॥
तेजोभेदे मरीचिश्चवेदेषु वर्त्ततेस्फुटम् । जातः सद्योऽतितेजस्वीमरीचिस्तेनकीर्त्तितः ॥
क्रतुसंघश्च बालेन कृतो जन्मान्तरेऽधुना । ब्रह्मपुत्रेऽपि तन्नाम क्रतुरित्यभिधीयते ॥
प्रधानाङ्गं मुखं धातुस्ततो जातश्चबालकः । इरस्तेजस्विवचनोऽप्यङ्गिरास्तेनकीर्त्तितः ॥

अतितेजस्विनि भृगुर्वर्त्तते नाम्नि शौनक ! ।
जातः सद्योऽतितेजस्वी भृगुस्तेन प्रकीर्त्तितः ॥ ६ ॥

बालोऽप्यरुणवर्णश्चजातःसद्योऽतितेजसा । प्रज्वलन्नूर्द्ध्वतपसाचारुणिस्तेनकीर्त्तितः ॥
हंसा आत्मवशायस्य योगेन योगिनीध्रुवम् । बालःपरमयोगीन्द्रस्तेनहंसी प्रकीर्त्तितः ॥
वशीभूतश्चशिष्यश्च जातःसद्यो हि बालकः । अतिप्रियश्चधातुश्च वशिष्ठस्तेन कीर्त्तितः ॥
सततं यस्य यत्नश्च तपःसु बालकस्य च । प्रकीर्त्तितो यतिस्तेन संयतः सर्वकर्मसु ॥
पुलस्तपःसु वेदेषु वर्तते हः स्फुटेऽपि च । स्फुटस्तपः समूहश्च पुलहस्तेन बालकः ॥
पुलस्तपः समूहश्च यस्यास्ति पूर्वजन्मनाम् । तपःसंघस्वरूपश्च पुलस्त्यस्तेन बालकः ॥
त्रिगुणायांप्रकृत्यां त्रिर्विष्णावश्चप्रवर्तते । तयोर्भक्तिःसमायस्यतेनबालोऽत्रिरुच्यते ॥
जटावह्निशिखारूपाः पञ्चसन्ति च मस्तके । तपस्तेजोभवायस्य सच पञ्चशिखःस्मृतः ॥
अपान्तरतमे देशे तपस्तेपेऽन्यजन्मनि । अपान्तरतमा नाम शिशोस्तेन प्रकीर्त्तितम् ॥

स्वयं तपः समाप्नोति वाहयेत् प्रापयेत्परान् ।
ऊढुं समर्थस्तपसि वोढुस्तेन प्रकीर्त्तितः ॥ १८ ॥
तपसस्तेजसा वालो दीप्तिमान् सततं मुने । तपःसु रोचतेचित्तं रुचिस्तेन प्रकीर्त्तितः ॥
कोपकाले वभूवुर्ये स्रष्टुरेकादश स्मृताः । रोदनादेव रुद्राश्च कोपितास्तेन हेतुना ॥

शौनक उवाच ।

रुद्रेष्वेकतमो वालो महेशइति मे भ्रमः । भवान् पुराणतत्त्वज्ञः सन्देहंछेत्तुमर्हति ॥२१॥

सौतिरुवाच ।

विष्णुः सत्वगुणः पाता ब्रह्मास्रष्टारजोगुणः । तमोगुणास्ते रुद्राश्च दुर्निवाराःभयङ्कराः ॥
कालाग्निरुद्रः संहर्त्ता तेष्वेकः शङ्करांशकः । शुद्धसत्वस्वरूपश्च शिवश्च शिवदः सताम् ॥
अन्ये कृष्णस्य च कलास्तावंशौविष्णुशङ्करौ । समौसत्वस्वरूपौद्वौपरिपूर्णतमस्य च ॥
उक्तंरुद्रोद्भवेकाले कथं विस्मरसि द्विज । मायया मोहिता सर्वे मुनीनाञ्च मतिभ्रमः ॥
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः । सनत्कुमारो भगवांश्चतुर्थो ब्रह्मणः सुतः ॥२६॥
ब्रह्मास्रष्टुं पूर्वपुत्रानुवाच ते न सेहिरे । तेनप्रकोपितोधाता रुद्राः कोपोद्भवा मुने ॥
सनकश्चसनन्दश्च तौ द्वावानन्दवाचकौ । आनन्दितौचवालौ द्वौ भक्तिपूर्णतमौसदा ॥
सनातनश्चश्रीकृष्णो नित्यः पूर्णतमःस्वयम् । तद्भक्तस्तत्समःसत्यंतेन बालःसनातनः ॥
सनत्तु नित्यवचनः कुमारः शिशुवाचकः । सनत्कुमारं तेनेममुवाच कमलोद्भवः ॥ ३० ॥
ब्रह्मणो वालकानाञ्च व्युत्पत्तिः कथिता मुने ।
साम्प्रतं नारदाख्यानं श्रूयताञ्च यथाक्रमम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मपुत्रव्युत्पत्तिकथनं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः ।

त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ।

ब्रह्मनारदसंवादवर्णनम् ।

सौतिरुवाच ।

स्रष्टा सृष्टिविधानेन नियोज्य सर्वबालकान् । नारदं प्रेरयामास सृष्टिं कर्त्तुञ्च शौनक ॥
हितं सत्यं वेदसारं परिणामसुखावहम् । उवाच नारदं ब्रह्मा वेदवेदाङ्गपारगम् ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एहि वत्स कुलश्रेष्ठ नारद प्राणवल्लभ । ज्ञानदीपशिखाज्ञानतिमिरक्षयकारक ॥ ३ ॥
सर्वेषामपि वन्द्यानां जनकः परमो गुरुः । विद्यादाता मन्त्रदाता द्वौ समौ च पितुःपरौ
तवाहं जनकः पुत्र विद्यादाता च पालकः । ममाज्ञया च मत्प्रीत्या कुरु दारपरिग्रहम् ॥

स च शिष्यः सोऽपि पुत्रो यश्चाज्ञां पालयेद्गुरोः ।
न क्षेमं तस्य मूढस्य यो गुरोरवचस्करः ॥ ६ ॥
स पण्डितः स च ज्ञानी स क्षेमी स च पुण्यवान् ।
गुरोर्वचस्करो यो हि क्षेमं तस्य पदे पदे ॥ ७ ॥

सर्वेषामाश्रमाणाञ्च प्रधानः पुण्यवान् गृही । स्त्रीपुत्रपौत्रयुक्तश्च मन्दिरं तपसः फलम्
पितरः पूर्वकाले च तिथिकाले च देवताः । सर्वे गृहस्थमायान्ति निपानमिव धेनवः ॥
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं कुर्वन्ति गृहिणः सदा । इह एतत् सुखं पुण्यं स्वर्गभोगःपरत्रच
जीवन्मुक्तो गृहस्थश्च स्वधर्मपरिपालकः । यशस्वी पुण्यवांश्चैवकीर्त्तिमान्धनवान्सुखी

यशस्वी कीर्त्तिमान् यो हि मृतो जीवति सन्ततम् ।
यशः कीर्त्तिविहीनो हि जीवन्नपि मृतो हि सः ॥ १२ ॥

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा नारदो मुनिसत्तमः । उवाच विनयं भीतः शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः ॥

नारद उवाच ।

एकदा वाग्विरोधेन चोभयोस्तातपुत्रयोः । हानिर्बभूव दैवेन महती वायशस्करी ॥१४॥
त्वा प्राप्तश्च त्वत्शापात्गान्धर्वंशौद्रमेव च । जन्मकर्म च मत्शापात्त्वमपूज्योभवेभव

बभूव शापो मुक्तो मे काले ते भविता विधे। दोषाय कल्पते शश्वद्विरोधो नृगुणाय च
स पिता स गुरोर्बन्धुः स पुत्रः स मदीश्वरः। यः श्रीकृष्णपादपद्मे दृढां भक्तिञ्च कारयेत्
असद्वर्त्मनि चाज्ञानाद् गच्छन्ति यदि बालकाः। निवर्त्तयति तानेव स पिता करुणानिधिः

कारयित्वा कृष्णपादे भक्तित्यागञ्च यः पिता।
अन्यस्मिन् विषये पुत्रं स किं हन्त प्रवर्त्तयेत् ॥ १९ ॥

दारग्रहो हि दुःखाय केवलं न सुखाय च। तपःस्वर्गभक्तिमुक्तिकर्मणां व्यवधायकः॥

योषितस्त्रिविधा ब्रह्मन् गृहिणां मूढचेतसाम्।
साध्वी भोग्या च कुलटास्ताः सर्वाः स्वार्थतत्पराः ॥ २१ ॥

परलोकभिया साध्वी तथेहयशसात्मनः। कामस्नेहाच्च कुरुते भर्त्तुः सेवाञ्च सन्ततम्॥
भोग्याभोगार्थिनीशश्वत् कामस्नेहेनकेवलम्। कुरुते कान्तसेवाञ्च नच भोगाद्दृतेक्षणम्
वस्त्रालङ्कारसम्भोगं सुस्निग्धाहारमुत्तमम्। यावत्प्राप्नोति सा भोग्यातावच्चवशगाप्रिया
कुलाङ्गारसमानारी कुलटा कुलनाशिनी। कपटात् कुरुते सेवां स्वामिनो न च भक्तितः
सदा पुंयोगमाशंसुर्मनसा मदनातुरा। आहारादधिकं जारं प्रार्थयन्ती नवं नवम् ॥२६॥
जारार्थे स्वपतिं तातहन्तुमिच्छति पुंश्चली। तस्यांयोविश्वसेन्मूढोजीवनंतस्यनिष्फलम्
कथितायोषितःसर्वाःउत्तमाधममध्यमाः। स्वात्मारामा विजानन्तिमनस्तासांनपण्डिताः
हृदयं क्षुरधाराभं शरत्पद्मोत्सवं मुखम्। सुधासमं सुमधुरं वचनं स्वार्थसिद्धये ॥२९॥
प्रकोपे विषतुल्यञ्च विश्वासे सर्वनाशनम्। दुर्ज्ञेयं तदभिप्रायं निगूढं कर्म केवलम्॥
सदा तासामविनयः प्रबलं साहसं परम्। दोषोत्कर्षो छलोत्कर्षः शश्वन्मायादुरत्यया
पुंसश्चाष्टगुणः कामःशश्वत्कामोजगद्गुरो। आहारो द्विगुणो नित्यंनैष्ठुर्यञ्चचतुर्गुणम्
कोपः पुंसः षड्गुणश्च व्यवसायश्च निश्चितम्। यत्रेमे दोषनिवहाः कास्था तत्र पितामह
का क्रीड़ा किं सुखं पुंसो विण्मूत्रपूयवेश्मनि। तेजः प्रणष्टं सम्भोगे दिवालापेयशःक्षयस्त्वं
धनक्षयोऽतिसंप्रीतौ पात्यासक्तौ वपुःक्षयः। साहित्ये पौरुषं नष्टं कलहे मान्यनाशनम्
सर्वनाशश्च विश्वासे ब्रह्मन्नारीषु किंसुखम्। यावद्धनी चतेजस्वीसश्रीकोयोग्यतापरः
पुमान्नारीं वशीकर्तुं समर्थस्तावदेव हि ॥ ३६ ॥

रोगिणं निर्द्धनं वृद्धं योषिद् वा प्रेक्षतेप्रियम् । लोकाचारभयात्तस्मैददात्याहारमल्पकम्

इत्येवं कथितं सर्वं ब्रह्मन्नात्मागमो यथा ॥ ३८ ॥
सर्वं जानासि सर्वज्ञ स्वात्मारामेश्वरो भवान् ।
अनुग्रहं कुरु विभो ! विदायं देहि साम्प्रतम् ।
कृष्णभक्तिं प्रार्थयामि त्वयि कल्पतरोः परे ॥ ३९ ॥

इत्युक्त्वा नारदस्तत्र धृत्वा तातपदाम्बुजम् । आज्ञां ययाचे पितरं गन्तुं तपसि मङ्गले ॥
पुटाञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः । कृत्वा प्रदक्षिणं नत्वा ब्रह्माणं गन्तुमुद्यतः
गच्छन्तं तनयं दृष्ट्वा विधाता जगतां मुने । रुरोदोच्चैर्मुक्तकण्ठ महासांसारिको यथा ॥
करे धृत्वा समालिङ्ग्य चुचुम्ब च पुनःपुनः । चिरंवक्षसि कृत्वा च वासयामासजानुनि

स्वात्मारामेश्वरो ब्रह्मा योगिन्द्राणां गुरोर्गुरुः ।
भेदं सोढुं न शशाक विच्छेदो दुःसहो नृणाम् ॥ ४४ ॥

कातरः पुत्रभेदेन मोहितो विष्णुमायया । शोकार्त्तो वक्तुमारेभे सुतं सम्बोध्य शौनक
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे ब्रह्मनारदसंवादे त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ।

चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

नारदं प्रति दारपरिग्रहार्थं ब्राह्मण उपदेशः ।

श्रीब्रह्मोवाच ।

त्वं गच्छ तपसेवत्सकिंमेसंसारकर्मणि । अहं यास्यामि गोलोकं विज्ञातुंकृष्णमीश्वरम्
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः । सनत्कुमारो वैरागी चतुर्थपुत्र एव च ॥ २ ॥
यती हंसी चारुणिश्च वोढुः पञ्चशिखस्तथा । पुत्रास्तपस्विनःसर्वे किं मे संसारकर्मणि
चस्करो मरीचिर्मे अङ्गिराश्च भृगुस्तथा । रुचिरत्रिः कर्दमश्च, प्रचेताश्च क्रतुर्मनुः ॥

वशिष्ठो वंशगः शश्वत् सर्वेषु च सुतेषु च। अन्येविवेकिनोऽसाध्याकिमेसंसारकर्मणि
निबोध वत्स वक्ष्यामि वेदोक्तं वचनं शुभम्। पारम्पर्य्यक्रमपरं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥६॥
धर्मार्थकाममोक्षांश्च सर्वे वाञ्छन्तिपण्डिताः। वेदप्रणिहितान्नेतान्सभासुचप्रशंसितान्
वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्य्ययः ॥ ७ ॥
आदौ विप्रो यज्ञसूत्रं परिधाय सुखं सुखे। समधीत्य ततो वेदान् ददाति गुरुदक्षिणाम्
ततः प्रहृष्टकुलजां सुविनीतां समुद्वहेत् ॥ ६ ॥
सा साध्वी कुलजाया चं पतिसेवासु तत्परा।
सद्वंशे दुर्विनीता च प्रभवेन्न कदाचन। आकरे पद्मरागाणां जन्म काचमणेः कुतः ॥
असद्वंशप्रसूता या पित्रोर्दोषेण नारद। दुर्विनीता च सा दुष्टा स्वतन्त्रा सर्वकर्मसु ॥
न वत्स दुष्टाः सर्वाश्च योषितः कमलाकलाः। स(स्व)वेश्यांशाश्च कुलटा असद्वंशसमुद्भवाः
निर्गुणं स्वामिनं साध्वी सेवते च प्रशंसति। न सेवते च कुलटा प्रियंनिन्दतिसद्गुणम्
साधुः सद्वंशजां कन्यां प्रयत्नेन परिग्रहेत्। तस्यां पुत्रान् समुत्पाद्य वृद्धस्तुतपसे व्रजेत्
वरं हुतवहे वासः सर्ववक्त्रे च कण्टके। एतेभ्यो दुःखदो वासःस्त्रिया दुर्मुखया सह
त्वमधीतो मयावेदो मह्यञ्च गुरुदक्षिणाम्। पुत्र देहीदमेवेह कुरु दारपरिग्रहम् ॥ १६ ॥
वत्स ! त्वं कुलजाताञ्च पूर्वपत्नीञ्च मालतीम्। विवाहं कुरु कल्याण कल्याणेचदिनक्षणे
मनुवंशोद्भवस्येह सञ्जयस्य गृहे सती। त्वत्कृते जन्म लब्ध्वा च कुरुते भारते तपः ॥
ग्रहणं कुरुतां रत्नमालाञ्च कमलाकलाम्। भारते न भवेद्व्यर्थं जनानां तपसः फलम् ॥
आदौभवेद्गृहीलोको वानप्रस्थस्ततःपरम्। ततस्तपस्वीमोक्षाय क्रमएषः श्रुतौश्रुतः॥
वैष्णवानां हरेरर्चा तपस्या च श्रुतौ श्रुता ॥ २१ ॥
वैष्णव त्वं गृहे तिष्ठ कुरु कृष्णपदार्चनम्। अन्तर्बाह्ये हरिर्यस्य तस्य किं तपसा सुत॥
नान्तर्बाह्येहरिर्यस्य तस्य किं तपसा वृथा। तपसा हरिराराध्यो नान्यः कृश्च न विद्यते॥
यत्र तत्र कृतं कृष्णसेवनं परमं तपः। वत्स ! मद्वचनेनैव गृहे स्थित्वा हरिं भज ॥ २४
गृहीभव मुनिश्रेष्ठगृहीणां सर्वदासुखम्। कामिन्यांसुखसम्भोगःस्वर्गभोगात् सुदुर्लभः
तद्दर्शनमुपस्पर्शं वाञ्छन्त्येव मुमुक्षवः। सर्वस्पर्शसुखात् स्त्रीणामुपस्पर्शसुखं परम् ॥

ततः सुखतमंपुत्र दर्शनं स्पर्शनं मुने । सर्वेभ्यः प्रेयसी कान्ता प्रिया तेन प्रकीर्त्तिता ॥
पुत्रप्रयोजनाकान्ता शतकान्ताप्रियःसुतः । नास्तिपुत्रात्परो बन्धुर्नास्तिपुत्रात्परःप्रियः
सर्वेभ्यो जयमन्विच्छेत् पुत्रादेकात् पराजयम् ।
न चात्मनि प्रियोऽर्थश्च तस्मादपि प्रियः सुतः ॥ २९ ॥
अतः प्रियतमे पुत्रे न्यसेदात्मपरं धनम् । इत्येवमुक्त्वाऽस ब्रह्मा विरराम च शौनक ॥३०

नारद उवाच

उवाच वचनं तातं नारदो ज्ञानिनां वरः । स्वयं विज्ञाय सर्वार्थं स्वपुत्रं वेददर्शने ॥
प्रवर्त्तयत्यसन्मार्गे स दयालुः कथं पिता ॥ ३१ ॥
जलबुद्बुदवत् सर्वं संसारमिति नश्वरम् । जलरेखायथा मिथ्या तथा ब्रह्मन्जगत्त्रयम् ॥
विहाय हरिदास्यञ्च विषये ग्रन्मनश्चलन् । दुर्लभं मानवं जन्म बभूव तस्य निष्फलम् ॥
का वा कस्य प्रिया पुत्रो बन्धुः को वा भवार्णवे ।
कर्मोर्मिभिर्योजना च तदपायो वियोजना ॥ ३४ ॥
सुकर्मकारयेद्द् योहितन्मित्रं स पिता गुरुः । विबुद्धिकारयेद्द् योहिसरिपुश्च कथंपिता ।
इत्येवं कथितं तात ! वेदवीजं यथागमम् । ध्रुवं तथापि कर्त्तव्यं तवाज्ञापरिपालनम् ॥
आदौ यास्यामि भगवन्नरनारायणाश्रमम् । नारायणकथां श्रुत्वा करिष्ये दारसंग्रहम् ॥
इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्विरराम पितुः पुरः । पुष्पवृष्टिस्तदुपरि तत्क्षणेन बभूव ह ॥३८॥
क्षणं पितुः पुरः स्थित्वा नारदो मुनिसत्तमः । उवाच च पुनर्वेदं वचनं मङ्गलप्रदम् ॥३९

श्रीनारद उवाच ।

देहिमे कृष्णमन्त्रञ्च यन्मनोवाञ्छितं मम । तत्सम्बन्धिच यज्ज्ञानं यत्र तद्गुणवर्णनम्
ततः पश्चात् करिष्यामि त्वत्प्रीत्या दारसंग्रहम् ।
मानसे परिपूर्णे च कार्य्यं कर्त्तुं पुमान् सुखी ॥ ४१ ॥
नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहृष्टः कमलोद्भवः । उवाच पुनरेवेदं पुत्रं ज्ञानविदां वरः ॥ ४२॥

ब्रह्मोवाच ।

पत्युर्मन्त्रं पितुर्मन्त्रं न गृह्णीयाद् विचक्षणः । विविक्ताश्रमिणाञ्चैव न पुत्र सुखदायकः ॥

निषेकाल्लभ्यतेमन्त्रो गुरुर्भर्त्ता च कामिनी। विद्या सुखंभयं दुःखं पुरुषैः स्वेच्छयानच।
महेश्वरस्तव गुरुः प्राक्तनो नः पुरातनः। गच्छ वत्सशिवं शान्त शिवदं ज्ञानिनांगुरुम्।
तत्रैव भगवन्मन्त्रं ज्ञानं लब्ध्वा पुरातनात्। नारायणकथां श्रुत्वा शीघ्रमागच्छ मद्गृहम्
इत्युक्त्वा जगतांधाता विरराम च शौनक। प्रणम्यपितरं भक्त्या शिवलोकं ययौमुनिः॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौति-शौनकसंवादे चतुर्विंशतितमोऽध्यायः।

पञ्चविंशतितमोऽध्यायः।

नारदकृतशिवस्तुतिः शिवनारदसम्मिलनञ्च।

सौतिरुवाच।

क्षणेन विप्रवरो मुदान्वितो जगाम शम्भोः सदनं मनोहरम्।
ऊर्द्ध्वं ध्रुवाद् योजनलक्षमीप्सितं रत्नेन निर्माणकृतञ्च शूलिना॥ १॥
निराश्रये योगबलेन शम्भुना धृतं विचित्रं विविधालयान्वितम्।
दृष्टं स्वपुण्याशयसाधकैर्वरै-र्मुनीन्द्रसारैर्ज्वलितं दिवानिशम्॥ २॥
मयूखशून्यं रविचन्द्रयोर्मुने हुताशनैर्वेष्टितमेव केवलम्।
प्राकाररूपैरतिरिक्तवर्द्धितै-रुच्चैरसंख्यप्रमितैः शिखोज्ज्वलैः॥ ३॥
पुरं वरं योजनलक्षविस्तृतं त्रिकोटिरत्नेन्द्रगृहान्वितं सदा।
विराजितं हीरकसारनिर्मितै-श्चित्रैर्विचित्रैर्विविधैर्मनोहरैः॥ ४॥
माणिक्यमुक्तामणिदर्पणैर्युतं न स्वप्नदृष्टं द्विज विश्वकर्मणः।
आकल्पमेकैः शिवसेवितैर्जनै-र्निषेवितं सन्ततमेव शौनक॥ ५॥
सिद्धैर्नियुक्तं शतकोटिलक्षकैस्त्रिकोटिलक्षैश्च युतं स्वपार्षदैः।
युक्तं त्रिलक्षैर्विकटैश्च भैरवैः क्षेत्रैश्चतुर्लक्षशतैश्च वेष्टितम्॥ ६॥
सुरद्रुमैर्वेष्टितमेव सन्ततं मन्दारवृक्षप्रवरैः सुपुष्पितैः।
विराजितं सुन्दरकामधेनुभिर्यथा बलाकाशतकैर्नभस्तलम्॥ ७॥

दृष्ट्वा मुनिर्विस्मयमाप मानसे किमत्र चित्रं बुधियोगिनां गुरौ ।
लोकं त्रिलोकाच्च विलक्षणं परं भीमृत्युरोगार्त्तिजराहरं वरम् ॥ ८ ॥
दूरे सभामण्डलमध्यगं शिवं ददर्श शान्तं शिवदं मनोहरम् ।
पञ्चत्रिनेत्रं विधुपञ्चवक्त्रकं गङ्गाधरं निर्मलचन्द्रशेखरम् ॥ ९ ॥
प्रतप्तहेमाभजटाधरं विभुं दिगम्बरं शुभ्रमनन्तमक्षरम् ।
मन्दाकिनीपुष्करवीजमालया कृष्णेति नामैव मुदा जपन्तम् ॥ १० ॥
सुनीलकण्ठं भुजगेन्द्रमण्डितं योगीन्द्रसिद्धेन्द्रमुनीन्द्रवन्दितम् ।
सिद्धेश्वरं सिद्धिविधानकारणं मृत्युञ्जयं कालयमान्तकारकम् ॥ ११ ॥
प्रसन्नहास्यास्यमनोहरं परं विश्वोद्गतानां शिवदं वरप्रदम् ।
सदाशुतोषं भवरोषवर्जितं भक्तप्रियं भक्तजनैकवन्धुम् ॥ १२ ॥
गत्वा समीपं मुनिरेव शूलिनं ननाम मूर्द्धा पुलकाङ्कविग्रहम् ।
वीणां त्रितन्त्रीं क्वणयन् पुनर्जगौ कृष्णं प्रतुष्टाव कलहंसकण्ठः ॥ १३ ॥
दृष्ट्वा मुनीन्द्रप्रवरञ्च सस्मितं विधेः सुतं वेदविदां वरिष्ठम् ।
योगीन्द्रसिद्धेन्द्रमहर्षिभिः सह जवेन पीठादुदतिष्ठदीश्वरः ॥ १४ ॥
ददौ च तस्मै मुनये ससम्भ्रममालिङ्गनञ्चाशिषमासनादिकम् ।
पप्रच्छ भद्रं गमनप्रयोजनं तपोधनं तं तपसाञ्च शौनक ॥ १५ ॥
सद्रत्नसिंहासनसुन्दरेव रे चोवास शम्भुर्वरपार्षदैः सह ।
नोवास स्रष्टुस्तनयः पुटाञ्जलिस्तुष्टाव भक्त्या प्रणतः प्रभुं द्विज ॥ १६ ॥
गन्धर्वराजेन कृतेन नारदो वेदोक्तस्तोत्रेण शुभप्रदेन च ।
स्तुत्वा प्रणामं पुनरेव कृत्वा भवाज्ञयोवास भवस्य वामतः ॥ १७ ॥
चकार तत्रैव निवेदनं शिवे मनोऽभिलाषं भवकामपूरके ।
श्रुत्वा मुनेस्तद्वचनं कृपानिधिर्द्रुतं प्रतिज्ञां प्रचकार ओमिति ॥ १८ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे शिवनारदसम्मिलनं नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः समाप्तः ।

षड्विंशतितमोऽध्यायः ।

शिवोक्ताह्निकाचारवर्णनम् ।

सौतिरुवाच ।

हरेस्तोत्रञ्च कवचं मन्त्रं पूजाविधिं परम् । हरं गयाचे देवर्षिर्ध्यानञ्च ज्ञानमेव च ॥
स्तोत्रञ्च कवचं मन्त्रं ध्यानंपूजाविधानकम् । तत्प्राक्तनीयंज्ञानञ्चददौतस्मै महेश्वरः ॥
सर्वं प्राप्य मुनिश्रेष्ठः परिपूर्णमनोरथः । उवाच प्रणतो भक्त्या गुरुं प्रणतवत्सलम् ॥

नारद उवाच ।

आह्निकं ब्राह्मणानाञ्च वद वेदविदां वर । स्वधर्मपालनं नित्यं यतो भवति नित्यशः ॥४॥

श्रीमहेश्वर उवाच ।

उत्थाप्य ब्राह्म्ये मुहूर्त्ते ब्रह्मरन्ध्रस्थपङ्कजे । सूक्ष्मे सहस्रपद्मे च निर्मले ग्लानिवर्जिते ॥५
रात्रिवासं परित्यज्यगुरुंतत्रैवचिन्तयेत् । व्याख्यामुद्राकरंप्रीतंसस्मितंशिष्यवत्सलम् ॥
प्रसन्नवदनं शान्तं परितुष्टं निरन्तरम् । साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपञ्च शिष्याणांचिन्तयेत्सदा ॥
ध्यात्वा त्वद्गुरुमादाय हृद्पद्मे निर्मले सिते । सहस्रपत्रेविस्तीर्णेदेवमिष्टं विचिन्तयेत् ॥
यस्य देवस्य यद्ध्यानं यद्रूपं तद्विचिन्तयेत् । गृहीत्वातदनुज्ञाञ्चकर्त्तव्यं समयोचितम् ॥
आदौध्यात्वागुरुंनत्वासंपूज्य विधिपूर्वकम् । पश्चात्तदाज्ञामादाय ध्यायेदिष्टंप्रपूजये॥१०
गुरुप्रदर्शितो देवो मन्त्रपूजाविधिर्जपः । न देवेन गुरुर्दृष्टस्तस्मात् देवात् गुरुः परः ॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः । गुरुः प्रकृतिरीशाद्या गुरुश्चन्द्रोऽनलो रविः ॥१२
गुरुर्वायुश्च वरुणो गुरुर्माता पिता सुहृत् । गुरुरेव परं ब्रह्मन्नास्ति पूज्यो गुरोः परः ॥
अभीष्टदेवरुष्टे च समर्थो रक्षणे गुरुः । न समर्था गुरौ रुष्टे रक्षणे सर्वदेवताः ॥१४॥
यस्य तुष्टो गुरुः शश्वज्जयस्तस्य पदे पदे । यस्य रुष्टो गुरुस्तस्यसर्वनाशश्च सर्वदा
न संपूज्य गुरुं देवं यो मूढः पूजयेद् भ्रमात् । ब्रह्महत्याशतंपापंलभतेनात्र संशयः ॥१६
सामवेदे च भगवानित्युवाच हरिः स्वयम् । तस्मादभीष्टदेवाच्च गुरुः पूज्यतमः परः ॥

गुरुमिष्टंस्वयंध्यात्वास्तुत्वाचसाधकोमुने। वेदोक्तस्थलमासाद्यविण्मूत्रमुत्सृजेन्मुदा॥
जलं जलसमीपञ्च सरन्ध्रं प्राणिसन्निधिम्। देवालयसमीपञ्च वृक्षमूलञ्च वर्त्म च ॥१६
हलोत्कर्षस्थलञ्चैव शस्यक्षेत्रञ्च गोष्ठकम्। नदीकन्दरगर्भञ्च पुष्पोद्यानञ्चपङ्किलम् ॥२०
ग्रामाद्यभ्यन्तरञ्चैव नृणां गृहसमीपकम्। शङ्कुं सेतुं शरवनं श्मशानंवह्निसन्निधिम् ॥२१
क्रीड़ास्थलं महारण्यं मञ्चकाधःस्थलंतथा। वृक्षच्छायान्तुतंस्थानमन्तःप्राण्यवपर्णकम्॥
॥ दूर्वास्थानं कुशस्थानं वल्मीकस्थानमेव च। वृक्षारोपणभूमिञ्चकार्य्यार्थञ्चपरिष्कृतम्॥
॥ एतत् सर्वं परित्यज्य सूर्य्यतापविवर्जितम्। कृत्वा गर्त्तं पुरीषञ्च मूत्रञ्च परिवर्जयेत्॥
॥ पुरीषमूत्रोत्सर्गञ्च दिवाकुर्य्यादुदङ्मुखः। पश्चिमाभिमुखोरात्रौसन्ध्यायांदक्षिणामुखः॥

मौनी भूत्वा च निःश्वासं यथा गन्धो न सञ्चरेत्।

॥ त्यक्त्वा मृदा समाच्छाद्य शौचं कुर्य्याद्विचक्षणः॥ २६॥

कृत्वा तु लोष्ठशौचञ्च जलशौचं ततः परम्। मृद्युक्तं तज्जलञ्चैव तत्प्रमाणंनिशामय॥
५ एकां लिङ्गे मृदं दद्याद् वामहस्ते चतुष्टयम्। उभयोर्हस्तयोर्द्वेतुमूत्रशौचंप्रकीर्त्तितम्॥२८
॥ मूत्रशौचञ्च द्विगुणं मैथुनानन्तरं यदि। मैथुनानन्तरे शौचं मूत्रशौचं चतुर्गुणम्॥ २६॥
॥ एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथा वामकरे दश। उभयोः सप्त दातव्याः पादः षष्ठेन शुध्यति॥
॥ पुरीषशौचंविप्राणांगृहिणामिदमेवच। विधवानाञ्च द्विगुणं शौचमेवं प्रकीर्त्तितम् ॥३१॥
॥ यतीनां वैष्णवानाञ्च ब्रह्मर्षेर्ब्रह्मचारिणाम्। चतुर्गुणञ्च गृहिणां तेषां शौचंप्रकीर्त्तितम्॥
० नो यावदुपनीयेत द्विजः शूद्रस्तथाङ्गना। गन्धलेपक्षयकरं तेषां शौचं प्रकीर्त्तितम् ॥३३
॥ शौचं क्षत्रविशोश्चैव द्विजानांगृहिणांसमम्। द्विगुणंवैष्णवादीनांमुनीनांपरिकीर्त्तितम्
४ न्यूनाधिकं न कर्त्तव्यं शौचं शुद्धिमभीप्सता। प्रायश्चित्तं प्रयुज्येत विहितातिक्रमेकृते॥
॥ शौचं तन्नियमं मत्तः सावधानं निशामय। मृत्शौचेचशुचिर्विप्रोऽप्यशुचिश्चव्यतिक्रमे॥
॥ वल्मीकमूषिकोत्खातां मृदमन्तर्जलां तथा। शौचावशिष्टांगेहाचनद्याल्लेपसम्भवाम्॥
॥ अन्तःप्राण्यवपर्णाञ्चहलोत्खातांविशेषतः। कुशमूलोत्थितञ्चैवदूर्वामूलोत्थितान्तथा॥
६ अश्वत्थमूलान्नीताञ्च तथैवशयनोत्थिताम्।
चतुष्पथाच्च गोष्ठानां गोष्पदानांतथैव च। शस्यस्थलानां क्षेत्राणामुद्यानानांमृदंत्यजेत्

स्नातो वाप्यथवास्नातोविप्रः शौचेनशुध्यति । शौचहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ।
कृत्वाशौचमिदं विप्रो मुखं प्रक्षालयेत् सुधीः ॥४१॥
आदौ षोड़शगण्डूषैर्मुखशुद्धिं विधाय च । दन्तकाष्ठेन दन्तञ्च तत्पश्चात् परिमार्जयेत् ॥
पुनः षोडशगण्डूषैर्मुखशुद्धिंसमाचरेत् । दन्तमार्जनकाष्ठानां नियमं शृणु नारद ! ॥४३॥
निरूपितं सामवेदे हरिणा चाह्निकक्रमे । अपामार्गं सिन्धुवारमाम्रञ्च करवीरकम् ॥ ४४
खदिरञ्च शिरीषञ्च जातिपुन्नागशालकम् । अशोकमर्जुनञ्चैव क्षीरीवृक्षं कदम्बकम् ॥४५
जम्बूकं वकुलं चोड्रं पलाशञ्च प्रशस्तकम् । वदरीं पारिभद्रञ्चमन्दारंशाल्मलितथा ॥४६॥
वृक्षं कण्टकयुक्तञ्च लतादिपरिविर्जितम् ॥ ४७ ॥
पिप्पलञ्च पियालञ्च तिन्तिड़ीकञ्च ताड़कम् । खर्जूरं नारिकेलञ्च तालञ्च परिवर्जितम् ॥
दन्तशौचविहीनश्च सर्वशौचविहीनकः । शौचहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ॥ ४९
कृत्वा शौचं शुचिर्विप्रो धृत्वा धौते च वाससी ।
प्रक्षाल्य पादमाचम्य प्रातः सन्ध्यां समाचरेत् ॥ ५० ॥
एवंत्रिसन्ध्यं सन्ध्याञ्चकुरुतेकुलजो द्विजः । सस्नातःसर्वतीर्थेषु त्रिसन्ध्यंयः समाचरेत् ।
त्रिसन्ध्यहीनोऽप्यशुचिरनर्हः सर्वकर्मसु । यदह्ना कुरुते कर्म न तस्य फलभाग् भवेत् ॥
नोपतिष्ठतियः पूर्वांनोपास्ते यस्तुपश्चिमाम् । स शूद्रवद्बहिःकार्य्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः
पूर्वांसन्ध्यां परित्यज्य मध्यमां पश्चिमांतथा । ब्रह्महत्यामात्महत्यांप्रत्यहं लभते द्विजः
एकादशीविहीनोयः सन्ध्याहीनश्चयो द्विजः । कल्पंव्रजेत् कालसूत्रंयथाहिवृषलीपतिः ॥
विधायप्रातः सन्ध्याञ्चगुरुमिष्टंसुरं:रविम् । ब्रह्माणामीशंविष्णुञ्चमायांपद्मांसरस्वतीम् ।
प्रणम्य गुरुमार्ज्यञ्च दर्पणं मधुकाञ्चनम् । स्पृष्ट्वा स्नानादिकं काले कुर्य्यात्साधकसत्तमः
पुष्करिण्यान्तुवाप्यान्तु यदास्नानंसमाचरेत् । समुद्धृत्य पञ्चपिण्डानादौधर्मी विचक्षणः
नद्यांनदे कन्दरेवा तीर्थेवा स्नानमाचरेत् । कुर्य्यात् स्नात्वा तु सङ्कल्पं ततः स्नानंपुनर्मुने ।
श्रीकृष्णप्रीतिकामश्च वैष्णवानां महात्मनाम् । सङ्कल्पो गृहीणाञ्चैवकृतपातकनाशनम् ॥
विप्रः कृत्वा तु सङ्कल्पं मृदं गात्रे प्रलेपयेत् । वेदोक्तमन्त्रेणानेन देहशुद्धिं कृतेन च ॥६१
अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्तेवसुन्धरे । मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ।

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना । आरुह्य मम गात्राणि सर्वं पापं प्रमोचय ॥६३
पुण्यंदेहिमहाभागे स्नानानुज्ञां कुरुष्व माम् । इत्युक्त्वाच जले नाभिप्रमाणे मन्त्रपूर्वकम् ।
चतुर्हस्तप्रमाणाञ्च कृत्वा मण्डलिकां शुभाम् । तीर्थान्यावाहयेत्तत्र हस्तंदत्वा तपोधन

यानि यानि च तीर्थानि सर्वाणि कथयामि ते ॥ ६६ ॥

गङ्गेच यमुने चैव गोदावरि सरस्वति । नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिंकुरु ॥
नलिनीनन्दिनी सीतामालिनी च महापद्मा । विष्णुपादार्घ्यसम्भूता गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥
पद्मावतीभोगवती स्वर्णरेखाच कौशिकी । दक्षापृथ्वीचसुभगा विश्वकाया शिवामृता ॥

विद्याधरी सुप्रसन्ना तथा लोकप्रसाधिनी ।
क्षेमा च वैष्णवी शान्ता शान्तिदा गोमती सती ॥ ७० ॥

सावित्रीतुलसीदुर्गा महालक्ष्मीःसरस्वती । कृष्णप्राणाधिकाराधा लोपामुद्रादितीरतिः ।
अहल्या चादितिः संज्ञास्वधा स्वाहाप्यरुन्धती । शतरूपा देवहूतीत्येवमाद्याःस्मरेत्सुधीः
स्नात्वास्नात्वा महापूतः कुर्य्यात्तु तिलकं बुधः । बाह्वोर्मूले ललाटे च कण्ठदेशेच वक्षसि
स्नानंदानं तपो होमं दैवञ्च पितृकर्मसु । तत् सर्वं निष्फलं याति ललाटे तिलकं विना ॥

ब्राह्मणस्तिलकं कृत्वा कुर्य्यात् सन्ध्याञ्च तर्पणम् ।
नमस्कृत्य सुरान् भक्त्या गृहं गच्छेन्मुदान्वितः ॥ ७५ ॥

प्रक्षाल्य पादं यत्नेन धृत्वा धौतेच वाससी । मन्दिरं प्रविशेत् प्राज्ञ इत्याहहरिरेव च ॥
विनापादौचप्रक्षाल्य स्नात्वा विशतिमन्दिरम् । तस्य स्नानादिकं नष्टं जपहोमञ्चपञ्चमम् ।
परिधायस्निग्धवस्त्रं गृहञ्चप्रविशेद् गृही । रुष्टालक्ष्मीर्गृहाद्याति शापंदत्त्वासुदारुणम् ।
ऊर्द्ध्वजङ्घेचयोविप्रः पादौ प्रक्षालयेत् यदि । तावद्भवतिचाण्डलो यावद् गङ्गान पश्यति
उपविश्यासनेब्रह्मन्नाचम्य साधकःशुचि । पूजांकुर्य्यात्तु वेदोक्तं भक्तियुक्तोहि संयतः ॥
शालग्रामे मणौ मन्त्रे प्रतिमायां जले स्थले । गोपृष्ठेवा गुरौ विप्रे प्रशस्तमर्चनं हरेः ॥
सर्वेप्रशस्ता पूजा च शालग्रामे च नारद । सुराणामेव सर्वेषां यन्त्राधिष्ठानमेव च । ८२।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । शालग्रामोदकेनैव योऽभिषेकं समाचरेत् ॥८३
शालग्रामेजलं भक्त्या नित्यमश्नातियो नरः । जीवन्मुक्तःसच भवेद् यात्यन्ते कृष्णमन्दिरम्

शालग्रामशिलाचक्रं यत्र तिष्ठति नारद। सचक्रो भगवांस्तत्र सर्वतीर्थानि निश्चितम्॥
तत्र यो हि मृतो देही ज्ञानाज्ञानेन दैवतः। रत्ननिर्माणयानेन स याति श्रीहरेः पदम्॥८६
शालग्रामं विनान्यत्रकः साधुः पूजयेद्धरिम्। कृत्वा तत्र हरेः पूजां परिपूर्ण फलंलभेत्॥
पूजाधारश्च कथितः श्रूयतां पूजनक्रमः। हरेः पूजां बहुमतां कथयामि यथागमम्॥८८

कश्चिद् ददाति हरये चोपचारांश्च षोडश।
सुन्दराणि पवित्राणि नित्यं भक्त्या च वैष्णवः॥ ८९॥

कश्चिद् द्वादश द्रव्याणि पञ्चवस्तूनि कश्चन। येषामेव यथाशक्तिर्भक्तिमूलश्च पूजने।९०।
आसनं वसनं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्। पुष्पं चन्दनधूपश्च दीपनैवेद्यमुत्तमम्॥ ९१॥

गन्धं माल्यश्च शय्याश्च ललितां सुविलक्षणाम्।
जलमन्नश्च ताम्बूलं साधारं देयमेव च॥ ९२॥

गन्धान्नतल्पताम्बूलं विनाद्रव्याणि द्वादश। पाद्यार्घ्यजल नैवेद्य पुष्पाण्येतानि पञ्च च
सर्वाण्येतानि मूलेन दद्यात् साधकसत्तमः। गुरुपदिष्टं मूलश्च प्रशस्तं सर्वकर्मसु।९४।
आदौ कृत्वा भूतशुद्धिं प्राणयामं ततः परम्। अङ्गप्रत्यङ्गन्यासश्च मन्त्रन्यासंततःपरम्॥
वर्णन्यासं विनिर्वर्त्य चार्घ्यपात्रं विनिर्दिशेत्। त्रिकोणमण्डलंकृत्वा तत्रकूर्मंप्रपूजयेत्॥
जलेनापूर्य्य शङ्खश्च तत्र संस्थापयेद् द्विजः। जलं संपूज्य विधिवत्तीर्थान्यावाहयेत्ततः॥
पूजोपकरणं तेन जलेन क्षालयेत् पुनः। ततोगृहीत्वा पुष्पश्च कृत्वायोगासनं शुचिः॥

ध्यानेन गुरुदत्तेन ध्यायेत् कृष्णमनन्यधीः।
ध्यात्वा पाद्यादिकं सर्वं दद्यान्मूलेन साधकः॥ ९९॥

अङ्गप्रत्यङ्गदेवश्च तन्त्रोक्तं पूजयेद्धरिम्। मूलं जप्त्वा यथाशक्ति देवमन्त्रं विसर्जयेत्॥
दत्त्वोपहारं विविधंस्तुत्वा च कवचंपठेत्। ततःकृत्वापरीहारंमूर्द्ध्ना च प्रणमेद्भुवि।
कृत्वा च देवपूजाश्चयज्ञंकुर्य्याद्विचक्षणः। श्रौतस्मार्त्ताग्नियुक्तश्च बलिंदद्यात्ततो मुने।
नित्यश्राद्धं यथाशक्तिदानंवित्तानुरूपकम्। कृत्वा कृती च विहरेत् क्रमएषश्रुतौश्रुतः।

इति ते कथितं सर्वं वेदोक्तं सूत्रमुत्तमम्।
आह्निकस्य च विप्राणां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ १०४॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे शिवनारदसंवादे आह्निकप्रकरण कथनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः॥ २६॥

सप्तविंशतितमोऽध्यायः ।

नराणां भक्ष्याभक्ष्य-कर्तव्याकर्तव्यकथनम् ।

नारद उवाच ।

भक्ष्यं किं वाप्यभक्ष्यञ्च द्विजानां गृहिणां प्रभो ।
यतीनां वैष्णवानाञ्च विधवाब्रह्मचारिणाम् ॥ १ ॥
किं कर्त्तव्यमकर्त्तव्यमभोग्यं भोग्यमेव वा । सर्वं कथय सर्वज्ञ सर्वेश सर्वकारणम् ॥

महादेव उवाच ।

कश्चित्तपस्वी विप्रश्च निराहारी चिरंमुनिः । कश्चित् समीरणाहारी फलाहारी च कश्चन ॥
अन्नाहारी यथाकाले गृही च गृहिणीयुतः ।
येषामिच्छा च या ब्रह्मन् रुचीनां विविधा गतिः ॥ ४ ॥
हविष्यान्नं ब्राह्मणानां प्रशस्तं गृहिणां सदा । नारायणोच्छिष्टमिष्टमनिवेद्यमभक्षकम् ॥
अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम् । विण्मूत्रं सर्वपापोक्तमन्नञ्च हरिवासरे ॥
ब्राह्मणः कामतोऽन्नञ्च यो भुङ्क्ते हरिवासरे ।
त्रैलोक्यजनितं पापं सोऽपि भुङ्क्ते न संशयः ॥ ७ ॥
न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं न भोक्तव्यञ्च नारद । गृहिभिर्ब्राह्मणैरन्नं संप्राप्ते हरिवासरे ।८।
गृही शैवश्च शाक्तश्च ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः । प्रयातिकालसूत्रञ्च भुक्त्वा च हरिवासरे ॥
कृमिभिः शाल्मानैश्च भक्षितस्तत्र तिष्ठति । विण्मूत्रभोजनं कृत्वा यावदिन्द्राश्चतुर्दश
जन्माष्टमी दिने रामनवमी दिवसेहरेः । शिवरात्रौ च योभुङ्क्तेसोऽपिद्विगुणपातकी ॥
उपवासासमर्थश्च फलमूलजलं पिवेत् । नष्टे शरीरे स भवेदन्यथा चात्मघातकः ॥१२॥
सकृद्भुङ्क्तेहविष्यान्नंविष्णोर्नैवेद्यमेवच । न भवेत्प्रत्यवायी स चोपवासफलंलभेत् ॥
एकादश्यामनाहारं गृही विप्रश्च भारते । स च तिष्ठति वैकुण्ठे यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥
गृहिणां शैवशाक्तानामिदमुक्तञ्च नारद । विशेषतो वैष्णवानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥

नित्यं नैवेद्यभोजी यः श्रीकृष्णस्य च वैष्णवः ।
नित्यं शतोपवासानां जीवन्मुक्तः फलं लभेत् ॥ १६ ॥
वाञ्छन्ति तस्य संस्पर्शं तीर्थानि सर्वदेवता । आलापं दर्शनञ्चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥
द्विस्विन्नमन्नं पृथुकं शुद्धं देशविशेषके । नात्यन्तशस्तं विप्राणां भक्षणे च निवेदने ॥
अभक्ष्यञ्च यतीनाञ्च विधवा ब्रह्मचारिणाम् ।
ताम्बूलञ्च यथा ब्रह्मन् तथैते वस्तुनी ध्रुवम् ॥ १६ ॥
ताम्बूलं विधवास्त्रीणां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् । तपस्विनाञ्च विप्रेन्द्र गोमांससदृशं ध्रुवम् ॥
सर्वेषां ब्राह्मणानाञ्च चाभक्ष्यं शृणु नारद । यदुक्तं सामवेदे च हरिणाचाह्निकक्रमे ।२१॥
ताम्रपात्रे पयःपानमुच्छिष्टे घृतभोजनम् । दुग्धं लवणसार्द्धञ्च सद्योगोमांसभक्षणम् ॥
नारिकेलोदकं कांश्ये ताम्रपात्रे स्थितं मधु । ऐक्षवं ताम्रपात्रस्थं सुरातुल्यं न संशयः ॥
उत्थाय वामहस्तेन यत्तोयं पिबति द्विजः । सुरापी च स विज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥
अनिवेद्यं हरेरन्नं भुक्तशेषञ्च नित्यशः । पीतशेषजलञ्चैव गोमांससदृशं मुने ॥ २५ ॥
वार्त्तिङ्गणफलश्चैव गोमांसं कार्त्तिके स्मृतम् । माघे च मूलकञ्चैव कलम्बी शयने तथा ॥
श्वेतवर्णञ्च तालञ्च मसूरं मत्स्यमेव च । सर्वेषां ब्राह्मणानाञ्च त्याज्यञ्च सर्वदेशतः ।२७।
मत्स्यांश्चकामतोभुक्त्वासोपवासस्त्र्यहंवशेत् । प्रायश्चित्तंततःकृत्वाशुद्धिमाप्नोतिब्राह्मणः
प्रतिपत्सु च कुष्माण्डमभक्ष्यमर्थनाशनम् । द्वितीयायाञ्च वृहतीभोजने न स्मरेद्धरिम् ॥
अभक्ष्यञ्च पटोलञ्च शत्रुवृद्धिकरं परम् । तृतीयायां चतुर्थ्याञ्च मूलकं धननाशनम् ॥
कलङ्ककारणञ्चैव पञ्चम्यां विल्वभक्षणम् । तिर्य्यग्योनिं प्रापयेत्तु षष्ठ्याञ्च निम्बभक्षणम् ।
रोगवृद्धिकरञ्चैव नराणां तालभक्षणम् । सप्तम्याञ्च तथातालं शरीरस्य च नाशकम् ॥
नारिकेलफलं भक्ष्यमष्टम्यां बुद्धिनाशनम् । तुम्बीनवम्यांगोमांसंदशम्याञ्चकलम्बिका ॥
एकादश्यांतथाशिम्बी द्वादश्यां पूतिकातथा । त्रयोदश्यां (च) वार्त्ताकीभक्षणंपुत्रनाशनम् ।
चतुर्दश्यां मांसभक्ष्यं महापापकरं परम् । पञ्चदश्यां तथा मांसमभक्ष्यं गृहिणां मुने ॥
गृहिणां प्रोक्षितं मांसं भक्ष्यमन्यदिनेषु च । प्रातःस्नाने तथा श्राद्धे पार्वणे व्रतवासरे ॥
प्रशस्तं सार्षपं तैलं पक्वतैलञ्च नारद । कुहूपूर्णेन्दुसंक्रान्तिचतुर्दश्यष्टमीषु च ॥ ३७ ॥

रवौ श्राद्धे व्रताहे च दुष्टं स्त्री तिलतैलकम् ।
मांसञ्च रक्तशाकञ्च कांश्यपात्रे च भोजनम् ॥ ३८ ॥

निषिद्धं शयने चैव कूर्ममांसञ्च प्रोक्षितम् । निषिद्धं सर्ववर्णानां दिवा स्वस्त्रीनिषेवनम् ।
रात्रौ च दधिभक्ष्यञ्च शयनं सन्ध्ययोर्दिने । रजःस्वलास्त्रीगमनमेतन्नरककारणम् ॥४०॥
रजःस्वलावीरान्नञ्च पुंश्चल्यन्नमभक्षकम् । शूद्राणां याजकान्नञ्च शूद्रश्राद्धान्नमेव च ॥
अभक्ष्यान्नञ्च विप्रर्षे! यदन्नं वृषलीपतेः । ब्रह्मन् वार्द्धुषिकान्नञ्च गणकान्नमभक्षकम् ।
अग्रदानिद्विजान्नञ्च चिकित्साकारकस्य च । हस्ताचित्राहरौ तैलमग्राह्यञ्चाप्यभक्षणम् ।
मूले मृगे भाद्रपदे मांसं गोमांसतुल्यकम् । अमायां कृत्तिकायाञ्च द्विजैः क्षौरं विवर्जितम् ।
कृत्वा तु मैथुनं क्षौरं यो देवांस्तर्पयेत् पितॄन् । रुधिरं तद्भवेत्तोयं दाता च नरकं व्रजेत् ।
इति कर्त्तव्यमकर्त्तव्यं यद्भोज्यं यदभोज्यकम् ।
सर्वं तुभ्यं निगदितं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ४६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे शिवनारदसंवादे कर्त्तव्याकर्त्तव्यकथनं नाम सप्तविंशतितमोऽध्यायः समाप्तः ।

अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ।

ब्रह्मनिरूपणम् ।

नारद उवाच ।

श्रुतं सर्वं जगन्नाथ त्वत्प्रसादाज्जगद्गुरो । भवान् ब्रह्मस्वरूपश्च वद ब्रह्मनिरूपणम् ॥१॥
प्रभो किं ब्रह्म साकारं किं निराकारमीश्वरम् । किं तद्विशेषणं किं वाप्यविशेषणमेव च ।
किं वा दृश्यमदृश्यं वा लिप्तं देहिषु किं न वा । किं वा तल्लक्षणं शश्वत्तं वेदेवा किं निरूपणम् ।
ब्रह्मातिरिक्ता प्रकृतिः किं वा ब्रह्मस्वरूपिणी । प्रकृतेर्लक्षणं किं वा सारभूतं श्रुतौ श्रुतम् ।
कस्य सृष्टौ च प्राधान्यं द्वयोर्मध्ये वरं परम् । विचार्य्य मनसा सर्वं सर्वज्ञ वद मां ध्रुवम् ॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा पञ्चवक्त्रः प्रहस्य च। भगवान् वक्तुमारेभे परं ब्रह्मनिरूपणम्॥

महादेव उवाच।

यद् यत् पृष्टं त्वया वत्स निगूढं ज्ञानमुत्तमम्। सुदुर्लभञ्च वेदेषु पुराणेषु च नारद॥

अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च शेषो धर्मो महान् विराट्।

सर्वं निरूपितं ब्रह्मन्नस्माभिः श्रुतिभिर्न वा॥ ८॥

यद्विशेषणयुक्तञ्च दृश्यं प्रत्यक्षमेव च। तन्निरूपितमस्माभिर्वेदे वेदविदां वर॥ ९॥

वैकुण्ठे च पुरा पृष्टे धर्मेण ब्रह्मणा मया। यदुवाच हरिः किञ्चिन्निबोध कथयामिते

सारभूतञ्च तत्त्वानामज्ञानान्धकलोचनम्। द्वैधभ्रमतमोध्वंसस्प्रकृष्टप्रदीपकम्॥ ११॥

परमात्मस्वरूपञ्च परं ब्रह्म सनातनम्। सर्वदेहस्थितं साक्षिस्वरूपं देहिकर्मणाम्॥१२॥

प्राणाः पञ्च स्वयं विष्णुर्मनो ब्रह्माप्रजापतिः। सर्वज्ञानस्वरूपोऽहंशक्तिःप्रकृतिरीश्वरी॥

आत्माधीना वयं सर्वे स्थिते तस्मिंश्च संस्थिताः। गते गताश्च परमे नारदैवमिवानुगाः

जीवस्तत्प्रतिविम्वश्च स च भोगी च कर्मणाम्। यथार्कचन्द्रयोर्विम्वो जलपूर्णघटेषु च

विम्वो घटेषु भग्नेषु प्रलीनश्चन्द्रसूर्य्ययोः। तथा सृष्टौ च भग्नायांजीवो ब्रह्मणि लीयते

एकमेव परं ब्रह्म शेषे वत्स भवक्षये। वयं प्रलीनास्तत्रैव जगदेतच्चराचरम्॥ १७॥

तच्च ज्योतिःस्वरूपञ्च मण्डलाकारमेव च। ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डकोटिकोटिसमप्रभम्॥

आकाशमिव विस्तीर्णं सर्वव्यापकमव्ययम्। सुखदृश्यं यथा चन्द्रविम्वं योगिभिरेव च

वदन्ति योगिनस्तत्तु परं ब्रह्म सनातनम्। दिवानिशञ्च ध्यायन्ते सत्यं तत् सर्वमङ्गलम्

निरीहञ्च निराकारं परमात्मनमीश्वरम्। स्वेच्छामयं स्वतन्त्रञ्च सर्वकारणकारणम्॥

परमानन्दरूपञ्च परमानन्दकारणम्। परं प्रधानं पुरुषं निर्गुणं प्रकृतेः परम्।

तत्रैव लीना प्रकृतिः सर्ववीजस्वरूपिणी॥ २२॥

यथाग्नौ दाहिका शक्तिः प्रभा सूर्य्ये यथा मुने। यथा दुग्धे च धावल्यंजलेशैत्यंयथैवच

यथा शब्दश्च गगने यथा गन्धः क्षितौ सदा। तथाहि निर्गुणं ब्रह्म निर्गुणा प्रकृतिस्तथा

सृष्ट्युन्मुखे न तद्ब्रह्मचांशेन पुरुषः स्मृतः। स एवसगुणोवत्स! प्राकृतोविषयीस्मृतः।

सा च तत्रैव त्रिगुणा परा छायामयी स्मृता॥ २६॥

था मृदा कुलालश्च घटं कर्त्तुं क्षमः सदा। तथाप्रकृत्या तद्ब्रह्म सृष्टिं स्रष्टुं क्षमो मुने।
र्णेन कुण्डलं कर्त्तुं स्वर्णकारः क्षमो यथा। तथा ब्रह्म तयासार्द्धं सृष्टिं कर्त्तुमिहेश्वरः।
लालसृष्टा न च मृन्नित्या एव सनातनी। न स्वर्णकारसृष्टं तत्स्वर्णञ्च नित्यमेव च।
नित्यं तत् परमं ब्रह्म नित्या च प्रकृतिः स्मृता।
द्वयोः समञ्च प्राधान्यमिति केचिद्वदन्ति हि ॥ ३० ॥
दं स्वर्णं समाहर्त्तुं कुलालस्वर्णकारकौ। न समर्थौ च मृत्स्वर्णं तयोराहरणे क्षमम् ॥
स्मात्तद्ब्रह्म प्रकृतेः परमेव च नारद !। इति केचिद्वदन्त्येव द्वयोश्च नित्यता ध्रुवम् ॥
चिद्वदन्ति तद्ब्रह्म स्वयञ्च प्रकृतिः पुमान्। ब्रह्मातिरिक्ता प्रकृतिर्वदन्तीति च केचन।
द्ब्रह्म परमं धाम सर्वकारणकारणम्। तद्ब्रह्मलक्षणं ब्रह्मन्निदं किञ्चित् श्रुतौश्रुतम् ॥
ह्मचात्मा च सर्वेषां निर्लिप्तं साक्षिरूपिणम्। सर्वव्यापी च सर्वादिलक्षणञ्चश्रुतौश्रुतम्।
द्ब्रह्मशक्तिः प्रकृतिः सर्वबीजस्वरूपिणी। यतस्तच्छक्तिमद्ब्रह्म चेदं प्रकृतेर्लक्षणम् ॥
तेजोरूपञ्च तद्ब्रह्म ध्यायन्ते योगिनः सदा।
ष्णवास्तन्न मन्यन्ते मद्भक्ताः सूक्ष्मबुद्धयः। तत्तेजः कस्य वाश्चर्य्यंध्यायन्तेपुरुषंविना ॥
ारणेन विना कार्यं कुतो वा प्रभवेद्भवे। ध्यायन्ते वैष्णवास्तस्मात्तत्र रूपं मनोहरम् ॥
च्छामयस्य पुंसश्च साकारस्यात्मनः सदा। तत्तेजो मण्डलाकारेसूर्य्यकोटिसमप्रभे ॥
त्यं स्थूलञ्च प्रच्छन्नंगोलोकाभिधमेव च। लक्षकोटियोजनञ्च चतुरस्रं मनोहरम् ॥
रत्नेन्द्रसारनिर्माणैर्गोपीनामावृतं सदा।
द्दृश्यं वर्त्तुलाकारं यथैव चन्द्रमण्डलम्। रत्नेन्द्रसारनिर्माणं निराधारञ्च स्वेच्छया ॥
र्द्ध्वञ्च नित्यंवैकुण्ठात्पञ्चाशत्कोटियोजनम्। गोगोपगोपीसंयुक्तंकल्पवृक्षसमन्वितम्
ामधेनुभिराकीर्णं रासमण्डलमण्डितम्। वृन्दावनवनाच्छन्नं विरजावेष्टितं मुने ॥४३॥
तश्रृङ्गं शतश्रृङ्गैः सुदीप्तं दीप्तमीप्सितम्। लक्षकोटिपरिमितैराश्रमैः सुमनोहरैः ॥४४॥
शैतमन्दिरसंयुक्तमाश्रमं सुमनोहरम् ॥ ४५ ॥
ाकारपरिखायुक्तंपारिजातवनान्वितम्। कौस्तुभेन्द्रेण मणिना निर्माणकलसोज्ज्वलैः
रासारविनिर्माणसोपानसंघसुन्दरैः। मणीन्द्रसारनिर्माणैः कपाटदर्पणान्वितैः ॥४७॥

नानाचित्रविचित्राढ्यैराश्रमञ्च सुसंकृतम्। षोडशद्वारसंयुक्तं सुदीप्तं रत्नदीपकैः ॥४८॥
रत्नसिंहासने रम्ये चामूल्यरत्ननिर्मिते। नानाचित्रविचित्राढ्ये वसन्तमीश्वरं वरम् ॥४९॥
नवीननीरदश्यामं किशोरवयसं शिशुम्। शरन्मध्याह्नमार्त्तण्डप्रभामोचनलोचनम् ॥५०॥
शरत्पार्वणपूर्णेन्दुशोभाच्छादनमाननम्। कोटिकन्दर्पलावण्यलीलानिन्दितसुन्दरम्॥
कोटिचन्द्रप्रभायुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहम्। सस्मितं मुरलीहस्तं सुप्रशस्तं सुमङ्गलम् ॥५२॥
वह्निसंस्कारपीतांशुयुगलेन समुज्ज्वलम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं कौस्तुभेन विराजितम्॥
आजानुमालतीमालावनमालाविभूषितम्। त्रिभङ्गभङ्गिमायुक्तं मणिमाणिक्यभूषितम्॥
मयूरपुच्छचूड़ञ्च सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम्। रत्नकेयूरवलयरत्नमञ्जीररञ्जितम् ॥ ५५॥
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलसुशोभितम्। मुक्तापङ्क्तिविनिन्दैकदशनंसुमनोहरम् ॥५६॥
पक्वविम्बाधरौष्ठञ्च नासिकोन्नतशोभनम्। वीक्षितंगोपिकाभिश्चवेष्टिताभिश्चसन्ततम्॥
स्थिरयौवनयुक्ताभिः सस्मिताभिश्च सादरम्। भूषिताभिश्च सद्रत्ननिर्माणभूषणेन च॥
सुरेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च मुनिभिर्मानवेन्द्रकैः। ब्रह्माविष्णुशिवानन्तधर्माद्यैर्वन्दितं मुदा ॥५९
भक्तप्रियं भक्तनाथं भक्तानुग्रहकातरम्। रासेश्वरंसुरसिकं राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥६०
एवंरूपमरूपं तं ध्यायन्ते वैष्णवा मुने। संततं ध्येयमस्माकं परमात्मानमीश्वरम् ॥६१
अक्षरं परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम्। स्वेच्छामयं निगुणञ्च निरीहं प्रकृतेः परम् ॥६२
सर्वाधारं सर्ववीजं सर्वज्ञं सर्वमेव च। सर्वेश्वरं सर्वपूज्यं सर्वसिद्धिकरप्रदम् ॥ ६३।
स एव भगवानादिर्गोलोकेद्विभुजः स्वयम्। गोपवेशश्च गोपालैः पार्षदैः परिवेष्टितः।
परिपूर्णतमः श्रीमान् श्रीकृष्णोराधिकेश्वरः। सर्वान्तरात्मासर्वत्रप्रत्यक्षःसर्वगःस्मृतः।
कृषिश्च सर्ववचनोनकारश्चात्मवाचकः। सर्वात्मा च परं ब्रह्म तेनकृष्णः प्रकीर्त्तितः ॥६
कृषिश्च सर्ववचनो नकारश्चादिवाचकः। सर्वादिपुरुषो व्यापी तेन कृष्णः प्रकीर्त्तितः।
स एवांशेन भगवान् वैकुण्ठे च चतुर्भुजः। चतुर्भुजैः पार्षदैस्तैरावृतः कमलापतिः ॥६
स एव कलया विष्णुः पाता च जगतां प्रभुः। श्वेतद्वीपेसिन्धुकन्यापतिरेव चतुर्भुजः।
एतत्ते कथितं सर्वं परं ब्रह्मनिरूपणम्। अस्माकं चिन्तनीयञ्च सेव्यंवन्दितमीप्सितम्॥
इत्युक्त्वा शङ्करस्तत्र विरराम च शौनक। गन्धर्वराजस्तोत्रेण तुष्टाव तञ्च नारदः ॥७१

मुनिस्तोत्रेण सन्तुष्टो भगवानादिरच्युतः । ज्ञानं मृत्युञ्जयस्तस्मै प्रददौ वरमीप्सितम् ॥
तं प्रणम्य मुनीन्द्रश्च प्रहृष्टवदनेक्षणः । तदाज्ञया पुण्यरूपं ययौ नारायणाश्रमम् ॥ ७३ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे नारदप्रस्थानं नामाष्टाविंशतितमोऽध्यायः ।

ऊनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

नारायणं प्रति नारदप्रश्नः ।

सौतिरुवाच ।

ददर्शाश्रममाश्चर्यं देवर्षिर्नारदस्तथा । ऋषिर्नारायणस्यैव बदरीवनसंयुतम् ॥ १ ॥
नानावृक्षफलाकीर्णं पुंस्कोकिलरुतश्रुतम् । शरभेन्द्रैः केशरीन्द्रैर्व्याघ्रौघैः परिवेष्टितम् ॥
ऋषीन्द्रस्य प्रभावेण हिंसाभयविवर्जितम् । महारण्यमगम्यञ्च स्वर्गाधिकमनोहरम् ॥ ३ ॥
सिद्धेन्द्राणां मुनीन्द्राणामाश्रमाणां त्रिकोटिभिः । आवृतं चन्दनारण्यपारिजातवनान्वितम् ॥
ददर्श तमृषीन्द्रञ्च सभामध्ये मनोहरम् । रत्नसिंहासनस्थञ्च वसन्तं योगिनां गुरुम् ॥
जपन्तं परमं ब्रह्म कृष्णात्मानमीश्वरम् । प्रणनाम च तं दृष्ट्वा ब्रह्मपुत्रश्च शौनक ॥ ६ ॥
उत्थाय सहसालिङ्ग्य युयुजे परमाशिषम् । पप्रच्छ कुशलं स्नेहाच्चकारातिथिपूजनम् ॥
रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास नारदम् । निवसन्नासने रम्ये वर्त्मश्रमविवर्जितः ॥ ८ ॥
उवाच तमृषिश्रेष्ठं भगवन्तं सनातनम् । अधीतवेदान् सर्वांश्च पितुःस्थाने सुदुर्गमान् ॥
ज्ञानं सम्प्राप्य योगीन्द्रान्मन्त्रञ्च शङ्कराद्विभो । मनो मे न हि तृप्नोति दुर्निवारञ्च चञ्चलम् ॥
दृष्टं मया तत्पदाब्जं मनसा प्रेरितेन च । किञ्चिज्ज्ञानविशेषञ्च लब्धुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥
यत्र कृष्णगुणाख्यानं जन्ममृत्युजराहरम् ॥ १२ ॥
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यांश्च सुरेन्द्रश्च सुरा विभो । कं चिन्तयन्ति मुनयो मनवश्च विचक्षणाः ॥
कस्मात् सृष्टिश्च प्रभवेत् कुत्र वा विप्रलीयते । को वा सर्वेश्वरो विष्णुः सर्वकारणकारकः ॥

तस्येश्वरस्य किं रूपं कर्म वा किं जगत्पते । विचार्य्य मनसा सर्वं तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य भगवानृषिः ।
कथां कथितुमारेभे पुण्यां भुवनपावनीम् ॥ १६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे नारायणं प्रति नारदप्रश्नो नाम ऊनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

त्रिंशत्तमोऽध्यायः

श्रीनारायणकृतः स्तवः ।

श्रीनारायण उवाच ।

लम्बोदरो हरिरुमापतिरीशशेषा ब्रह्मादयः सुरगणा मनवो मुनीन्द्राः ।
वाणी शिवा त्रिपथगा कमलादिका या सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम् ॥ १ ॥
संसारसागरमतीवगभीरघोरं दावाग्निसर्पपरिवेष्टितचेष्टिताङ्गम् ।
संलङ्घ्य गन्तुमभिवाञ्छति यो हि दास्यं सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम् ॥ २ ॥
गोवर्द्धनोद्धरणकीर्त्तिरतीवखिन्ना भूर्धारिता च दशनाग्रकरेण क्लिन्ना ।
विश्वानि लोमविवरेषु विभर्त्तुरादेः सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम् ॥ ३ ॥
गोपाङ्गनावदनपङ्कजषट्पदस्य रासेश्वरस्य रसिकारमणस्य पुंसः ।
वृन्दावने विहरतो व्रजवेशविष्णोः सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम् ॥ ४ ॥
चक्षुर्निमेषप्रतितो जगतां विधाता तत्कर्म वत्स कथितं भुवि कः समर्थः ।
त्वञ्चापि नारदमुने परमादरेण सञ्चिन्तनं कुरु हरेश्चरणारविन्दम् ॥ ५ ॥
यूयं वयं तस्य कलाकलांशाः कलाकलांशा मनवो मुनीन्द्राः ।
कलाविशेषा भवपारमुख्या महान् विराड्यस्य कलाविशेषः ॥ ६ ॥
सहस्रशीर्षाः शिरसः प्रदेशे विभर्त्ति सिद्धार्थसमञ्च विश्वम् ।

कूर्मे च शेषो मशको गजे यथा कूर्मश्च कृष्णस्य कलाकलांशः ॥ ७ ॥
गोलोकनाथस्य विभोर्यशोऽमलं श्रुतौ पुराणे न हि किञ्चन स्फुटम्।
न पाद्मसुख्याः कथितुं समर्थाः सर्वेश्वरं तं भज पाद्मसुख्यम् ॥ ८ ॥
विश्वेषु सर्वेषु च विश्वधाम्नः सन्त्येव शश्वद्विधिविष्णुरुद्राः।
तेषाञ्च संख्याः श्रुतयश्च देवाः परं न जानन्ति तमीश्वरं भज ॥ ९ ॥
करोति सृष्टिं स विधेर्विधाता विधाय नित्यां प्रकृतिं जगत्प्रसूम्।
ब्रह्मादयः प्राकृतिकाश्च सर्वे भक्तिप्रदां श्रीं प्रकृतिं भजन्ति ॥ १० ॥
ब्रह्मस्वरूपा प्रकृतिर्न भिन्ना यथा च सृष्टिं कुरुते सनातनः।
श्रियश्च सर्वाः कलया जगत्सु माया च सर्वे च तया विमोहिताः ॥ ११ ॥
नारायणी सा परमा सनातनी शक्तिश्च पुंसः परमात्मनश्च।
आत्मेश्वरश्चापि यथा च शक्तिमांस्तया विना स्रष्टुमशक्त एव ॥ १२ ॥
गत्वा विवाहं कुरु वत्स साम्प्रतं कर्त्तुं प्रयुक्तश्च पितुर्निदेशम्।
गुरोर्निदेशं प्रतिपालको भवेत् सर्वत्रपूज्यो विजयी च सन्ततम् ॥ १३ ॥
स्वपत्नीं पूजयेद्यो हि वस्त्रालङ्कारचन्दनैः। प्रकृतिस्तस्य सन्तुष्टा यथा कृष्णो द्विजार्चने ॥
सा च योषित्स्वरूपा च प्रतिविश्वेषु मायया। योषितामपमानेन पराभूता च सा भवेत्।
दिव्या स्त्री पूजिता येन पतिपुत्रवती सती। प्रकृतिः पूजिता तेन सर्वमंगलदायिनी ॥
मूलप्रकृतिरेका सा पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी। सृष्टौ पञ्चविधा सा च विष्णुमाया सनातनी ॥
प्राणाधिष्ठातृदेवी या कृष्णस्य परमात्मनः।
सर्वासां प्रेयसी कान्ता सा राधा परिकीर्त्तिता ॥ १८ ॥
नारायणप्रिया लक्ष्मीः सर्वसम्पत्स्वरूपिणी। रागाधिष्ठातृदेवी या सा च पूज्या सरस्वती ॥
सावित्री वेदमाता च पूज्यरूपा विधेः प्रिया। शङ्करस्य प्रिया दुर्गा यस्याः पुत्रो गणेश्वरः ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे त्रिंशत्तमोऽध्यायः।

ब्रह्मखण्डं समाप्तम्।

अथ द्वितीयं प्रकृतिखण्डम्

प्रथमोऽध्यायः ।

प्रकृतिचरितसूत्रम् ।

नारायण उवाच ।

गणेशजननीदुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती । सावित्रीच सृष्टिविधौप्रकृतिः पञ्चधास्मृताः।
आविर्बभूव साकेन कावासा ज्ञानिनां वर । किंत्रा तल्लक्षणं वत्स ! को वा वक्तुं क्षमो भवेत्
किञ्चित्तथापि वक्ष्यामि यत् श्रुतं रुद्रवक्त्रतः ॥ ३ ॥
प्रकृष्टवाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः । सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्त्तिता॥
गुणे प्रकृष्टसत्वे च प्रशब्दो वर्त्तते श्रुतौ । मध्यमे रजसि कृश्च तिशब्दस्तमसि स्मृतः ॥
त्रिगुणात्मस्वरूपा या सर्वशक्तिसमन्विता । प्रधानसृष्टिकरणे प्रकृतिस्तेन कथ्यते ॥
प्रथमे वर्त्तते प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः । सृष्टेराद्या च या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्त्तिता॥
योगेनात्मासृष्टिविधौ द्विधारूपो बभूव सः । पुमांश्च दक्षिणार्द्धाङ्गो वामाङ्गःप्रकृतिःस्मृतः।
साचब्रह्मस्वरूपाच माया नित्यसनातनी । यथात्माच यथा शक्तिर्यथाग्नौ दाहिकास्मृता।
अतएव हि योगीन्द्रः स्त्रीपुंभेदं न मन्यते । सर्वं ब्रह्ममयं ब्रह्मन् शश्वत् पश्यति नारद ॥
स्वेच्छामयस्येच्छया च श्रीकृष्णस्य सिसृक्षया । साविर्बभूव सहसा मूलप्रकृतिरीश्वरी।
तदाज्ञया पञ्चविधा-सृष्टिकर्मणि भेदतः । अथ भक्तानुरोधाद् वा भक्तानुग्रहविग्रहा ॥
गणेशमाता दुर्गा या शिवरूपा शिवप्रिया । नारायणी विष्णुमाया पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी ॥
ब्रह्मादिदेवैर्मुनिभिर्मनुभिः पूजिता सदा । सर्वाधिष्ठातृदेवी सा ब्रह्मरूपसनातनी ॥१४॥
धर्मसत्यपुण्यकीर्त्तियशोमङ्गलदायिनी । सुखमोक्षहर्षदात्री शोकार्त्तिदुःखनाशिनी ।१५।
शरणागतदीनार्त्तपरित्राणपरायणा । तेजःस्वरूपा परमा तदधिष्ठातृदेवता ॥ १६ ॥
सर्वशक्तिस्वरूपा च शक्तिरीशस्य सन्ततम् । सिद्धेश्वरी सिद्धरूपा सिद्धिदा सिद्धिदेश्वरी॥

बुद्धिर्निद्रा क्षुत् पिपासा छाया तन्द्रा दया स्मृतिः ।
जातिः क्षान्तिश्च शान्तिश्च कान्तिर्भ्रान्तिश्च चेतना ॥ १८ ॥

तुष्टिः पुष्टिस्तथा लक्ष्मीर्वृत्तिर्माता तथैव च । सर्वशक्तिस्वरूपा सा कृष्णस्य परमात्मनः॥
उक्तःश्रुतौश्रुतगुणश्चातिस्वल्पो यथागमम् । गुणोऽस्त्यनन्तोऽनन्तायाअपराञ्चनिशामय।
शुद्धसत्त्वस्वरूपा या पद्मा च परमात्मनः । सर्वसम्पत्स्वरूपा या सा तदधिष्ठातृदेवता ॥
कान्ता दान्तातिशान्ता च सुशीला सर्वमङ्गला । लोभमोहकामरोषाहङ्कारपरिवर्जिता ॥
भक्तानुरक्तपत्यूश्च सर्वाद्या च पतिव्रता । प्राणतुल्या भगवतः प्रेमपात्री प्रियंवदा ॥२३॥
सर्वशस्यात्मिका सर्वजीवनोपायरूपिणी । महालक्ष्मीश्च वैकुण्ठे पतिसेवावती सदा ॥
स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्चराजलक्ष्मीश्च राजसु । गृहे च गृहलक्ष्मीश्च मर्त्यानां गृहिणांतथा ॥
सर्वप्राणिषु द्रव्येषु शोभारूपा मनोहरा । प्रीतिरूपा पुण्यवतां प्रभारूपा नृपेषु च ॥२६॥
वाणिज्यरूपा वणिजां पापिनां कलहङ्करा । दयामयी भक्तमाता भक्तानुग्रहकातरा २७॥
चपले चपला भक्तसम्पदो रक्षणाय च । जगज्जीवन्मृतं सर्वं यया देव्या विना मुने ॥
शक्तिर्द्वितीया कथिता वेदोक्ता सर्वसम्मता । सर्वपूज्या सर्ववन्द्या चान्यां मत्तोनिशामय॥
वाग्बुद्धिविद्याज्ञानाधिदेवता परमात्मनः । सर्वविद्यास्वरूपा या सा च देवी सरस्वती ॥
सुबुद्धिकवितामेधाप्रतिभास्मृतिदा सताम् । नानाप्रकारसिद्धान्तभेदार्थकल्पनाप्रदा ॥
व्याख्यावोधस्वरूपाच सर्वसन्देहभञ्जिनी । विचारकारिणी ग्रन्थकारिणी शक्तिरूपिणी ॥
सर्वसङ्गीतसन्धानतालकारणरूपिणी । विषयज्ञानवाग्रूपा प्रतिविश्वेषु जीविनाम् ॥३३

व्याख्यामुद्राकरा शान्ता वीणापुस्तकधारिणी ।
शुद्धसत्त्वस्वरूपा या सुशीला श्रीहरिप्रिया ॥ ३४ ॥

हिमचन्दनकुन्देन्दुकुमुदाम्भोजसन्निभा । जपन्ती परमात्मानं श्रीकृष्णं रत्नमालया ॥३५
तपःस्वरूपा तपसां फलदात्री तपस्विनी । सिद्धिविद्यास्वरूपा च सर्वसिद्धिप्रदा सदा ॥
देवीतृतीया गदिता श्रीयुक्ता जगदम्बिका । यथागमं यथा किञ्चिदपरां संनिवोधमे ॥३७॥

माता चतुर्णां वेदानां वेदाङ्गानाञ्च छन्दसाम् ।
सन्ध्यावन्दनमन्त्राणां तन्त्राणाञ्च विचक्षणा ॥ ३८ ॥

द्विजातिजातिरूपा च जपरूपा तपस्विनी । ब्राह्मतेजोमयी शक्तिस्तदधिष्ठातृदेवता ॥ ३९
यत्पादरजसां पूतं जगत् सर्वञ्च नारद । देवी चतुर्था कथिता पञ्चमीं वर्णयामि ते ॥
प्रेमप्राणाधिदेवी या पञ्चप्राणस्वरूपिणी । प्राणाधिकप्रियतमा सर्वाद्यासुन्दरी वरा ॥४१
सर्वसौभाग्ययुक्ता च मानिनी गौरवान्विता । वामार्द्धाङ्गस्वरूपा च गुणेन तेजसा मया॥
परावरा सर्वव्रता परमाद्या सनातनी । परानन्दरूपा च धन्या मान्या च पूजिता ॥४३॥
रासक्रीडाधिदेवी च कृष्णस्य परमात्मनः । रासमण्डलसंभूता रासमण्डलमण्डिता ॥
रासेश्वरीसुरसिका रासवासनिवासिनी । गोलोकवासिनी देवी गोपीवेशविधायिका
परमाह्लादरूपा च सन्तोषहर्षरूपिणी । निर्गुणा च निराकारा निर्लिप्तात्मस्वरूपिणी ॥४६
निरीहा निरहङ्कारा भक्तानुग्रहविग्रहा । वेदानुसारध्यानेन विज्ञाता सा विचक्षणैः ॥४७॥
दृष्टिदृष्टा सहस्रेषु सुरेन्द्रैर्मुनिपुङ्गवैः । वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नालङ्कारभूषिता ॥ ४८ ॥
कोटिचन्द्रप्रभाजुष्टश्रीयुक्तभक्तविग्रहा । श्रीकृष्णभक्तदास्यैकदात्रिका सर्वसम्पदाम् ॥४९
अवतारे च वाराहे वृकभानुसुता च या । यत्पादपद्मसंस्पर्शपवित्रा च वसुन्धरा ॥ ५० ॥
ब्रह्मादिभिरदृष्टा या सर्वदृष्टा च भारते । स्त्रीरत्नसारसंभूता कृष्णवक्षःस्थलस्थिता ॥
तथा घने नवघने लोला सौदामिनी मुने ॥ ५१ ॥
षष्टिं वर्षसहस्राणि प्रतप्तं ब्रह्मणा पुरा । यत्पादपद्मनखरदृष्टये चात्मशुद्धये ॥
नच दृष्टञ्च स्वप्नेऽपि प्रत्यक्षस्यापि का कथा ॥ ५२ ॥
तेनैव तपसा दृष्टा भूरि वृन्दावने वने । कथिता पञ्चमी देवी सा राधा परिकीर्त्तिता ॥
अंशरूपा कलारूपा कलांशाशसमुद्भवा । प्रकृतेः प्रतिविश्वेषु देवी च सर्वयोषितः ॥५४॥
परिपूर्णतमाः पञ्चविधा देव्यश्च कीर्त्तिताः । या याः प्रधानांशरूपा वर्णयामि निशामय ॥
प्रधानांशस्वरूपा च गङ्गा भुवनपावनी । विष्णुविग्रहसंभूता द्रवरूपा सनातनी ॥५६॥
पापिपापेन्धदाहाय ज्वलदिन्धनरूपिणी । दर्शस्पर्शस्नानपानै र्निर्वाणपददायिनी ॥ ५७ ॥
गोलोकस्थानप्रस्थानसुसोपानस्वरूपिणी । पवित्ररूपा तीर्थानां सरिताञ्च परावरा ॥
शम्भुमौलिजटामेरुमुक्तापंक्तिस्वरूपिणी ॥ ५८ ॥
तपः सम्पादनी सद्यो भारते च तपस्विनाम् । शङ्खपद्मक्षीरनिभा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी ॥

निर्मला निरहङ्कारा साध्वी नारायणप्रिया ॥ ५६ ॥
प्रधानांशस्वरूपा च तुलसी विष्णुकामिनी । विष्णुभूषणरूपा च विष्णुपादस्थिता सती ॥
तपः सङ्कल्पपूजादिसद्यः सम्पादनी मुने । सारभूता च पुष्पाणां पवित्रा पुण्यदा सदा ॥
दर्शनस्पर्शनाभ्याञ्च सद्योनिर्वाणदायिनी । कलौ कलुषशुष्केध्मादाहनायाग्निरूपिणी ।६२
यत्पादपद्मसंस्पर्शात् सद्यःपूतावसुन्धरा । यत्स्पर्शदर्शनंवाञ्छन्तितीर्थानि चात्मशुद्धये ॥
यया विना च विश्वेषु सर्वं कर्मातिनिष्फलम् ।
मोक्षदा य मुमुक्षूणां कामिनां सर्वकामदा ॥ ६४ ॥
कल्पवृक्षस्वरूपा च भारते विश्वरूपिणी । त्राणाय भारतानाञ्च पूजानां परदेवता ॥
प्रधानांशस्वरूपा च मनसा कश्यपात्मजा । शङ्करप्रियशिष्या च महाज्ञानविशारदा ॥
नागेश्वरस्यानन्तस्य भगिनी नागपूजिता । नागेश्वरी नागमाता सुन्दरी नागवाहिनी ॥
नागेन्द्रगणयुक्ता सा नागभूषणभूषिता । नागेन्द्रवन्दिता सिद्धयोगिनी नागवासिनी ॥
विष्णुभक्ता विष्णुरूपा विष्णुपूजापरायणा । तपः स्वरूपा तपसां फलदात्री तपस्विनी ।
दिव्यं त्रिलक्षवर्षञ्च तपस्तप्तं यया हरेः । तपस्विनीषु पूज्या च तपस्विषु च भारते ॥
सर्पमन्त्राधिदेवी च ज्वलन्ती ब्रह्मतेजसा । ब्रह्मस्वरूपा परमा ब्रह्मभावनतत्परा ॥ ७१॥
जरत्कारुमुनेः पत्नी कृष्णशम्भुपतिव्रता । आस्तीकस्य मुनेर्माता प्रवरस्य तपस्विनाम् ।
प्रधानांशस्वरूपा या देवसेना च नारद । मातृकासु पूज्यतमा साच षष्ठी प्रकीर्त्तिता ।७३
शिशूनांप्रतिविश्वेषु प्रतिपालनकारिणी । तपस्विनी विष्णुभक्ता कार्त्तिकेयस्यकामिनी ।
षष्ठांशरूपा प्रकृतेस्तेन षष्ठी प्रकीर्त्तिता । पुत्रपौत्रप्रदात्री च धात्री च जगतां सदा ।७५।
सुन्दरी युवती रम्या सततं भर्त्तुरन्तिके । स्थाने शिशूनां परमा वृद्धरूपा च योगिनी ॥
पूजा द्वादशमासेषु यस्याः षष्ठ्यास्तुसन्ततम् । पूजाच सूतिकागारे परषष्ठदिने शिशोः ॥
एकविंशतिमे चैव पूजा कल्याणहेतुकी । शश्वन्नियमिता चैषा नित्या काम्याप्यतःपरा ।
मातृरूपा दयारूपा शश्वद्रक्षणकारिणी । जले स्थले चान्तरीक्षे शिशूनां स्वप्नगोचरा ॥
प्रधानांशस्वरूपा या देवी मङ्गलचण्डिका । प्रकृतेर्मुखसंभूता सर्वमङ्गलदा सदा ॥८० ॥
सृष्टौ मङ्गलरूपा च संहारे कोपरूपिणी । तेन मङ्गलचण्डी सा पण्डितैःपरिकीर्त्तिता ॥

प्रतिमङ्गलवारेषु प्रतिविश्वेषु पूजिता। पञ्चोपचारैर्भक्त्याच योषिद्भिः परिपूजिता ॥८२
पुत्रपौत्रधनैश्वर्य्ययशोमंगलदायिनी। शोकसन्तापपापार्त्तिदुःखदारिद्रनाशिनी ॥८३॥
परितुष्टा सर्ववाञ्छाप्रदात्री सर्वयोषिताम्। रुष्टाक्षणेन संहर्त्तुं शक्ता विश्वं महेश्वरी॥
प्रधानांशस्वरूपाच कालीकमललोचना। दुर्गाललाटसंभूता रणे शुम्भनिशुम्भयोः ॥८५॥
दुर्गार्द्धांशस्वरूपाच गुणेन तेजसा समा। कोटिसूर्य्यप्रभामुष्टपुष्टजाज्वल्यविग्रहा ॥८६॥
प्रधाना सर्वशक्तीनां वरा बलवती परा। सर्वसिद्धिप्रदा देवी परमा सिद्धियोगिनी॥
कृष्णभक्ताकृष्णतुल्या तेजसा विक्रमैर्गुणैः। कृष्णभावनयाशश्वत् कृष्णवर्णासनातनी॥
संहर्त्तुं सर्वब्रह्माण्डं शक्तानिःश्वासमात्रतः। रणंदैत्यैः समंतस्याःक्रीड़यालोकरक्षया॥
धर्मार्थकाममोक्षांश्चदातुंशक्ता च पूजिता। ब्रह्मादिभिः स्तूयमाना मुनिभिर्मनुभिर्नरैः।
प्रधानांशस्वरूपा च प्रकृतेश्च वसुन्धरा। आधारभूता सर्वेषां सर्वशस्यप्रसूतिका ॥९१॥
रत्नाकारा रत्नगर्भा सर्वरत्नाकराश्रया। प्रजादिभिः प्रजेशैश्च पूजिता वन्दिता सदा॥
सर्वोपजीव्यरूपा च सर्वसम्पद्विधायिनी। यया विना जगत् सर्वं निराधारं चराचरम्॥

प्रकृतेश्च कला या यास्ता निबोध मुनीश्वर।
यस्य यस्य च या पत्न्यस्ता सर्वा वर्णयामि ते ॥ ९४ ॥

स्वाहादेवी वह्निपत्नी त्रिषु लोकेषु पूजिता। यया विना हविर्दत्तं न ग्रहीतुं सुराःक्षमाः।
दक्षिणा यज्ञपत्नी च दीक्षा सर्वत्र पूजिता। यया विना विश्वेषु सर्वं कर्मच निष्फलम्॥
स्वधा पितॄणां पत्नी च मुनिभिर्मनुभिर्नरैः। पूजिता पितृदानञ्च निष्फलञ्च ययाविना।
स्वस्तिदेवी वायुपत्नी प्रतिविश्वेषु पूजिता। आदानञ्च प्रदानञ्च निष्फलञ्च ययाविना।
पुष्टिर्गणपतेः पत्नी पूजिता जगतीतले। यया विना परिक्षीणाः पुमांसो योषितोपि च।
अनन्तपत्नी तुष्टिश्च पूजितावन्दितासदा। यया विना न सन्तुष्टा सर्वलोकाश्च सर्वतः।
ईशानपत्नी सम्पत्तिः पूजिता च सुरैर्नरैः। सर्वे लोकादरिद्राश्च विश्वेषु च यया विना।
धृतिः कपिलपत्नी च सर्वैः सर्वत्रपूजिता। सर्वेलोका अधैर्य्याश्च जगत्सु च ययाविना।
यमपत्नीक्षमा साध्वी सुशीला सर्वपूजिता। समुन्मत्ताश्चरुष्टाश्च सर्वेलोका ययाविना।
क्रीड़ाधिष्ठातृदेवी सा कामपत्नीरतिःसती। केलिकौतुकहीनाश्च सर्वेलोका ययाविना।

सत्यपत्नी सती मुक्तिःपूजिता जगतांप्रिया । ययाविना भवेल्लोको बन्धुता रहितःसदा ।
मोहपत्नीदयासाध्वीपूजिता च जगत्प्रिया । सर्वलोकाश्च सर्वत्र निष्ठुराश्च ययाविना ।
पुण्यपत्नी प्रतिष्ठा सा पुण्यरूपा च पूजिता । यया विना जगत् सर्वं जीवन्मृतसमं मुने ।
सुकर्मपत्नी कीर्त्तिश्चधन्यामान्या च पूजिता । ययाविना जगत् सर्वं यशोहीनंमृतंयथा ।
क्रिया उद्योगपत्नी च पूजिता सर्वसङ्गता । ययाविना जगत् सर्वमुच्छन्नमिव नारद ।
अधर्मपत्नी मिथ्यासा सर्वधूर्त्तैश्च पूजिता । ययाविनाजगत् सर्वमुच्छन्नंविधिनिर्मितम् ।
सत्ये अदर्शनाया च त्रेतायां सूक्ष्मरूपिणी । अर्द्धावयवरूपा च द्वापरे संवृता हि या ।
कलौमहाप्रगल्भा च सर्वत्र व्यापिकारणात् । कपटेन समं भ्राता भ्रमत्येव गृहे गृहे ।

शान्तिर्लज्जा च भार्य्ये द्वे सुशीलस्य च पूजिते ।
याभ्यां विना जगत् सर्वमुन्मत्तमिव नारद ॥ ११३ ॥
ज्ञानस्य तिस्रो भार्य्याश्च बुद्धिर्मेधा स्मृतिस्तथा ।
याभिर्विना जगत् सर्वं मूढं मृतसमं सदा ॥ ११४ ॥

मूर्त्तिश्चधर्मपत्नी सा कान्तिरूपा मनोहरा । परमात्मा च विश्वौघानिराधारायथाविना ।
सर्वत्रशोभारूपा च लक्ष्मीर्मूर्त्तिमतीसती । श्रीरूपामूर्त्तिरूपा च मान्या धन्या च पूजिता ।
कालाग्निरुद्रपत्नीचनिद्रासासिद्धयोगिनाम् ।सर्वलोकाःसमाच्छन्ना मायायोगेनरात्रिषु ।

कालस्य तिस्रो भार्य्याश्च सन्ध्या रात्रिर्दिनानि च ।
याभिर्विना विधात्रा च संख्यां कर्त्तुं न शक्यते ॥ ११८ ॥

क्षुत्पिपासेलोभभार्य्येधन्येमान्येचपूजिते । याभ्यांव्याप्तंजगत्क्षोभयुक्तंचिन्तितमेवच ।
प्रभाचदाहिकाचैव द्वे भार्य्येतेजसस्तथा । याभ्यांविनाजगत्स्रष्टुंविधाता च नहीश्वरः ।
कालकन्येमृत्युजरेप्रज्वरस्य प्रिये प्रिये । याभ्यांजगत् समुच्छन्नं विधात्रानिर्मितेविधौ ।

निद्रा कन्या च तन्द्रा सा प्रीतिरन्या सुखप्रिये ।
याभ्यां व्याप्तं जगत् सर्वं विधिपुत्रविधेर्विधौ ॥ १२२ ॥
वैराग्यस्य च द्वे भार्य्ये श्रद्धा भक्तिश्च पूजिते ।
याभ्यां शश्वत् जगत् सर्वं जीवन्मुक्तिमिदं मुने ॥ १२३ ॥

अदितिर्देवमाता च सुरभिश्च गवां प्रसूः । दितिश्च दैत्यजननी कद्रूश्च विनता दनुः ॥
उपयुक्ताःसृष्टिविधौएताश्चप्रकृतेःकलाः। कलाश्चान्याःसन्तिवह्वयस्तासुकाश्चिन्निबोधमे॥
रोहिणीचन्द्रपत्नीच संज्ञा सूर्य्यस्यकामिनी । शतरूपा मनोर्भार्य्या शचीन्द्रस्यच गेहिनी॥
ताराबृहस्पतेर्भार्य्या वशिष्ठस्याप्यरुन्धती । अहल्या गौतमस्त्री साप्यनसूयात्रिकामिनी॥
देवहूती कर्दमस्य प्रसूतिर्दक्षकामिनी । पितॄणां मानसी कन्या मेनका साम्बिकाप्रसूः ॥
लोपामुद्रा तथाहूती कुवेरकामिनी तथा । वरुणानी यमस्त्री चवलेर्विन्ध्यावलीति च ॥
कुन्तीचदमयन्तीच यशोदादेवकीसती । गान्धारीद्रौपदीशैव्या सावित्रीसत्यवत्प्रिया ॥
वृषभानुप्रियासाध्वी राधामाता कलावती । मन्दोदरीच कौशल्या सुभद्राकैटभीतथा ॥
रेवती सत्यभामाच कालिन्दी लक्ष्मणातथा । जाम्बवती नाग्नजिती मित्रविन्दातथापरा ॥
लक्ष्मणारुक्मिणीसीतास्वयंलक्ष्मीःप्रकीर्त्तिता । कलायोजनगन्धाचव्यासमातामहासती
बाणपुत्री तथोषाच चित्ररेखाच तत्सखी । प्रभावती भानुमती तथा मायावती सती ॥
रेणुकाच भृगोर्माता हलिमाताच रोहिणी । एकानंशाचदुर्गासा श्रीकृष्णभगिनी सती॥
वह्वयः सन्ति कलाश्चैवं प्रकृतेरेव भारते । यायाश्च ग्रावदेव्यस्ताः सर्वाश्च प्रकृतेःकला ॥
कलांशांशसमुद्भूताः प्रतिविश्वेषु योषितः । योषितामपमानेन प्रकृतेश्चपराभवः ॥१३७
ब्राह्मणी पूजिता येन पतिपुत्रवती सती । प्रकृतिः पूजिता तेन वस्त्रालङ्कारचन्दनैः ॥
कुमारी चाष्टवर्षीया वस्त्रालङ्कारचन्दनैः । पूजितायेन विप्रस्य प्रकृतिस्तेन पूजिता ॥
सर्वाः प्रकृतिसम्भूता उत्तमाधममध्यमाः । सत्वांशाश्चोत्तमाः ज्ञेयाःसुशीलाश्च पतिव्रताः
मध्यमा रजसश्चांशास्ताश्च भोग्याः प्रकीर्त्तिताः ।
सुखसम्भोगवत्यश्च स्वकार्य्यतत्पराः सदा ॥ १४१ ॥
अधमास्तमसश्चांशा अज्ञातकुलसम्भवाः । दुर्मुखाः कुलटा धूर्त्ताः स्वतन्त्राः कलहप्रियाः
पृथिव्यां कुलटायाश्च स्वर्गे चाप्सरसांगणाः । प्रकृतेस्तमसश्चांशाःपुंश्चल्यःपरिकीर्त्तिताः
एवं निगदितं सर्वं प्रकृतेः परिकीर्त्तनम् । ताः सर्वाः पूजिताः पृथ्व्यां पुण्यक्षेत्रेचभारते
पूजिता सुरथेनादौ दुर्गा दुर्गतिनाशिनी । द्वितीये रामचन्द्रेण रावणस्य वधार्थिना ॥
तत्पश्चात् जगतां माता त्रिषु लोकेषु पूजिता ।
जातादौ दक्षपत्न्याश्च निहन्तुं दैत्यदानवान् ॥ १४६ ॥

ततो देहं परित्यज्य यज्ञे भर्त्तुश्च निन्दया। जज्ञे हिमवतः पत्न्यां लेभे पशुपतिं पतिम् ॥
गणेशश्च स्वयं कृष्णः स्कन्दो विष्णुकलोद्भवः। बभूवतुस्तौ तनयौ पश्चात्तस्याश्च नारद।
लक्ष्मीर्मङ्गलभूपेन प्रथमे परिपूजिता। त्रिषु लोकेषु तत्पश्चात् देवतामुनिमानवैः ।१४६।
सावित्री चापि प्रथमे भक्त्या च परिपूजिता। तत्पश्चात् त्रिषुलोकेषु देवतामुनिमानवैः
आदौ सरस्वती देवी ब्रह्मणा परिपूजिता। तत्पश्चात् त्रिषु लोकेषु देवतामुनिमानवैः ॥
प्रथमे पूजिता राधा गोलोके रासमण्डले। पौर्णमास्यां कार्त्तिकस्य कृष्णेनपरमात्मना
गोपिकाभिश्च गोपैश्च बालिकाभिश्च बालकैः। गवां गणैःसुरगणैस्तत्पश्चात्मायया हरेः
तदा ब्रह्मादिभिर्देवैर्मुनिभिर्मनुभिस्तथा। पुष्पधूपादिभिर्भक्त्या पूजिता वन्दिता सदा ॥
पृथिव्यां प्रथमे देवी सयज्ञेन च पूजिता। शङ्करेणोपदिष्टेन पुण्यक्षेत्रे च भारते ।१५५॥
त्रिषु लोकेषु तत्पश्चादाज्ञया परमात्मनः। पुष्पधूपादिभिर्भक्त्या पूजिता मुनिभिः सुरैः
कला या याः समुद्भूता पूजितास्ताश्च भारते। पूजिता ग्रामदेव्यश्च ग्रामे च नगरे मुने ॥
एवं ते कथितं सर्वं प्रकृतेश्चरितं शुभम्। यथागमं लक्षणञ्च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥
इति श्री ब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारदसंवादे प्रकृतिचरितसूत्रं नाम प्रथमोऽध्यायः।

—०—

द्वितीयोऽध्यायः।

देवदेव्युत्पत्तिः।

नारद उवाच।

समासेन श्रुतं सर्वं देवीनां चरितं विभो!। विबोधनाय बोधस्य व्यासेन वक्तुमर्हसि
सृष्टिराद्या सृष्टिविधौ कथमाविर्बभूव ह। कथं वा पञ्चधा भूता वद वेदविदांवर ॥२॥
भूता या याश्च कलया तया त्रिगुणया भवे।
व्यासेन तासां चरितं श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥ ३ ॥
तासां जन्मानुकथनं ध्यानं पूजाविधिं परम्। स्तोत्रं कवचमैश्वर्य्यंशौर्य्यंवर्णय मङ्गलम्

श्रीनारायण उवाच ।

नित्यात्मा च नभो नित्यं कालो नित्यो दिशो यथा ।
विश्वेषां गोकुलं नित्यं नित्यो गोलोक एव च ॥ ५ ॥

तदेकदेशो वैकुण्ठो लम्बभागः स नित्यकः । तथैव प्रकृतिर्नित्या ब्रह्मलीना सनातनी ॥
यथाग्नौ दाहिका चन्द्रे पद्मे शोभाप्रभार्कौ । शश्वद्युक्ता नभिन्नासातथाप्रकृतिरात्मनि
विना स्वर्णं स्वर्णकारः कुण्डलं कर्त्तुमक्षमः । विनामृदा कुलालोहि घटंकर्त्तुं न हीश्वरः
न हि क्षमस्तथा ब्रह्म सृष्टिं स्रष्टुं त्वया विना । सर्वशक्तिस्वरूपासातयाचशक्तिमान्सदा
ऐश्वर्य्यवचनःशक् च त्तिः पराक्रमवाचकः । तत्स्वरूपा तयोर्दात्रीयासाशक्तिःप्रकीर्तिता
समृद्धिबुद्धिसम्पत्तियशसां वचनो भगः । तेन शक्तिर्भगवती भगरूपा च सा सदा ११।

तया युक्तः सदात्मा च भगवांस्तेन कथ्यते ।
स च स्वेच्छामयः कृष्णः साकारश्च निराकृतिः ॥ १२ ॥

तेजोरूपं निराकारं ध्यायन्ते योगिनः सदा । वदन्ति ते परं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम् ॥
अदृष्टं सर्वषट्कारं सर्वज्ञं सर्वकारणम् । सर्वदं सर्वरूपान्तमरूपं सर्वपोषकम् ॥ १४ ॥
वैष्णवास्तं न मन्यन्ते तद्भक्ताः सूक्ष्मदर्शिनः । वदन्तीति कस्य तेजस्तेचतेजस्विनंविना
तेजोमण्डलमध्यस्थं ब्रह्मतेजस्विनं परम् । स्वेच्छामयं सर्वरूपं सर्वकारणकारणम् ॥
अतीवसुन्दरं रम्यं विभ्रतं सुमनोहरम् । किशोरवयसं शान्तं सर्वकान्तं परात्परम् ॥१७
नवीननीरदाभासं रासैकश्यामसुन्दरम् । शरन्मध्याह्नपद्मौघशोभामोचनलोचनम् ॥१८॥
मुक्तासारविनिन्द्यैकदन्तपङ्क्तिमनोहरम् । मयूरपुच्छचूडश्च मालतीमाल्यमण्डितम् ॥
सुनसं सस्मितं शश्वद्भक्तानुग्रहकातरम् । ज्वलदग्निविशुद्धैकपीतांशुकसुशोभितम् २०॥
द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नभूषणभूषितम् । सर्वाधारश्च सर्वेशं सर्वशक्तियुतं विभुम् ॥२१॥
सर्वैश्वर्य्यप्रदं सर्वं स्वतन्त्रं सर्वमङ्गलम् । परिपूर्णतमं सिद्धं सिद्धिदं सिद्धिकारणम् ॥
ध्यायन्ते वैष्णवाः शश्वद्देवरूपं सनातनम् । जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहरं परम् ॥
ब्रह्मणो वयसा यस्य निमेष उपचर्य्यते । स चात्मा परमं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥
कृषिस्तद्भक्तिवचनो नश्च तद्दास्यवाचकः । भक्तिदास्यप्रदाता यःसकृष्णःपरिकीर्त्तितः ॥

कृषिश्च सर्ववचनो नकारो वीजवाचकः । सर्वं वीजं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥२६
असंख्यब्रह्मणां पातेकालेऽतीतेऽपिनारद । यद्गुणानांनास्तिनाशस्तत्समानोगुणेनच ॥
स कृष्णः सर्वसृष्ट्यादौ सिसृक्षुरेक एव च । सृष्ट्योन्मुखस्तदंशेन कालेनप्रेरितः प्रभुः ॥
स्वेच्छामयःस्वेच्छयाचद्विधारूपोवभूवह । स्त्रीरूपावामभागांशाद्दक्षिणांशःपुमान्स्मृतः॥
तां ददर्श महाकामी कामाधारः सनातनः । अतीवकमनीयाञ्च चारुचम्पकसन्निभाम् ॥
चन्द्रविम्वविनिन्द्यैकनितम्वयुगलां परम् । सुचारुकदलीस्तम्भनिन्दितश्रोणिसुन्दरीम् ॥
श्रीयुक्तश्रीफलाकारस्तनयुग्ममनोरमाम् । पुष्ट्या युक्तांसुललितांमध्यक्षीणांमनोहराम् ॥
अतीवसुन्दरींशान्तांसस्मितांवक्रलोचनाम् । वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥
शश्वच्चक्षुश्चकोराभ्यांपिवन्तींसन्ततंमुदा । कृष्णस्यमुखचन्द्रञ्चचन्द्रकोटिविनिन्दितम् ॥
कस्तूरीविन्दुभिः सार्द्धमधश्चन्दनविन्दुना । समं सिन्दूरविन्दुञ्च भालमध्येचविभ्रतीम् ॥
वङ्किमं कवरीभारं मालतीमाल्यभूषितम् । रत्नेन्द्रसारहारञ्च दधतीं कान्तकामुकीम् ॥
कोटिचन्द्रप्रभामुष्टपुष्टशोभासमन्विताम् । गमने च राजहंसगजखञ्जनगञ्जनीम् ॥ ३७ ॥
दृष्टिमात्रं तया सार्द्धं रासेशो रासमण्डले । रासोल्लासेषु रहसि रासक्रीडां चकार ह ॥
नानाप्रकारशृङ्गारं शृङ्गारो मूर्त्तिमानिव । चकार सुखसम्भोगं यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥
ततः सचपरिश्रान्तस्तस्यायोनौजगत्पिता । चकारवीर्य्याधानञ्चनित्यानन्दःशुभक्षणे ॥
गात्रतो योषितस्तस्याः सुरतान्ते च सुव्रत । निःससारश्रमजलंश्रान्तायास्तेजसाहरेः ॥
महारमणक्लिष्टाया निःश्वासश्च वभूव ह । तदाधारश्रमजलं तत् सर्वं विश्वगोलकम् ॥
स च निःश्वासवायुश्च सर्वाधारो वभूव ह । निःश्वासवायुःसर्वेषांजीविनाञ्चभवेषुच ॥
वभूवमूर्त्तिमद्वायोर्वामाङ्गात्प्राणवल्लभा । तत्पत्नीसाचतत्पुत्राः प्राणाःपञ्चचजीविनाम् ॥
प्राणोऽपानः समानश्चैवोदानो व्यान एव च । वभूवुरेवतत्पुत्राअधःप्राणाश्च पञ्च च ॥
धर्मतोयाधिदेवश्च वभूव वरुणो महान् । तद्वामाङ्गाच्च तत्पत्नी वरुणानी वभूव सा ॥
अथ सा कृष्णशक्तिश्च कृष्णाद्गर्भं दधार ह । शतमन्वन्तरं यावज्ज्वलन्ती ब्रह्मतेजसा ॥

कृष्णप्राणाधिदेवी सा कृष्णप्राणाधिकप्रिया ।

कृष्णस्य सङ्गिनी शश्वत् कृष्णवक्षःस्थलस्थिता ॥४८॥

शतमन्वन्तरातीतकालेऽतीतेऽपि सुन्दरी । सुषाव डिम्बंस्वर्णाभंविश्वाधारालयंपरम् ॥
दृष्ट्वा डिम्बञ्च सा देवी हृदयेन विभूषिता । उत्ससर्ज च कोपेन ब्रह्माण्डं गोलके जले ॥
दृष्ट्वा कृष्णश्च तत्त्यागं हाहाकारं चकार ह । शशाप देवीं देवेशस्तत्क्षणञ्चयथोचितम् ॥
यतोऽपत्यं त्वया त्यक्तं कोपशीले सुनिष्ठुरे । भवत्वमनपत्यापिचाद्यप्रभृतिनिश्चितम् ॥
या यास्तदंशरूपा चभविष्यन्तिसुरस्त्रियः । अनपत्याश्चताःसर्वास्तत्समानित्ययौवनाः ॥
एतस्मिन्नन्तरे देवी जिह्वाग्रात् सहसा ततः । आविर्बभूव कन्यैका शुक्लवर्णा मनोहरा ॥
पीतवस्त्रपरीधाना वीणापुस्तकधारिणी । रत्नभूषणभूषाढ्या सर्वशास्त्राधिदेवता ॥५५
अथ कालान्तरे सा च द्विधारूपावभूव ह । वामार्द्धाङ्गाचकमलादक्षिणार्द्धाचराधिका ॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो द्विधारूपो बभूव ह । दक्षिणार्द्धश्च द्विभुजो वामार्द्धश्च चतुर्भुजः ॥
उवाच वाणीं श्रीकृष्णस्त्वमस्य कामिनी भव । अत्रैवमानिनीराधानैवभद्रं भविष्यति ॥
एवं लक्ष्मीञ्च प्रददौ तुष्टो नारायणाय च । स जगामचवैकुण्ठंताभ्यांसार्द्धंजगत्पतिः ॥
अनपत्ये च ते द्वे च यतो राधांशसम्भवा । भूता नारायणाङ्गाच्च पार्षदाश्च चतुर्भुजाः ॥
तेजसा वयसा रूपगुणाभ्याञ्च समा हरेः । बभूवुःकमलाङ्गाच्चदासीकोट्यश्च तत्समाः ॥
अथ गोलोकनाथस्य लोम्नां विवरतोमुने । भूताश्चासंख्यगोपाश्चवयसातेजसा समाः ॥
रूपेण च गुणेनैव वेशेन विक्रमेण च । प्राणतुल्यप्रियाः सर्वे बभूवुः पार्षदा विभोः ॥
राधाङ्गलोमकूपेभ्यो बभूवुर्गोपकन्यकाः । राधातुल्याश्च सर्वास्ताःराधातुल्याःप्रियंवदाः
रत्नभूषणभूषाढ्याः शश्वत्सुस्थिरयौवनाः । अनपत्याश्चताः सर्वाः पुंसःशापेन सन्ततम्
एतस्मिन्नन्तरे विप्र सहसा कृष्णदेहतः । आविर्बभूव सा दुर्गा विष्णुमाया सनातनी ॥
देवी नारायणीशानी सर्वशक्तिस्वरूपिणी । बुद्ध्यधिष्ठातृदेवी सा कृष्णस्य परमात्मनः
देवीनां बीजरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी । परिपूर्णतमा तेजःस्वरूपा त्रिगुणात्मिका ॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभा सूर्य्यकोटिसमप्रभा । ईषद्धास्यप्रसन्नास्या सहस्रभुजसंयुता ॥ ६६॥
नानाशास्त्रास्त्रनिकरं बिभ्रती सा त्रिलोचना । वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता ॥
यस्यांश्चांशांशकलया बभूवुः सर्वयोषितः । सर्वविश्वस्थिता लोका मोहितामाययायया
सर्वैश्वर्य्यप्रदात्री च कामिनां गृहवासिनाम् । कृष्णभक्तिप्रदात्रीचवैष्णवानाञ्च वैष्णवी

* श्रीगणेशायनमः *

गुरुमण्डलग्रन्थमालायाः षोडशपुष्पम्

लिंग-पुराणम्

———*———

श्रीमन्महर्षि-कृष्णद्वैपायनव्यासविरचितम्

श्रीनाथादिगुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयम्भैरवम् ।
सिद्धौघं वटुकत्रयम्पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम् (शाम्भवम्)
वीरान्द्व्यष्टचतुष्कषष्टिनवकं वीरावलीपञ्चकम् ।
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्देगुरोर्मण्डलम् ॥

५, क्लाइव रो,
कलकत्ता—१

वैक्रमाब्दः प्रथमं संस्करणम् खृस्ताब्दः
२०१७ ३१०० १९६०

Gurumandal Series No. XVI

LINGA PURANAM



BY

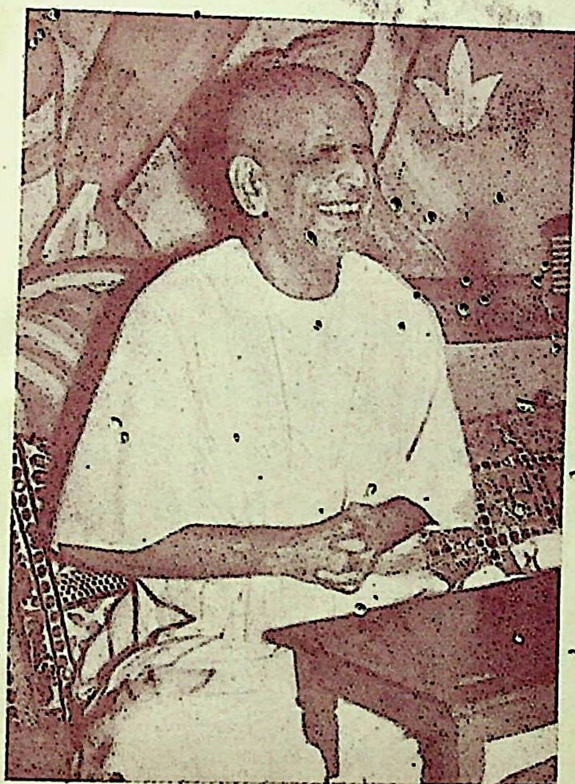
Shrimanmaharsi Krishna Dwaipayan Vedavyas.

5, CLIVE ROW
CALCUTTA-1

Vikram era	First Edition	Christian era
2017	3000	1960

अवधकिशोरसिंह द्वारा
गोपाल प्रिण्टिङ्गवर्क्स
८७।ए, राजा दिनेन्द्र स्ट्रीट,
कलकत्ता–६ में मुद्रित।

लिङ्ग पुराणम्



-परमपूज्य-

प्रत्यक्षवेदान्तमूर्त्ति ब्रह्मानन्दस्वरूप परमहंस परिव्राजकाचार्य

श्री १०८ स्वामी गङ्गेश्वरानन्दतीर्थजी महाराज

वेदमन्दिर, कांकरियारोड,

अहमदाबाद



॥ श्रीगणेशायनमः ॥

सादरं समर्पणम्

श्रीमतां तत्रभवतां त्यागतपोनिष्ठानां ज्ञानेन वयसा च प्रगल्भवृद्धानां स्वशिष्येभ्यो भक्तेभ्यश्चाऽनुदिन वेदवेदाङ्गसच्छास्त्रज्ञान-साधनीार्थ सोत्साहं प्रेरकाणां प्रज्ञाचक्षुष्मतां साक्षाद्-वेदान्तमूर्त्तीनां ब्रह्मानन्दस्वरूपाणां परमहंस-परिव्राजकाचार्याणां

श्री १०८ स्वामीगङ्गेश्वरानन्दतीर्थपादानां करकमलयोः

सादरमिदं समर्प्यते

गुरुमण्डलग्रन्थमालायाःषोडशपुष्पम्

लिङ्गपुराणमिति

श्रीमत्स्वामिपादभक्तिविलम्बितान्तःकरणो

मनसुखरायमोरः
५, क्लाइव रो,
कलिकाता—१

वैशाख शुक्ला ११,
२०१७ विक्रमाब्दः

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

लिङ्गपुराण-भूमिका

——:※:——

श्रीभूतभावन देवाधिदेव परमाराध्य भगवान् शङ्करकी असीम अनुकम्पा से विद्वत्समुदाय एवं भारतीय साहित्यके अनुरागी महानुभावोंकी सेवामें गुरुमण्डल ग्रन्थमालाके सोलहवें पुष्परूपसे यह लिङ्गपुराण उपस्थित करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है।

इस पुराणको गरिमा प्रशस्तिको इस छोटेसे लेखमें प्रस्तुत करना असम्भव है फिर भी पाठकोंकी सेवामें इसमहापुराणके विषयमें दो शब्द निवेदन करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं।

पुराण परिचयके नम्र निवेदनमें पुराणोंकी आम्नायता एवं सर्वप्रथम ब्रह्मा द्वारा स्मरण होनेके रूपमें उनकी अपौरुषेयताका वेदोपवृंहित अर्थकी स्पष्टतामें पुराण सृष्टिके प्राण हैं, यह ब्रह्मपुराणकी भूमिकामें बताया जा चुका हैं। प्रस्तुत लिङ्गपुराण परात्पर अनादि भूतभावन जगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारी अविनश्वर परतत्त्वत्रिमूर्त्ति में सकृत् अनुस्यूत प्रसिद्ध संहारक "महादेवाधिदेव भगवान् शङ्करके ज्योतिर्लिङ्गके उद्भवका जिसमें ईशानकल्पका वृत्तान्त सम्पूर्ण सर्ग, विसर्ग, आदि दश लक्षणोंसे युक्त महादेवजीके प्रशंसापरक महापुराण" है। पुराणोंकी अनुक्रमणिकामें नारदपुराणके अनुसार यह ग्यारहवां महापुराण है।

नारदपुराणकी १०२ अध्यायमें लिङ्गमहापुराणकी विषयानुक्रमणिका दी गई है इससे इसके प्रधान विषयोंका एवं श्लोकसंख्याका पता लगता है।

ब्रह्मोवाच

शृणु पुत्र ! प्रवक्ष्यामिपुराणंलिङ्गसञ्ज्ञितम् । पठतांश्रृण्वताञ्चैवभुक्तिमुक्तिप्रदायकम्

यच्च लिङ्गाभिधे तिष्ठन् वह्निलिङ्गे हरोऽभ्यधात् ।

...द्यं धर्मादिसिद्ध्यर्थं अग्निकल्पकथाश्रयम् ॥

तदेवव्यासदेवेन भागद्वयसमाचितम् । पुराणं लिङ्गमुदितं बह्वाख्यानविचित्रितम्

तदेकादशसाहस्रं हरमाहात्म्यसूचकम् । परं सर्वपुराणानां सारभूतं जगत्त्रये

पुराणोपक्रमे प्रश्नः सृष्टिः संक्षेपतः पुरा ॥

तत्र पूर्वभागे—

योगाख्यानं ततः प्रोक्तं कल्पाख्यानं ततः परम् ।

लिङ्गोद्भवस्तदर्चा च कीर्त्तिता हि ततः परम् ॥

सनत्कुमारशैलादिसम्वादश्चाऽथ पावनः । ततो दधीचिचरितं युगधर्मनिरूपण

ततोभुवनकोषाख्या सूर्यसोमान्वयस्ततः । ततश्च विस्तरात्सर्गस्त्रिपुराख्यानकस्त

लिङ्गप्रतिष्ठा च ततः पशुपाशविमोक्षणम् । शिवव्रतानि च तथा समाचारनिरूपण

प्रायश्चित्तान्यरिष्टानिकाशीश्रीशैलवर्णनम् ।

अन्धकाख्यानकम्पश्चाद् वाराहचरितंपुनः ॥

नृसिंहचरितं पश्चाज्जलन्धरवधस्ततः । शैवं सहस्रनामाऽथ दक्षयज्ञविनाशनम्

कामस्यदहनम्पश्चाद्गिरिजायाःकरग्रहः । ततोविनायकाख्यानंनृत्याख्यानंशिवस्य

उपमन्युकथा चाऽपि पूर्वभागईरितः ।

उत्तर भागे

विष्णुमाहात्म्यकथनमम्बरीषकथा ततः । सनत्कुमारनन्दीशसम्वादश्च पुनर्मुनि

शिवमाहात्म्यसंयुक्तस्नानयोगादिकं ततः । सूर्यपूजाविधिश्चैव शिवपूजा च मुक्ति

दानानिबहुधोक्तानि श्राद्धप्रकरणन्ततः । प्रतिष्ठातत्रगदितातत्तोऽघोरस्य कीर्त्तन

वज्रेश्वरी महाविद्या गायत्रीमहिमा ततः । त्र्यम्बकस्यचमाहात्म्यं पुराणश्रवणस्य

एतस्योपरिभागस्ते लैङ्गस्यकथितोमया । व्यासेनहि निबद्धस्य रुद्रमाहात्म्यसूचि



